

आई.एस.एस.एन. 0975-4083



रिसर्च जर्नल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

PEER-REVIEWED RESEARCH JOURNAL

UGC JOURNAL NO. (OLD) 2138, IMPACT FACTOR 3.543

Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory ProQuest,
U.S.A. Title Id: 715205

अंक-19 | हिन्दी संस्करण | वर्ष-09 | सितम्बर 2020

2020

www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0975-4083

रिसर्च जर्नल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal

UGC Journal No. (Old) 2138

Impact Factor 3.543

Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest,
U.S.A. Title Id : 715204

अंक-19	हिन्दी संस्करण	वर्ष-09	सितम्बर 2020
--------	----------------	---------	--------------

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

प्रधान सम्पादक

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित

profbrajgopal@gmail.com

डॉ. अखिलेश शुक्ल

ऑनरेरी सम्पादक

प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित

akhileshtrscollge@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल

अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा

shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा

rnsharmanehru@gmail.com



सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका

Experts & Members of Advisory Board

- Prof. Hemanta Saikia, Assistant Professor, Department of Rural Development, Debraj Roy College, Circuit House Road, Golaghat, Assam, India. Pin-785621
jio84hemant@gmail.com
- Dr. K. S. Tiwari, Professor, Regional Director, Regional Centre Bhopal, IGNOU, Bhopal
kripashankar19954@gmail.com
- Dr. Puran Mal Yadav, Department of Sociology, Mohan Lal Sukhadia University
UDAIPUR – 313001 (Rajasthan)
pnyadav1964@gmail.com
- Dr. Ram Shankar. Professor of Political Science, RDWVV Jabalpur University, (M.P.)
rs_dubey@yahoo.com
- Prof. Anjali Bahuguna, Department of Economics, School of Humanities and Social Sciences (SHSS), HNB Garhwal University, (A Central University), Srinagar-246174 (Garhwal)
anjali shss@gmail.com
- Dr. Sanjay Shankar Mishra, Professor of Commerce, Govt. TRS PG College, Rewa (M.P.)
ssm6262@yahoo.com
- Dr. Pramila Shrivastava, Associate Professor, Department of Economics, Govt. Arts College Kota (Raj),
dr21pramila@gmail.com
- Dr Alka Saxena, D. B. S. College, Kanpur (U.P.)
alknasexna65@yahoo.com
- Dr. Deepak Pachpore, Journalist
deepakpachpore@gmail.com
- Dr. C. M. Shukla, Professor of History Government Maharaja College, Chhatarpur District Chhatarpur (M.P.),
rajan.19shukla@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract, Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स एण्ड मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेज (ISSN-0975-4083) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत है।
- शोध पत्रिका उलरिच इंटरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड है।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च तथा सितंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त है। शोध पत्रिका Peer-Reviewed है।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।
- शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक,
- मोबाइल नं., ई-मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50-100 शब्दों का सारांश दिया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माइक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिपि फॉन्ट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साइज के कागज में चारों तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
- **researchjournal.journal@gmail.com**
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00	-सदस्यता शुल्क -	
अवधि	व्यक्तिगत सदस्यता	संस्थागत सदस्यता
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय, नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

मुद्रक: लीनेज ऑफसेट
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय

186/1, विन्ध्य विहार कालोनी
रीवा- 486001 (म.प्र.)

E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com

www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

बीसवीं शताब्दी में सम्पूर्ण भू-मण्डल में गांधी जी के जीवन, सिद्धान्तों व विचारों पर जितनी चर्चा हुई, उतनी निश्चित रूप से किसी अन्य महामानव के बारे में नहीं हुई। संसार के अनेक चिन्तकों ने गांधी जी को युग पुरुष की संज्ञा दी है। गांधी के दर्शन का प्राण तत्व अहिंसा है। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" समस्त प्राणियों के कल्याण का उद्घोष करने वाली हमारी सभ्यता 'अहिंसा' की मूल भावना से युक्त है। मानव जीवन के मार्ग की बाधायें, काम, क्रोध, मद, लोभ, दंभ, दुर्भाव, द्वेष की भावनायें हैं और इन पर विजय प्राप्त करने के लिए बुद्धि की शुद्धता, हृदय का निष्पाप होना और मन का पवित्र होना आवश्यक है। यह गांधी के मार्ग से ही संभव है। अहिंसा हमारी चिन्तन धारा को, हमारे मनोभावों को उज्ज्वल करती है, छल-कपट से दूर करती है और जीवन में सत्य को प्रतिष्ठित करती है। अहिंसा की इसी मूल भावना को प्रकट किया है, महात्मा गांधी ने। इसीलिए अहिंसा और गांधी एक-दूसरे के पर्यायवाची हो गये हैं और यह धारणा बन गई है कि गांधी जी की अहिंसा हर युग का सत्य है। उसी मार्ग से हम प्राणियों में सद्भावना का प्रकाश फैला सकते हैं और संसार में शांति की स्थायी स्थापना कर सकते हैं और तभी यह वैदिक स्तुति पूर्ण सार्थक बन सकती है।

“ॐ शान्ति अंतरिक्ष ॐ शान्तिः पृथिवी

ॐ शान्ति रापह शान्ति औषधयः शान्ति वनस्पतयः।”

अहिंसा की मूल धारणा शास्वत है। इसकी महिमा बौद्ध और जैन धर्मों में बताई गई है तथा उपनिषदों में भी गायी गई है। अहिंसा वैदिक काल के पूर्व आर्यों से भी पूर्व की उपलब्धि है, किन्तु इतना होते हुये भी अहिंसा के प्रवर्तक महात्मा गांधी माने जाते हैं। महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा का पालन स्वयं किया था तथा शिष्यों से भी करवाया था, किन्तु वे एक संत थे। गांधी से पूर्व किसी ने भी जनसाधारण के हृदय में अहिंसा का प्रयोग नहीं किया था। संसार का ध्यान भी गांधी जी की ओर इसलिए गया कि उन्होंने पशु-बल के समक्ष लोगों को आत्मबल के शस्त्र का प्रयोग सिखाया। सोचने की बात यह है कि गांधी जी ने अंग्रेजों के विरुद्ध अहिंसा का आश्रय क्यों लिया? वास्तव में गांधी जी मानव स्वभाव में ही परिवर्तन लाना चाहते थे, इसीलिए वे अहिंसा के मार्ग को छोड़कर भारत को स्वाधीन कराने के पक्षपाती नहीं थे। तभी तो चौरा-चौरी की हिंसा के बाद उन्होंने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। गांधी जी मानते थे कि घृणा, क्रोध और आवेश पशुओं में भी प्रगट होता है, लेकिन मनुष्य पशु से भिन्न है, इसलिए उसे अपने आवेगों पर नियंत्रण रखना चाहिये और अहिंसा के मार्ग से अपनी समस्याओं को सुलझाना चाहिये।

‘सत्याग्रह’ की कल्पना अमेरिका के चिंतक ‘ब्यूरो’ ने भी की थी इसकी एक झलक रूस के ‘टॉलस्टाय’ में भी पाई जाती है, लेकिन अहिंसा से ओतप्रोत ‘सत्याग्रह’ की भावना को वास्तविक जामा गांधी जी ने ही पहनाया। वे ब्यूरो और टालस्टाय के विचारों से परिचित थे। गांधी जी ने प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि आत्मबल, शारीरिक बल से श्रेष्ठ है और इस सत्य को जितना भारत के लोग जानते हैं, उतना अन्य देशों के नहीं। गांधी जी ने जो नियम साबरमती में सत्याग्रह आश्रम में रहने वालों के निर्देशन के लिए बनाये थे, उनमें सर्वोच्च स्थान ‘सत्य और अहिंसा’ को दिया था। वे मानते थे कि अहिंसा के बिना सर्वोच्च सत्य की सिद्धि असंभव है। ‘सत्य ही ईश्वर है’ यह गांधी जी का उद्घोष है। अतः जो व्यक्ति दूसरे को आघात पहुंचाता है वह सत्य का उल्लंघन करता है। हिंसा असत्य है क्योंकि वह जीवन की एकता और पवित्रता के विरुद्ध है। इसलिए जीवन में अहिंसा का पालन करना मानव का सबसे बड़ा कर्तव्य है। “अहिंसा परमोधर्म” महाभारत का सार है। गांधी जी ने इसी को एक व्यापक अर्थ दिया और एक व्यापक स्तर पर उसका प्रयोग किया। गांधी की यह मान्यता थी कि सत्य का प्रत्येक स्थिति में पालन

होना है, चाहे उसके लिए कितना भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े, किसी भी स्थिति में उससे डिगा नहीं जा सकता। अपने अर्थ को स्पष्ट करने के लिए गांधी जी प्रहलाद का उदाहरण देते थे। सत्य को छोड़ने की अपेक्षा प्रहलाद मरना अधिक पसन्द करता था, अपने पिता द्वारा दिये गये अगणित कष्टों को प्रहलाद ने हंसते-हंसते सहन किया और अन्त में उसकी विजय हुई। गांधी जी का 'सम्पूर्ण जीवन' 'सत्य का प्रयोग' है। वे इसी मार्ग पर चलते हुये 'शदीद' हुये। देव पुरुष ईसा ने भी जीवन भर लोगों के हृदय में सत्य और प्रेम का बीज बोया। इस तरह गांधी जी की अहिंसा मानव जीवन का सत्य है और आदिकाल से लेकर आज तक और भविष्य में भी जब तक मानवता रहेगी 'अहिंसा' का मूलमंत्र मनुष्य के जीवन को आलोकित करता रहेगा। यह मंत्र है - मनसा, वाचा, कर्मणा से किसी को आघात न पहुंचाना। गांधी जी अहिंसा पर आधारित एक आदर्श समाज की संरचना चाहते थे। इस समाज में ग्रामों में बसे हुये समूह होंगे, जिनमें गौरवपूर्ण तथा शान्तिमय जीवन का आधार सहयोग होगा। प्रत्येक ग्राम एक गणराज्य होगा - एक पंचायत होगा, जिसके पास अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता होगी। इस अहिंसक समाज में केन्द्र 'व्यक्ति' होगा जो अहिंसा के आदर्श पर अपना जीवन जियेगा और इस तरह, "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श की प्राप्ति होगी। वास्तव में वर्तमान समाज में संघर्ष और अशान्ति का कारण असीमित व्यक्तिवाद है, हमारा अपने अधिकारों और कर्तव्यों के सामाजिक स्वरूप को न जानना है। प्लेटो ने भी अपने आदर्श राज्य में व्यक्ति के इसी सामाजिक न्याय को ध्यान में रखते हुये कहा था, 'जो जहां है, अपने ज्ञान व क्षमता का भरपूर उपयोग करते हुये कार्य करें।' एक अहिंसक समाज का सामाजिक न्याय का आदर्श चित्रण तुलसी ने भी रामचरित मानस में किया है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहि काहुहि व्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज सरीरा।।

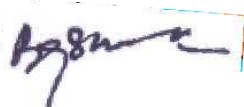
नहि दरिद्र कोई दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

रामराज्य में तो वन्य पशु भी अपनी हिंसक वृत्ति छोड़ देते हैं। अभयारण्य में विहार करते हैं।

“खग मृग सहज वयरु विसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।”

यही गांधी जी की अहिंसा का चरम सत्य है। इसीलिए गांधी जी राजनीतिक सत्ता को मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का साधन मानते हैं। इस तरह गांधी जी की अहिंसा : हर युग का सत्य है, मानव जीवन का सार है : शांति का पर्यायवाची है। सामाजिक न्याय, समानता, विश्व बन्धुत्व, विश्वराज्य, युद्ध और अभाव विहीन मानव समाज के मार्ग को आलोकित करती है।



(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक



डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

01.	ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति- एक विश्लेषण (रीवा जिले के ग्राम लक्ष्मणपुर के विशेष संदर्भ में) आंचल शुक्ल, अखिलेश शुक्ल	09
02.	बम्बई एवं लाहौर में आर्य समाज की भूमिका : एक समीक्षात्मक अध्ययन वरदराज	19
03.	प्राचीन भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति नरेन्द्र सिंह	25
04.	स्मार्ट शहर : अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य नीरज कुमार राय	32
05.	कोविड 19 का जनजातीय शिक्षा पर प्रभाव (दन्तेवाड़ा जिले के मुरिया जनजाति के विशेष संदर्भ में) अशोक कुमार नाग आयशा कुरैशी	37
06.	बाल अपचार (कोविड 19 के संदर्भ में) गजानन मिश्र	44
07.	मुरिया जनजातीय समाज की वर्तमान जीवन प्रणाली के महत्वपूर्ण पक्षों में आये बदलावों का अध्ययन (बस्तर जिले के विशेष संदर्भ में) रूपिन्दर जीत कौर किरण नुरूटी	51
08.	महादलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति पुष्पा	58
09.	दैशिक चिंतन में ही है भारत की सभी समस्याओं का हल: पंडित दीनदयाल उपाध्याय प्रवेश कुमार	62
10.	गाँधी एवं अम्बेडकर के सामाजिक विचारों में महिला सशक्तिकरण स्मिता कुमारी	69
11.	रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण) राजकुमार वर्मा, अखिलेश शुक्ल	87
12.	सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में विन्ध्य प्रदेश की भूमिका रश्मि सिंह चौहान	93
13.	मध्यकालीन भारत में कृषि-तकनीकी सीमा कुमारी	98
14.	महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना: क्रियान्वयन समस्याएँ एवं सुझाव पपली राम	103
15.	ग्रामीण विकास में प्रधानमंत्री सड़क योजना का अवदान- एक अध्ययन (इलाहाबाद जनपद के फूलपुर तहसील के बहादुरपुर विकास खण्ड के संदर्भ में) सिद्धार्थ मिश्र, विनोद शंकर सिंह	113
16.	प्राचीन भारतीय इतिहास में दूत के अध्ययन के स्रोत : एक अवलोकन संतोष कुमार 'सुमन'	117

17.	स्वाधीनता आंदोलन में अनुग्रह नारायण सिंह की भूमिका प्रीति कुमारी	120
18.	बंगाल में राष्ट्रीय जागरण की विभिन्न प्रवृत्तियाँ : एक शोधपूर्ण अध्ययन विश्वनाथ	124
19.	गुप्तों के शासनकाल में पाटलिपुत्र नगर की सौन्दर्य एवं वैभव अमोल कुमार	134
20.	छात्रावासी किशोरियों एवं गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता का तुलनात्मक का अध्ययन अलका डेविड	138
21.	भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि चम्बा चित्रशैली निशा गुप्ता	146
22.	वैश्वीकरण की प्रक्रिया का राजनीतिक प्रभाव सिन्धु राय	150
23.	भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में प्रगतिशील साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक योगदान सुनील कुमार	156
24.	ज्ञान की महत्ता और डॉ. आंबेडकर कुमार विपुल	164
25.	भूमंडलीकरण तथा कल्याणकारी राज्य की भूमिका सिन्धु राय	168
26.	कथाकार शिवमूर्ति का कथा-संसार पंकज कुमार झा	179
27.	अज्ञेय के उपन्यासों में भारतीयता अमलेन्दु कुमार अंजन	187
28.	महात्मा गाँधी के विशेष संदर्भ में स्वच्छता का दार्शनिक विश्लेषण विवेकानन्द मिश्र	195
29.	ब्रिटिश काल में भारत की जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए किये गये कार्य मिथलेश केन	198
30.	रसखान काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति रेखा कुमारी	202
31.	नवगीत के आविर्भाव की पृष्ठभूमि अरुण कुमार	207
32.	भारत में पंचायती राज का इतिहास राजकुमार वर्मा, अखिलेश शुक्ल	214
33.	वर्तमान विश्व में गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता शालिनी चतुर्वेदी	224
34.	संसाधनों का चंद हाथों में जमा होने का राजनीतिक प्रभाव सिन्धु राय	230
35.	संसाधनों का चंद हाथों में जमा होने का राजनीतिक प्रभाव महेश कुमार	238

ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति- एक विश्लेषण (रीवा जिले के ग्राम लक्ष्मणपुर के विशेष संदर्भ में)

● आंचल शुक्ल
●● अखिलेश शुक्ल

सारांश- आधुनिक युग में नारी ने पुरुषों के समकक्ष स्थान एवं अधिकार पाने के लिए कई स्त्री आन्दोलनों एवं संगठनों को जन्म दिया है। दुनिया के दूसरे देशों में स्त्री स्वतन्त्रता आन्दोलन चले और स्त्रियों को अपने अधिकार पाने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा। भारतीय समाज भी एक पुरुष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को मानने वाला समाज रहा है। जिसमें स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहा है, आर्थिक रूप से वे सदैव पुरुषों पर निर्भर रही हैं तथा उन्हें शिक्षा एवं बाह्य जगत् से भी दूर रखा गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण रीवा जिले के ग्राम लक्ष्मणपुर के संदर्भ में किया गया है। 478 परिवारों में से 150 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया है।

मुख्य शब्द- महिला, ग्रामीण समाज, सामाजिक संरचना, प्रस्थिति

व्यक्तियों, परिवारों या अन्य श्रेणी के लोगों का समाज के एक वर्ग से दूसरे वर्ग में गति सामाजिक गतिशीलता कहलाती है। इस गति के परिणामस्वरूप उस समाज में उस व्यक्ति या परिवार की दूसरों के सापेक्ष सामाजिक स्थिति (स्टैटस) बदल जाता है। सामाजिक गतिशीलता से अभिप्राय व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने से होता है। जब एक स्थान से व्यक्ति दूसरे स्थान को जाता है तो उसे हम साधारणतया आम बोलचाल की भाषा में गतिशील होने की क्रिया मानते हैं। परंतु इस प्रकार की गतिशीलता का कोई महत्व समाजशास्त्रीय अध्ययन में नहीं है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में गतिशीलता से तात्पर्य एक सामाजिक व्यवस्था में एक स्थिति से दूसरे स्थिति को पा लेने से है जिसके फलस्वरूप इस स्तरीकृत सामाजिक व्यवस्था में गतिशील व्यक्ति का स्थान उँचा उठता है व नीचे चला जाता है। एक स्थान से उपर उठकर दूसरे स्थान को प्राप्त कर लेना, जो उससे उँचा है, निस्संदेह गतिशीलता है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र में सामाजिक गतिशीलता का अभिप्राय है किसी व्यक्ति, समूह या श्रेणी की प्रतिष्ठा में परिवर्तन से है।

अवधारणात्मक विश्लेषण- पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में ग्रामीण और नगरीय दोनों ही समुदायों में स्त्रियों का जीवन आज भी एक बड़ी सीमा तक पुरुषों पर निर्भर है। दोनों ही समुदायों में स्त्रियों का मनुष्यों का मुख्य कार्य बच्चों का पालन-पोषण करना तथा गृहस्थी से सम्बन्धित दायित्वों को पूरा करना है। खेत पर काम करने वाली ग्रामीण स्त्रियों तथा कार्यालयों में नौकरी करने वाली स्त्रियों की प्रस्थिति में भिन्नता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में ग्रामीण और नगरीय सभी स्त्रियों को मताधिकार मिला हुआ है, लेकिन इस अधिकार का उपयोग पुरुष

● बी. ए. एलएल.बी आनर्स, तृतीय सेमेस्टर, यू.पी.ई.एस. देहरादून
●● प्राध्यापक, समाजशास्त्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश

सदस्यों की इच्छाओं के अनुरूप ही होता है। दहेज, वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक साधनों के उपयोग को लेकर जिस तरह ग्रामीण समुदाय में स्त्रियों को प्रताड़ित करने की घटनाएँ सामने आती हैं, यह अत्यंत लज्जाजनक स्थिति है। नगरीय समुदाय में भी इस तरह की घटनाओं की कमी नहीं है। इसका तात्पर्य है कि आज भी ग्रामीण और नगरीय जीवन में स्त्रियों के विरुद्ध होने वाली घरेलू हिंसा की प्रगति में काफी कुछ समानता है। जिस तरह गाँवों में स्त्री शिक्षा में वृद्धि होने तथा राजनीतिक जीवन में उनकी सहभागिता बढ़ने से स्त्रियों की प्रस्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ है, उसी तरह नगरों में भी स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार तथा आर्थिक क्रियाओं में सहभाग बढ़ने से उनमें एक नयी चेतना स्पष्ट होने लगी है। इससे पारिवारिक जीवन के संगठित होने के साथ ही परिवार में नये प्रकार के तनाव भी पैदा हो रहे हैं।

अधिकांश समाजों में विशेषकर भारतवर्ष में महिलाओं और पुरुषों में असमानता एक प्रमुख विषय है। स्त्रियों के स्तर के बारे में किसी भी पूर्वानुमान के लिए सामाजिक ढाँचे को समझना जरूरी है। सामाजिक संरचना, लोक परम्परा और आदर्श सभी मिलकर पुरुषों और महिलाओं के व्यवहारों से सम्बन्धित सामाजिक अपेक्षाओं को प्रमाणित करते हैं और समाज में महिलाओं की प्रस्थिति तथा भूमिका को भी सुनिश्चित करते हैं। भारतवर्ष में महिलाओं की प्रस्थिति संस्कृति, क्षेत्र और आयु जैसे विशेष कारकों से निर्धारित होती है। संवैधानिक और कानूनी तौर पर महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका तथा सामाजिक परम्पराओं द्वारा थोपी गई प्रस्थितियों और भूमिका में अंतर का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति है। पितृसत्तात्मक मूल्यों एवं संस्थाओं पर आधारित होने के कारण महिलाओं की अच्छी आज्ञाकारी और त्याग करने वाली बेटी और बहू और पत्नी के रूप में ही सामाजिक स्वीकार्यता है। उन्हें सामाजिक रीति-रिवाजों व सामाजीकरण के माध्यम से इस प्रकार ढाला जाता है कि वे सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत होने वाली असमानताओं, अधीनता और शोषण आदि का विरोध न करें। पुरुषों की संरक्षकत्व और आश्रय प्रवृत्ति की अधिकता बहुधा उनके व्यक्तित्व और निजता के विकास को अवरुद्ध कर देती है। महिलाओं की परिवार और समाज में स्थिति मुख्यतया देश के विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक और भौगोलिक कारकों से निर्धारित होती है। संयुक्त परिवार में पितृ पक्ष से सम्बन्धित पुरुषों का एक समूह होता है, जिन्हें सम्पत्ति संयुक्त खर्चों में हिस्सेदारी, आवास तथा रसोई में समान अधिकार प्राप्त होता है। यद्यपि औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव के कारण इस प्रकार के रहन-सहन में काफी परिवर्तन हुआ है, परन्तु संयुक्त परिवार की मान्यताएँ आज भी काफी हद तक प्रचलित हैं। वर्तमान समय में इन मान्यताओं में परिवर्तन हुआ है। महिलाएं अब समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही हैं तथा पुरुषवादी सोच में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा -

डॉ. श्रद्धा सुमन ने अपने शोध अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव में निष्कर्ष रूप में पाया कि अनुसूचित जाति की महिलाओं का उत्पीड़न होने से सामाजिक आधार पर बुरा प्रभाव पड़ा, अनुसूचित जातियों की महिलाओं का उत्पीड़न होने से उन्हें विभिन्न प्रकार की यातनायें झेलनी पड़ती हैं, जैसे- शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक तथा आर्थिक आदि।²

अमित कुमार वर्मा ने अपने अनुसंधान ग्रामीण समाज में दलितों की स्थिति : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण में पाया कि ग्रामीण समाज में दलितों की स्थिति अभी भी निम्न ही बनी हुई है। क्योंकि उनकी वर्तमान स्थिति के आधार पर उनके आर्थिक स्रोतों के रूप में कृषि एवं मजदूरी ही अग्रणी है। इन्हीं स्रोतों से होने वाली आय के आधार पर ही वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटा पाते हैं। आय की दृष्टि से उनकी आर्थिक स्थिति आज भी दयनीय है, क्योंकि अधिसंख्यक सूचनादाता 3000 रुपये मासिक से कम आय वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। दलित की शैक्षणिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है और अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर उनकी उन्मुखा बढ़ी है। उनमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम जो पहले थे, जैसे रहन-सहन, रीति-रिवाज, सामाजिक मूल्य आदि इन सभी में परिवर्तन आया है, दलित उत्तरदाताओं में नये तरीके से जीवन जीने की लालसा स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। वे अब राजनीतिक मुद्दों का भी ज्ञान रखते हैं जिससे उनकी राजनीति में प्रवेश को लेकर रुचि बढ़ी है और उनके परिवारों के आकारों में भी परिवर्तन हुआ है जो संयुक्त से एकाकी परिवार को अधिक प्राथमिकता देते हैं।³

डॉ. शकील अहमद ने अपने शोध अन्वेषण अनुसूचित जातीय महिला नेतृत्व की राजनीतिक अभिरूचि एवं सजगता में निष्कर्ष रूप में पाया कि अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व पंचायतों में कम प्रतिस्पर्धा से आया है। उनकी ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुधार की बात उत्साहवर्द्धक मानी जा सकती है। संचार माध्यमों के प्रति उनकी जागरूकता का स्तर निम्न होना अशिक्षा एवं कमजोर सामाजिक, आर्थिक स्थिति से जुड़ा विषय है। महत्वाकांक्षा का अभाव ही इस संदर्भ में अंतर सम्बंधी प्रतीत होता है। यदि अनुसूचित जाति के इन नेताओं, प्रधानों के उत्तरों को समग्र रूप से देखा जाए तो ग्रामीण स्तर पर महिलाओं का एक ऐसा नेतृत्व उभर रहा है, जिससे इस आशा का संचार होता है कि अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व की पंचायतों में प्रथम औपचारिक भागीदारी आगे आने वाले समय में ज्यादा सजग और जागरूक नेतृत्व देने में सक्षम होगी। उत्तर प्रदेश की पंचायतों के लिए यह एक आशापूर्ण संकेत है।⁴

डॉ. अखिलेश शुक्ल ने अपने शोध अध्ययन महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा में यह पाया है कि अब निरंतर महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आ रहा है वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं और समाज के विकास के हिस्सेदारी में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।⁵

अध्ययन क्षेत्र – ग्राम लक्ष्मणपुर रीवा जिले के हुजूर तहसील में स्थित एक बड़ा गाँव है, जिसमें कुल 1013 परिवार रहते हैं। लक्ष्मणपुर गाँव की जनसंख्या जनगणना 2011 के अनुसार 4261 है, जिसमें 2264 पुरुष हैं और 1997 महिलाएँ हैं। लक्ष्मणपुर गाँव में 0-6 आयु वर्ग के बच्चों की आबादी 598 है, जो गाँव की कुल आबादी का 14.03 प्रतिशत है। लक्ष्मणपुर गाँव का औसत लिंग अनुपात 882 है जो मध्य प्रदेश राज्य के औसत 931 से कम है। लक्ष्मणपुर में जनगणना के अनुसार बाल लिंग अनुपात 829 है, जो मध्य प्रदेश के औसत 918 से कम है। मध्य प्रदेश की तुलना में लक्ष्मणपुर गाँव में साक्षरता दर अधिक है। 2011 में मध्य प्रदेश के 69.32 प्रतिशत की तुलना में लक्ष्मणपुर गाँव की साक्षरता दर 74.26 प्रतिशत थी। लक्ष्मणपुर में पुरुष साक्षरता 84.05 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता दर 63.27 प्रतिशत है।⁶ अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर का सांख्यिकीय विवरण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विवरण	कुल	पुरुष	महिला
मकान की कुल संख्या	1013		
जनसंख्या	4261	2264	1997
बालक (0-6)	598	327	271
अनुसूचित जाति	457	247	210
अनुसूचित जनजाति	544	281	263
साक्षरता	74.26	84.05	63.27
कुल कामगार	1531	1177	354
मुख्यकामगार	1089		
सौमांत कामगार	442	282	160

सारणी क्र.01

अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर का सांख्यिकी विवरण जनगणना 2011

उद्देश्य -

1. ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति का आंकलन करना।

2. ग्रामीण महिलाओं की गतिशीलता का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि व क्षेत्र - प्रस्तुत शोध पत्र ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति में उत्तरदाता हेतु रीवा जिले के गाँव लक्ष्मणपुर का चयन किया गया है, जिसमें 478 परिवारों में से 150 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया है। प्राथमिक तथ्यों को उद्देश्यों के अनुरूप सारणी के द्वारा प्रतिशत में प्रस्तुत किया गया है एवं तदानुकूल विश्लेषण किया गया है।

उपकल्पना- अनुसन्धान या अध्ययन के क्षेत्र में पूर्व कल्पना या उपकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसका निर्माण और प्रयोग वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति का एक महत्वपूर्ण चरण होता है। सरल शब्दों में उपकल्पना का अर्थ होता है, एक ऐसा विचार या सिद्धांत जिसे शोधकर्ता अध्ययन के लक्ष्य के रूप में रखता है, उसकी जांच करता है और प्रमाणित करता है। इस शोध पत्र की कुछ उपकल्पना इस प्रकार हैं-

1. अध्ययन क्षेत्र में संयुक्त परिवार की प्रथा को महत्व प्रदान किया जाता है।
2. महिलाएं स्वयं और परिवार के भविष्य के प्रति सजग हैं।
3. सामाजिक साहचर्य के नियमों में परिवर्तन आ रहा है।
4. वर्तमान में लिव इन रिलेशनशिप को महिलाओं द्वारा मान्यता प्रदान की जा रही है।

अध्ययन का महत्व - प्रस्तुत शोध के आधार पर ग्रामीण महिलाओं की वास्तविक स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है।

अध्ययन की कठिनाई - साक्षात्कार हेतु महिलाओं की समय पर उपलब्धता व उनसे समय प्राप्त करने में कठिनाई आयी।

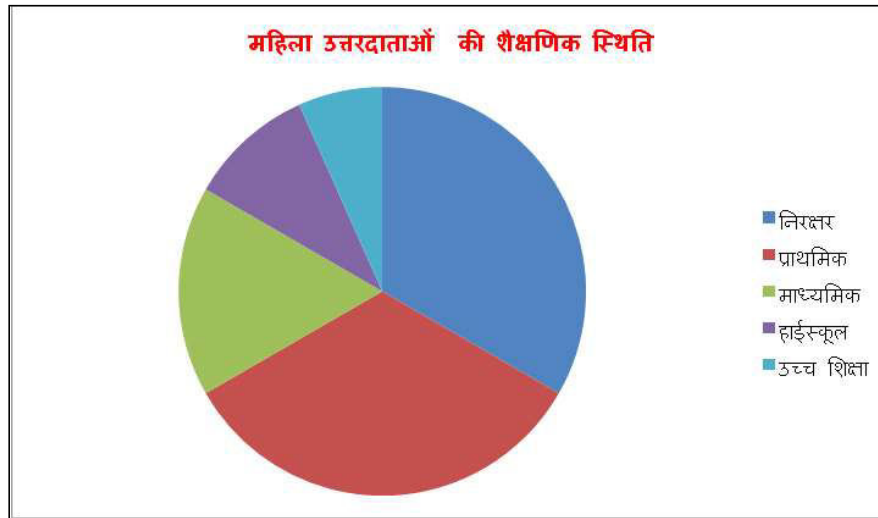
तथ्यों का सारणीयन एवं विश्लेषण- साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों को सारणी में प्रस्तुत करते हुए उनका विश्लेषण किया गया है और तथ्यों को डायग्राम में भी प्रस्तुत किया गया है।

ग्रामीण महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति- देश की कुल जनसंख्या में ग्रामीण साक्षरता दर 68.9 प्रतिशत तथा शहरी साक्षरता दर 84.9 प्रतिशत है, जिसमें ग्रामीण महिला साक्षरता केवल 58.75 प्रतिशत जबकि शहरी महिला साक्षरता 79.92 प्रतिशत है। अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर में ग्रामीण महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति को निम्नलिखित सारणी द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

सारणी क्र.02

क्र.	शैक्षणिक स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
01	निरक्षर	50	33
02	प्राथमिक	50	33
03	माध्यमिक	25	17
04	हाईस्कूल	15	10
05	उच्च शिक्षा	10	07
	योग	150	100

महिला उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति



उक्त स्थिति को हम नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत कर रहे हैं-

अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर में महिला साक्षरता की दर 63.27 प्रतिशत है। उत्तर दाताओं की शैक्षणिक स्थिति से प्राप्त तथ्य यह बताते हैं कि 33 प्रतिशत निरक्षर, 33 प्रतिशत प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 17 प्रतिशत माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 10 प्रतिशत हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त और 07 प्रतिशत महिला उत्तरदाता उच्च शिक्षा प्राप्त करती हुई पाई गई है।

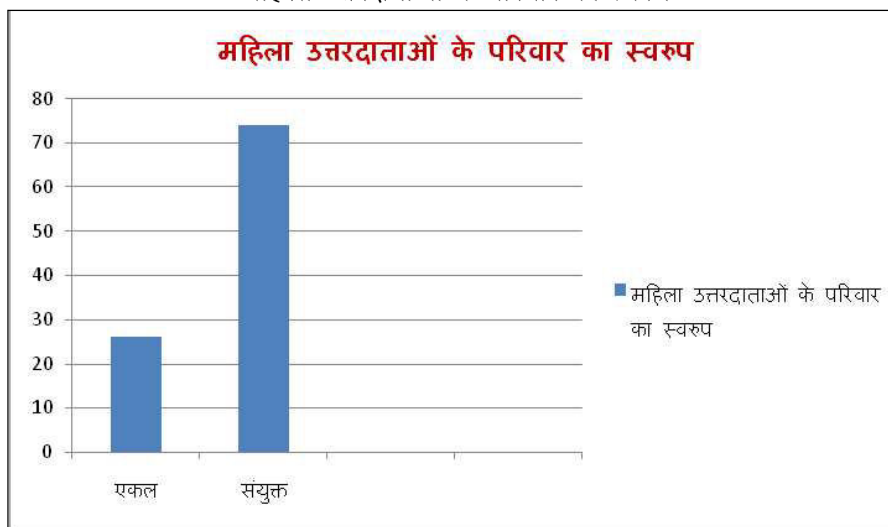
परिवार का स्वरूप- परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जो आपसी सहयोग व समन्वय से क्रियान्वित होती है और जिसके समस्त सदस्य आपस में मिलकर अपना जीवन प्रेम, स्नेह एवं भाईचारा पूर्वक निर्वाह करते हैं। संस्कार, मर्यादा, सम्मान, समर्पण, आदर, अनुशासन आदि किसी भी सुखी-संपन्न एवं खुशहाल परिवार के गुण होते हैं। कोई भी व्यक्ति परिवार में ही जन्म लेता है, उसी से उसकी पहचान होती है और परिवार से ही अच्छे-बुरे कार्यों का ज्ञान उसे होता है। परिवार सभी लोगों को जोड़े रखता है और दुःख-सुख में सभी एक-दूसरे का साथ देते हैं। कहते हैं कि परिवार से बड़ा कोई धन नहीं होता है, पिता से बड़ा कोई सलाहकार नहीं होता है, मां के आंचल से बड़ी कोई दुनिया नहीं, भाई से अच्छा कोई भागीदार नहीं, बहन से बड़ा कोई शुभ चिंतक नहीं, इसलिए परिवार के बिना जीवन की कल्पना करना कठिन है। एक अच्छा परिवार बच्चे के चरित्र निर्माण से लेकर व्यक्ति की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक एकाकी परिवार और दूसरा संयुक्त परिवार। भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की धारणा रही है।

संयुक्त परिवार में वृद्धों को संबल प्रदान होता रहा है और उनके अनुभव व ज्ञान से युवा व बाल पीढ़ी लाभान्वित होती रही है।⁷ अध्ययन क्षेत्र में महिला उत्तरदाताओं के परिवार के स्वरूप के संबंध में तथ्य एकत्रित किए गए जिन्हें सारणी में प्रस्तुत किया जा रहा है-

क्र.	परिवार का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
01	एकल	40	26
02	संयुक्त	110	74
	योग	150	100

सारणी क्र.03

महिला उत्तरदाताओं के परिवार का स्वरूप



उक्त स्थिति को हम नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत कर रहे हैं-

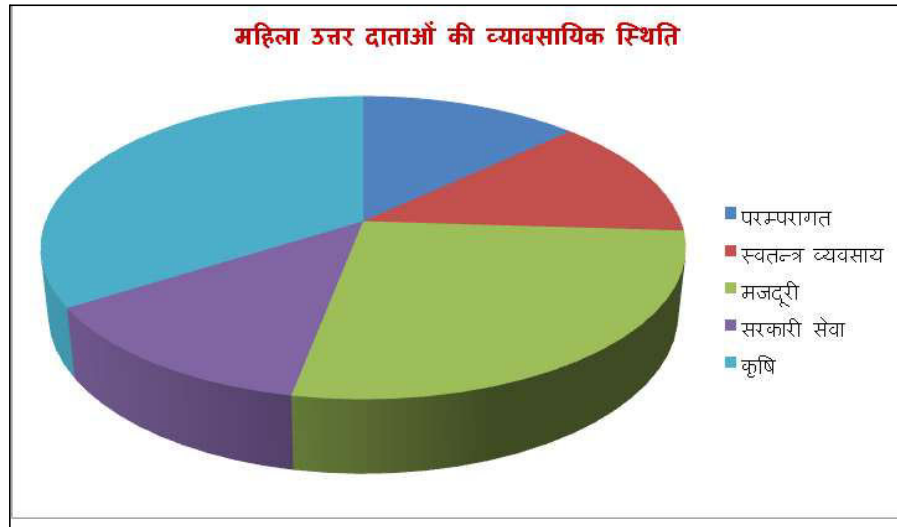
उपरोक्त सारणी एवं डायग्राम के विश्लेषण करने से यह तथ्य सामने आता है की अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर में आज भी जहां वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति तेजी से अपने पैर फैला रही है, इस स्थिति में वहां 74 प्रतिशत परिवार संयुक्त पाए गए हैं और जबकि 26 प्रतिशत परिवारों की स्थिति एकल रही है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय संस्कृति की मूल धारणा जो परिवार के संबंध में रही है वह ग्राम लक्ष्मणपुर में दिखाई देती है। उपरोक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 01 पूर्णतया सिद्ध होती है।

सारणी क्र.04

क्र.	व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
01	परम्परागत	20	13
	स्वतन्त्र व्यवसाय	20	13
02	मजदूरी	40	27
03	सरकारी सेवा	20	13
04	कृषि	50	34
	योग	150	100

महिला उत्तर दाताओं की व्यावसायिक स्थिति

उक्त स्थिति को हम नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत कर रहे हैं-



अध्ययन क्षेत्र में महिला उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति के संबंध में साक्षात्कार के दौरान तथ्य एकत्रित किए गए और उसमें यह पाया गया कि 13 प्रतिशत महिलाएं परंपरागत व्यवसाय में, 13 प्रतिशत स्वतंत्र व्यवसाय में, 27 प्रतिशत मजदूरी के कार्य में, 13 प्रतिशत सरकारी सेवा में जो उच्च शिक्षा प्राप्त थी और 34 प्रतिशत महिलाएं कृषि के कार्यों में संलग्न हैं। अध्ययन क्षेत्र में महिला उत्तरदाताओं की व्यवसाय की स्थिति अच्छी पाए जाने का मूल कारण यह रहा है कि यहां महिलाओं में साक्षरता दर अच्छी है। महिलाएं सोचने और समझने में तत्पर हैं। अपने परिवार के भविष्य के प्रति सजग हैं। उक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 02 भी शत-प्रतिशत सिद्ध होती है।

परंपरागत सामाजिक स्थिति में बदलाव- अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक गतिशीलता के संदर्भ में यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या उत्तरदाता महिलाओं की परंपरागत सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है। साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

क्र.	सामाजिक स्थिति	क्या सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है			
		हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	जातीय स्थिति में परिवर्तन	110	73	40	27
02	खान पान के नियमों में परिवर्तन	120	80	30	20
03	सामाजिक साहचर्य में परिवर्तन	90	60	60	40
04	स्वतंत्रता के संबंध में परिवर्तन	100	67	50	33

सारणी क्र.05

परंपरागत सामाजिक स्थिति में बदलाव

उपरोक्त सारणी में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं-

उपरोक्त सारणी में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं-

- जातीय स्थिति के परिवर्तन के संबंध में 73 प्रतिशत महिला उत्तरदाता यह मानती हैं की परिवर्तन आया है तथा 27 प्रतिशत महिलाएं यह मानती हैं कि अभी भी जातीय स्थिति के संबंध में परंपरागत नियमों का पालन समाज में हो रहा है।
- खानपान के नियमों के संबंध में 80 प्रतिशत महिलाओं ने यह स्वीकार किया है कि अब पुराने परंपरागत नियम खानपान के संबंध में प्रचलित नहीं है, जबकि 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि अभी भी अध्ययन क्षेत्र में खानपान के परंपरागत नियमों का पालन किया जाता है।
- सामाजिक साहचर्य में परिवर्तन के संबंध में 60 प्रतिशत महिलाएं यह स्वीकार करती हैं कि सामाजिक साहचर्य के संबंध में परंपरागत स्थिति में परिवर्तन आया है, जबकि 40 प्रतिशत महिलाएं यह कहती हैं कि स्थिति अब भी वैसी ही है जैसी पहले थी। उक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 03 आंशिक रूप से सिद्ध होती है।
- महिलाओं के अधिकारों के संबंध में जब उत्तरदाताओं से बात की गई तो 67 प्रतिशत महिला उत्तरदाता यह स्वीकार करती हैं कि उन्हें अधिकांश अधिकार प्राप्त हैं और वह निर्णय लेने में सक्षम हैं। कभी-कभी निर्णय लेने के संबंध में अपने परिवारजनों से सलाह-मशविरा जरूर करती हैं लेकिन 33 प्रतिशत महिलाएं यह मानती हैं कि अब भी उनके अधिकार सीमित हैं।

परिवार में विवाह का स्वरूप- विवाह, जिसे शादी भी कहा जाता है, दो लोगों के बीच एक सामाजिक या धार्मिक मान्यता प्राप्त मिलन है जो उन लोगों के बीच, साथ ही उनके और किसी भी परिणामी जैविक या दत्तक बच्चों तथा समधियों के बीच अधिकारों और दायित्वों को स्थापित करता है। विवाह की परिभाषा न केवल संस्कृतियों और धर्मों के बीच, बल्कि किसी भी संस्कृति और धर्म के इतिहास में भी दुनिया भर में बदलती है। आमतौर पर यह मुख्य रूप से एक संस्थान है, जिसमें पारस्परिक संबंध, आमतौर पर यौन संबंध स्वीकार किए जाते हैं या संस्वीकृत होते हैं।⁷ वर्तमान में विवाह के स्वरूप पर बात करें तो अपनी सहमति से, विवाह के बिना लिव-इन-रिलेशनशिप में रहना हो, बिना गर्भ धारण किये सरोगेट माँ बनना हो या बिना ब्याह किये सिंगल पेरेंट बनना हो, यह कुछ ऐसी घटनायें हैं, जो हमें विवाह के बदलते स्वरूप की ओर इशारा करती हैं कि पिता बनने के लिए जरूरी नहीं है कि शादी ही की जाये। हालाँकि पश्चिम ने तो इस अवधारणा को पहले ही स्वीकार कर लिया था। इससे तो विवाह नामक संस्था ही बिखर जायेगी, समाज में अनाचार फैलेगा, अवैध बच्चे

क्र.	विवाह का स्वरूप	क्या विवाह के स्वरूप में बदलाव आया है			
		हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	जातीय विवाह	110	73	40	27
02	अंतरजातीय विवाह	38	25	112	75
03	लिव इन रिलेशनशिप	08	05	142	95

पैदा होंगे, वर्ण संकर पैदा होंगे जिनकी बुद्धि सीमित होगी। इस तरह के कई सवाल भी खड़े हुए हैं।⁸ अध्ययन क्षेत्र में इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया और जो तथ्य सामने आए उन्हें तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी क्र.06

परिवार में विवाह का स्वरूप

अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाता महिलाओं का विवाह के प्रति क्या दृष्टिकोण है, इस संबंध में तथ्यों का एकत्रीकरण किया गया जो तथ्य प्राप्त हुए उनसे यह स्पष्ट होता है कि 73 प्रतिशत महिला उत्तरदाता अभी भी अपनी ही जाति में विवाह करना पसंद करती हैं, जबकि 27 प्रतिशत उत्तरदाता महिला जातीय विवाह के विरुद्ध विचार रखती हैं। 38 प्रतिशत महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह का समर्थन किया है, जबकि 75 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह के विरुद्ध बात कही है। लिव इन रिलेशनशिप के प्रश्न पर 05 प्रतिशत महिलाएं सहमति दर्ज कराती हैं, जबकि 95 प्रतिशत महिलाएं इस संबंध में अपनी असहमति दर्ज कराती हैं। उपरोक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 04 असत्य साबित होती है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन के दौरान ग्रामीण समाज में महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति अच्छी है। अधिकांश ग्रामीण महिलाएं साक्षर हैं। शोध के निष्कर्ष इस प्रकार रहे हैं-

- लक्ष्मणपुर में पुरुष साक्षरता 84.05 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता दर 63.27 प्रतिशत है।
- अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर में महिला साक्षरता की दर 63.27 प्रतिशत है। उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति से प्राप्त तथ्य यह बताते हैं कि 33 प्रतिशत निरक्षर, 33 प्रतिशत प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 17 प्रतिशत माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 10 प्रतिशत हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त और 07 प्रतिशत महिला उत्तरदाता उच्च शिक्षा प्राप्त करती हुई पाई गई है।
- अध्ययन क्षेत्र ग्राम लक्ष्मणपुर में आज भी जहां वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति तेजी से अपने पैर फैला रही है, इस स्थिति में वहां 74 प्रतिशत परिवार संयुक्त पाए गए हैं और जबकि 26 प्रतिशत परिवारों की स्थिति एकल रही है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय संस्कृति की मूल धारणा जो परिवार के संबंध में रही है वह ग्राम लक्ष्मणपुर में दिखाई देती है।
- महिला उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति के संबंध में साक्षात्कार के दौरान तथ्य एकत्रित किए गए और उसमें यह पाया गया कि 13 प्रतिशत महिलाएं परंपरागत व्यवसाय में, 13 प्रतिशत स्वतंत्र व्यवसाय में, 27 प्रतिशत मजदूरी के कार्य में, 13 प्रतिशत सरकारी सेवा में जो उच्च शिक्षा प्राप्त थी और 34 प्रतिशत महिलाएं कृषि के कार्यों में संलग्न हैं।
- 73 प्रतिशत महिला उत्तरदाता अभी भी अपनी ही जाति में विवाह करना पसंद करती हैं, जबकि 27 प्रतिशत उत्तरदाता महिला जातीय विवाह के विरुद्ध विचार रखती हैं। 38 प्रतिशत महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह का समर्थन किया है, जबकि 75 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह के विरुद्ध बात कही है। लिव इन रिलेशनशिप के प्रश्न पर 05 प्रतिशत महिलाएं सहमति दर्ज कराती हैं, जबकि 95 प्रतिशत महिलाएं इस संबंध में अपनी असहमति दर्ज कराती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. <https://hi.wikipedia.org/wiki>
2. सुमन, श्रद्धा - अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव, राधाकमल मुकजी चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 01 जनवरी-जून-2014 पृ.स. 153

3. वर्मा, अमित कुमार - ग्रामीण समाज में दलितों की स्थिति: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, राधाकमल मुकजी, चिन्तन परम्परा, वर्ष 14 अंक 2 जुलाई- दिसम्बर 2012 पृ.स.-120
4. अहमद शकील - अनुसूचित जातीय महिला नेतृत्व की राजनीतिक अभिरूचि एवं सजगता, राधाकमल मुकजी, चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 2 जुलाई-दिसम्बर 2014 पृ.स. 62
5. शुक्ल अखिलेश, महिला सशक्तिकरण दशा एवं दिशा, सेंटर फॉर रिसर्च स्टडी, रीवा 2016, पृ.स. 108
<https://www.prabhasakshi.com/currentaffairs/importance&of&family&and&its&changing&nature>
7. <https://hi-wikipedia-org>
8. <https://www-jankipul-com>

बम्बई एवं लाहौर में आर्य समाज की भूमिका : एक समीक्षात्मक अध्ययन

● वरदराज

सारांश- महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वारा 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना की गई। आर्य समाज की स्थापना के समय से ही यह विचार विद्यमान था कि जहाँ एक ओर सब नगरों और ग्रामों में स्थानीय आर्य समाज स्थापित किए जाए, वहाँ साथ ही प्रत्येक देश व प्रदेश में एक-एक प्रधान समाज भी हो। इसी परिप्रेक्ष्य में बम्बई एवं लाहौर में आर्य समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया। आर्य समाज के संगठन के लोकतान्त्रिक स्वरूप को प्रतिपादित किया जा सके। प्रत्येक आर्य समाज का संगठन तो लोकतन्त्रवाद पर आधारित था ही, क्योंकि उसके पदाधिकारियों की नियुक्ति चुनाव द्वारा की जाती थी और समाज के कार्यकलाप सम्बन्धी सब निर्णय भी सभासदों की सम्मति लेकर किए जाते थे।

मुख्य शब्द- हिन्दू, धर्म, महर्षि, समाज, लाहौर, बम्बई, स्वदेशी, आर्य

लोकतन्त्रवाद पर आधारित होना आर्य समाज के संगठन की एक अन्य अनुपम विशेषता रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस समय सन् 1875 ई० में पहले-पहल आर्य समाज की स्थापना की और बम्बई में उसके लिए नियमों का निर्माण किया गया तो भारत की तो बात ही क्या यूरोप में भी लोकतन्त्रवाद शैशव दशा में था। वहाँ के बहुसंख्यक राज्यों में वंशक्रमानुगत राजाओं के एक तन्त्र व निरंकुश शासन विद्यमान थे। सम्पूर्ण यूरोप में केवल दो राज्य (स्विट्जरलैण्ड और फ्रांस) ही ऐसे थे, जिनमें वंशक्रमानुगत राजा न होकर राष्ट्रपतियों की सत्ता थी। इनमें भी फ्रांस में वंशक्रमानुगत राजाओं के शासन का अन्त हुए चार वर्ष से भी कम समय हुआ था। ग्रेट ब्रिटेन में पार्लियामेन्ट की सत्ता अवश्य थी, पर उसके एक सदन में तो केवल वंशक्रमानुगत या राजा की कृपा से बनाए गए लार्ड ही सदस्य होते थे, यद्यपि दूसरे सदन के सदस्य निर्वाचित हुआ करते थे, पर वे जनता के एक बहुत छोटे भाग का ही प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसी दशा में दयानन्द सरस्वती की सहमति एवं निर्देशन एवं निदेशन में आर्य समाज के जिन नियमों का निर्माण किया गया, उनमें लोकतन्त्रवाद को पूर्ण रूप से अपनाया गया था और उसी के अनुसार समाज के संचालन की व्यवस्था की गयी थी। इसमें सन्देह नहीं कि जिस ढंग का आर्य समाज का संविधान लाहौर में सन् 1877 ई० में स्वीकृत किया गया था। वह केवल धार्मिक संगठनों के लिए ही नया नहीं था, पर राज्य संस्था के लिए भी था, जहाँ अंग्रेजों का निरंकुश शासन विद्यमान था।

बम्बई और लाहौर में आर्य समाज के संगठन का जो स्वरूप निर्धारित किया गया, वह स्थानीय आर्य समाजों के लिए था। किसी बड़े क्षेत्र (जिला, प्रान्त व देश या विश्व) के लिए आर्य समाज के संगठन का क्या रूप हो, इस विषय में कोई व्यवस्था सन् 1875 और 1877 ई. में नहीं की गई थी। बम्बई में निर्धारित नियमों में एक प्रधान समाज के स्थापित किए

● अतिथि व्याख्याता, के.पी. कॉलेज मुरलीगंज, बी.एन.मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

जाने की व्यवस्था अवश्य की गई थी, जो इस प्रकार थी- “इस समाज में प्रति देश मध्य एक प्रधान समाज होगा और दूसरी शाखाएँ होंगी। प्रधान समाज के अनुकूल और सभी समाजों की व्यवस्था रहेगी। प्रधान समाज में वेदोक्त अनुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में सत्योपदेश के नाना प्रकार की पुस्तक रहेंगी और एक आर्य प्रकाश पत्र यथानुकूल आठ-आठ दिन में निकलेगा। यह सब समाज में प्रवृत्त किए जायेंगे।

“आर्य समाज की स्थापना के समय से ही यह विचार विद्यमान था कि जहाँ एक ओर सब नगरों और ग्रामों में स्थानीय आर्य समाज स्थापित किए जाए, वहाँ साथ ही प्रत्येक देश व प्रदेश में एक-एक प्रधान समाज भी हो। इस प्रधान समाज का मुख्य प्रयोजन अपनी शाखा प्रशाखाओं का मार्ग प्रदर्शित करना हो और इसी निमित्त उस द्वारा एक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया जाया करे।” महर्षि के जीवन काल में इस विचार को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। पर उनके देहावसान के पश्चात् सितम्बर 1884 ई. में बम्बई आर्य समाज के उप प्रधान श्री सेवकलाल कृष्ण दास ने भारत भर के आर्य समाजों को पत्र भेजकर उन्हें सम्पूर्ण देश का एक प्रधान समाज बनाने के लिए प्रेरित किया। शीघ्र ही प्रधान समाज के निर्माण के आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया, जिसके परिणाम स्वरूप सबसे पूर्व पंजाब के आर्य समाजों ने अपना केन्द्रीय संगठन बनाया (1885 ई.) और कुछ समय बाद पश्चिमोत्तर प्रान्त के आर्य समाजों ने। धीरे-धीरे अन्य प्रदेशों में भी आर्य प्रतिनिधि सभाओं का गठन होता गया। कुछ वर्ष पश्चात् देश भर की प्रतिनिधि सभाओं का एक केन्द्रीय संगठन ‘सार्वदेशिक सभा’ के नाम से बनाया गया। (31 अगस्त, 1909 ई.) भारत से बाहर मारीशिस, फिजी, अफ्रीका आदि में भी ज्यों-ज्यों आर्य समाजों की स्थापना होती गई, सार्वदेशिक सभा का क्षेत्र भी अधिकाधिक विस्तृत हो गया और अब वह समय आ चुका है, जबकि इस सभा ने विश्व भर के आर्य समाजों के सार्वभौम शिरोमणि संगठन का रूप प्राप्त कर लिया है।

प्रधान आर्य समाज के विचार को सम्मुख रखकर किस प्रकार विविध क्षेत्रों, प्रदेशों और देशों में आर्य उपप्रतिनिधि सभाओं, प्रतिनिधि सभाओं और सबसे ऊपर सार्वदेशिक सभा के संगठन बने। यहाँ इन संगठनों का उल्लेख केवल इस प्रयोजन से किया गया है, जिससे कि आर्य समाज के संगठन के लोकतान्त्रिक स्वरूप को प्रतिपादित किया जा सके। प्रत्येक आर्य समाज का संगठन तो लोकतन्त्रवाद पर आधारित था ही, क्योंकि उसके पदाधिकारियों की नियुक्ति चुनाव द्वारा की जाती थी और समाज के कार्यकलाप सम्बन्धी सब निर्णय भी सभासदों की सम्मति लेकर किए जाते थे। पर जब प्रधान समाज के रूप में केन्द्रीय आर्य संगठनों का निर्माण शुरू हुआ, तो उनके लिए भी मतदान, निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व का आश्रय लिया गया। महर्षि के देहावसान के कुछ ही समय पश्चात् जब पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा का गठन किया गया तो उसमें पंजाब के 16 आर्य सभाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे, और उन्होंने अन्तरंग सभा के 15 सदस्यों का चुनाव किया था। बाद में आर्य समाजों और उसके सभासदों की संख्या बढ़ जाने पर यह व्यवस्था करने की आवश्यकता हुई कि किस समाज से कितने प्रतिनिधि सभा में लिए जाएं और प्रतिनिधियों को किस ढंग से निर्वाचित किया जाया करे। आर्य प्रतिनिधि सभाओं की कार्यविधि आदि के सम्बन्ध में भी नियमों का निर्माण किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि ये नियम अविकल रूप से लोकतन्त्रवाद पर आधारित हैं। 19वीं सदी का अन्त होने से पूर्व ही आर्य समाज ने अपने स्थानीय एवं केन्द्रीय संगठनों के लिए ऐसी ही नियमावली या संविधान का निर्माण कर लिया था और यह कार्य उसने उस समय सम्पादित किया था, जबकि भारत की शासन संस्थाओं पर लोकतन्त्रवाद

का कोई भी प्रभाव नहीं था।

आर्य समाज के संगठन में गुरुओं के लिए कोई स्थान नहीं है, विद्वानों और सन्यासियों को समाज द्वारा सम्मान अवश्य दिया जाता है, उनके प्रवचनों तथा उपदेशों को महत्व भी सब आर्य देते हैं, पर समाज के संगठन में उन्हें कोई विशेषाधिकार व विशिष्ट स्थिति प्राप्त नहीं है। बम्बई में जब सर्वप्रथम आर्य समाज की स्थापना हुई, तो कतिपय सज्जनों ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था, कि वे आर्य समाज के अधिनायक व अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लें। पर वे इससे सहमत नहीं हुए। लोगों के बहुत कहने पर उन्होंने अन्य सभासदों के समान बम्बई आर्य समाज का एक साधारण सभासद बनना स्वीकार कर लिया और अन्य सभासदों की भांति वे भी चन्दा देते रहें।

सन् 1877 में जब लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई, तो वहाँ भी यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि महर्षि को लाहौर आर्य समाज के संरक्षक का पद प्रदान किया जाए। पर वे इससे सहमत नहीं हुए, उनका कथन था कि- “इससे गुरुडम की गन्ध आती है, और मेरा उद्देश्य ही गुल्डले का तोड़ने का है न कि स्वयं गुरु बनकर एक नया पन्थ स्थापित करने का। यदि कल इस पदवी से मेरा ही मस्तिष्क फिर जाए, अथवा ऐसा न हो और मेरा स्थानापन्न घमण्ड में आकर कोई कार्य करने लगे तो तुम लोगों को बड़ी कठिनता होगी और वही दोष उत्पन्न हो जायेंगे, जो दूसरे नवीन पन्थों में हो गए हैं।”¹²

महर्षि के यही विचार थे, जिनके कारण उन्होंने आर्य समाज के संगठन को लोकतन्त्रवाद के अनुसार बनाया, और सब आर्य सभासदों की स्थिति को एक समान रखने की व्यवस्था की, यह सर्वथा सम्भव है कि कोई व्यक्ति अपनी विद्वता, कार्य क्षमता, सेवा आदि गुणों के कारण आर्य समाज में विशिष्ट स्थिति भी तब तक ही रहेगी, जब तक कि आर्य सभासदों की समविष्ट की उस पर आस्था और श्रद्धा कायम रहें। निःसन्देह, धार्मिक संगठनों के इतिहास में महर्षि द्वारा एक ऐसा पग उठाया गया था जो सर्वथा नवीन और मौलिक था, पर साथ ही जिसके कारण आर्य समाज के पथ भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना का अन्त हो जाता था।

यद्यपि ब्रम्ह समाज ने हिन्दू धर्म और समाज-सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया परन्तु फिर भी ब्रम्ह समाज आन्दोलन केवल रक्षात्मक था। ईसाई धर्म और पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर इसने हिन्दू धर्म और समाज की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया था। उसने वेद और उपनिषदों से प्रेरणा प्राप्त की थी परन्तु उसने उनकी श्रेष्ठता को स्थापित करने का साहस नहीं किया था, अपितु उसने ईसाई और इस्लाम धर्म को भी समान पद प्रदान किया था। लेकिन हिन्दू धर्म और उसकी आत्मा उससे सन्तुष्ट न हो सकी थी। हिन्दू धर्म और समाज को एक उग्र और साहसी समर्थक की आवश्यकता थी और इस आवश्यकता को पूर्ति स्वामी दयानन्द ने की।”¹³

आर्य समाज ने हिन्दू धर्म, सांस्कृतिक पुनरुत्थान और समाज के सुधार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये। स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के निर्माण में समानता की जिस भावना को सम्मिलित किया, वह विभिन्न समाजों के संगठन और उनके प्रचार कार्य में अत्यधिक सहायता देने वाली सिद्ध हुई। आर्य समाज की सफलता का एक अन्य मुख्य आधार आर्य समाज की धार्मिक कट्टरता थी। हिन्दू धर्म सिद्धान्त और व्यावहारिक दृष्टि से सर्वदा उदार रहा है, ईश्वर की एकता और विचारों की विभिन्नता में स्वयं उसका विश्वास रहा है। स्वयं वेद भी अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं करते। इस कारण, हिन्दू धर्म ने ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों के प्रति सहनशीलता का व्यवहार किया है। लेकिन यही हिन्दू धर्म

की सबसे बड़ी दुर्बलता भी रही है। जबकि इस्लाम और ईसाई धर्म क्रमशः 'कुरान' और बाइबिल को ही एक मात्र दूत मानते हैं तथा उसी धर्म का पालन करना सत्य मार्ग और स्वर्ग जाने का मार्ग बताते हैं। हिन्दू धर्म सभी मार्गों को उचित मानता है और सभी महान धार्मिक व्यक्तियों को ईश्वर का दूत स्वीकार करता है। इसी कारण हिन्दू धर्म की उदारता उसकी निर्बलता का कारण बनी और इसी कारण वह कट्टर इस्लाम और ईसाई धर्म का मुकाबला करने में असमर्थ रहा। स्वामी दयानन्द ने इस दुर्बलता को समझा तथा इस्लाम और ईसाई धर्म की भांति हिन्दू धर्म को कट्टरता प्रदान की। इसी कारण उन्होंने वेदों को सत्य ज्ञान का एक मात्र आधार बताया। इसके कारण आर्य समाज हिन्दू धर्म का कट्टर समर्थक बना और सैनिक हिन्दुत्व कहलाया।

“इस प्रकार समानता और धार्मिक कट्टरता की भावना को लेकर आर्य समाज ने भारत में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य किया उसकी तुलना किसी भी धार्मिक सुधार आन्दोलन से नहीं की जा सकती। आर्य समाज का कार्य उन्नीसवीं सदी के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों की तुलना में अधिक सफल और स्थायी हुआ। आज भी भारत के गांव-गांव और नगर-नगर में आर्य-समाज और उसकी शिक्षण संस्थाएं मौजूद हैं।”⁴ आर्य-समाज ने मूर्ति-पूजा, कर्मकाण्ड, बलि-प्रथा, स्वर्ग और नर्क की कल्पना तथा भाग्य में विश्वास का विरोध किया। उसने वेदों की श्रेष्ठता का दावा किया और उसी आधार पर उसने मन्त्र पाठ, हवन यज्ञ, कर्म आदि पर बल दिया। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म को सरल बनाया और उसकी श्रेष्ठता में विश्वास उत्पन्न किया। वेदों की व्याख्या उसने इस प्रकार की जिससे वेद अनेक वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तों के स्रोत माने जा सकते हैं। कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है कि जिसे हम वेदों से प्राप्त नहीं कर सकते, यह उसका विश्वास है। हिन्दू केवल अपने सत्य ज्ञान को भूल गये हैं और यदि वे वेदों का अध्ययन करेंगे तो उन्हें संसार का सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में प्राप्त हो जायेगा। इस कारण हिन्दुओं को धर्म के विषय में ही नहीं बल्कि राजनीतिक, आर्थिक और वैज्ञानिक धारणाओं के लिए भी इस्लाम और ईसाई धर्म या सभ्यता की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। इस विश्वास तथा हिन्दू धर्म और वेदों की श्रेष्ठता के आधार को लेकर आर्य समाज ने हिन्दू धर्म को इस्लाम और ईसाई धर्म के आक्रमणों से बचाने में सफलता पायी। आर्य समाज ने इस्लाम और ईसाई धर्म प्रचारकों पर जो हिन्दू धर्म का मजाक उड़ाते थे कठोरता से आक्रमण किया। नवयुवक आर्य समाजी विदेशियों के प्रति तीव्र घृणा की भावना रखते थे, जैसा कि लिखा गया है- “नवयुवक आर्य समाजियों ने खुली घोषणा की कि वे उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जबकि वे मुसलमान और अंग्रेज दोनों से फँसला करेंगे।”⁵

आर्य समाज का कार्य सामाजिक क्षेत्र में बहुत सफल रहा। उसने बाल विवाह, बहु-विवाह, पर्दा-प्रथा, जाति-प्रथा, आदि सभी हिन्दू सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। स्त्री-शिक्षा, जाति-समानता और अछूतों के उद्धार के लिए उसने निरतनर प्रयत्न किया। अन्तर्जातीय खान, पान और विवाह तथा पारस्परिक सम्पर्क आर्य समाज के जीवन की दिनचर्या बन गया। परन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य आर्य समाज ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान शुद्धि आन्दोलन को आरम्भ करके किया। जो भी व्यक्ति ईसाई या इस्लाम धर्म को छोड़कर हिन्दू धर्म को स्वीकार करना चाहता था, 'समाज' में उसकी शुद्धि करके उसे हिन्दू धर्म में सम्मिलित करना आरम्भ कर दिया। अपने इस कार्य का समर्थन आर्य समाज ने वेद और ऐतिहासिक परम्पराओं के आधार पर किया। ईसाई धर्म के प्रचार का प्रभाव

अधिकांशतया निर्धन, अशिक्षित और भारत की पिछड़ी हुई या अस्पृश्य जातियों पर पड़ा था और ऐसे हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में ईसाई बन गये थे। एक बार ईसाई बनने के पश्चात वे इच्छा होते हुए भी हिन्दू धर्म में वापस नहीं जा सकते थे। इस प्रकार हिन्दू धर्म निरन्तर अपने सदस्यों को केवल उनकी नादानी, भोलेपन या निर्धनता के कारण खोता जा रहा था। आर्य समाज ने शुद्ध आन्दोलन आरम्भ करके ऐसे व्यक्तियों के लिए हिन्दू धर्म के द्वार खोल दिये और बहुत बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्तियों को हिन्दू बनाया।

“आर्य समाज ने सम्पूर्ण भारत में, मुख्यतया उत्तरी भारत में अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की, आर्य समाज ने गुरुकुल, कन्या गुरुकुल और डी.ए.वी. कॉलेज अनेक स्थानों पर स्थापित किये हैं। इन शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेजी, विज्ञान और आधुनिक समय में सभी विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध है, परन्तु संस्कृत और वेदों की शिक्षा पर यहाँ विशेष बल दिया जाता है। ये शिक्षण संस्थाएं न केवल हिन्दू धर्म, संस्कृति तथा आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार में ही सहायक सिद्ध हुई, बल्कि ज्ञान के विस्तार में भी इसका बहुत बड़ा योगदान है।”¹⁶

आर्य समाज का राजनीतिक जागृति में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दयानन्द सरस्वती की जीवनी के एक लेखक ने उनके बारे में लिखा है- “दयानन्द का एक मुख्य लक्ष्य राजनीतिक स्वतन्त्रता था। वास्तव में वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया। वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना तथा स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना सिखाया। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार किया।”¹⁷

“बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और गोपालकृष्ण गोखले, जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया, आर्य समाज से प्रभावित थे। आर्य समाज ने अनेक ऐसे कट्टर व्यक्तियों के निर्माण में सहयोग दिया जो कट्टर हिन्दू धर्म की भावना को लेकर भारतीय राष्ट्रीयता के समर्थक बने। कांग्रेस में उग्रवाद की भावना के आरम्भ होने का एक कारण हिन्दू धर्म की भावना थी और इसमें सन्देह नहीं कि आर्य समाज ने उस भावना के निर्माण में सहयोग प्रदान किया था। डॉ. मजूमदार ने लिखा है- “आर्य समाज आरम्भ से ही उग्रवादी सम्प्रदाय था। उसका मुख्य स्रोत तीव्र राष्ट्रीयता थी।”¹⁸ इस प्रकार आर्य समाज ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता का दावा करके हिन्दू सम्मान और गौरव की रक्षा की तथा हिन्दू जाति में आत्मविश्वास और स्वाभिमान को जन्म दिया। इससे भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में अत्यधिक सहायता मिली।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार एवं हरिदत्त वेदालंकार, आर्य समाज, पृ.-530
2. मुंशीराम, ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार, पृ.-1693; एल.पी. शर्मा, आधुनिक भारत, पृ.-546
4. वही, पृ.-620
5. "The young Arya Samajist openly declared that they were waiting for the day when they would settle their account both with Muslims and the Britishers."
- 6- एल.पी. शर्मा, आधुनिक भारत, पृ.-376
- 7- "Political independence was one of the first objectives of Dayananda. Indeed, he was the first man to use the term Swaraj. He was the first to

insist on people using only Swadesi things manufactured in India and to discard foreign things. He was the first to recognize Hindi as the national language of India." -A Biographer of Dayanand.

8. "Ary Samaj was a militant sect from the very beginning. Its chief inspiration came from its intense patriotism." R.C. Majumdar.

प्राचीन भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

• नरेन्द्र सिंह

सारांश- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' जहाँ स्त्री की पूजा की जाती है तथा उसे आदर सम्मान दिया जाता है, उस घर में देवताओं का वास होता है, घर में शान्ति रहती है तथा सुख सम्पत्ति से सम्बन्धी कार्य फलीभूत होते हैं। यह आदर्श प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति था। प्राचीन हिन्दू समाज में उनकी स्थिति पुरुषों के समान थी। यदि हम स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा सिंधु सभ्यता से देखे तो हम पाते हैं कि सिन्धु सभ्यता में समाज मातृसत्तात्मक था। मोहनजोदड़ों के कई स्थान से मातृदेवी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा को उच्चकोटि का सिद्ध करती हैं। वैदिक काल में स्त्रियों का मान सम्मान एवं प्रतिष्ठा पुरुषों के समान ही प्रतीत होती है। पुरुषों के समान ही उन्हें शिक्षा, सम्पत्ति एवं मन माफिक एवं प्रतिष्ठा पुरुषों के समान ही प्रतीत होती है। पुरुषों के समान ही उन्हें शिक्षा, सम्पत्ति एवं मन माफिक विवाह करने का अधिकार प्राप्त था। माँ, पत्नी एवं पुत्री के रूप में परिवार एवं समाज में उनकी दशा आदर्श एवं सम्माननीय थी। अपाला घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी आदि ने समाज में एक आदर्श प्रस्तुत किया था। भारतीय मनीषा में स्त्री सर्वशक्ति सम्पन्न मानी गयी, तथा ममता, यश, विद्या एवं शील का प्रतीक समझी गई। धीरे-धीरे समाज में स्त्रियों ने ऐसा मुकाम हासिल कर लिया कि स्त्री के बिना पुरुष को अधूरा माना जाने लगा। प्राचीन स्मृतिकारों ने अपने ग्रंथों में इस बात को उद्घाटित किया है कि पुरुष अकेला कुछ भी नहीं है, लेकिन स्त्री का स्नेह तथा उसकी सन्तान मिलकर पुरुष को पूर्ण करती है। अर्थात् जो पति है, वही पत्नी है अर्थात् स्त्री से उत्पन्न सन्तान उसके पति की होती है। इसलिए पत्नी को पति की अर्धांगिनी कहा गया, जो पुरुष के जीवन को सुख एवं सम्पत्ति से परिपूर्ण करती है। प्राचीन कालीन समाज में पुरुष के लिए उसकी पत्नी का आगमन शुभ एवं सम्मानजनक माना गया है।

मुख्य शब्द- आदर, सम्मान, सभ्यता, सामाजिक प्रतिष्ठा

भारतीय समाज में सिन्धु सभ्यता से लेकर पूर्व मध्य काल तक यदि हम दृष्टि डाले तो हम पाते हैं कि इनकी दशा परिवर्तनशील रही है। यह बात सही है कि सिंधु सभ्यता एवं वैदिक काल में उनकी दशा एवं दिशा बहुत उन्नत एवं सम्मानजनक थी लेकिन जब हम उत्तर वैदिक काल में आते हैं तो स्त्रियों की अवनति का काल प्रारम्भ होता दिखाई देता है, जो बाद में अत्यधिक विकराल रूप धारण कर लेता है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने स्त्रियों में कुछ जन्मजात दुर्गुण माने हैं। जिससे वे पुरुषों की तुलना में निम्नकोटि की समझी गई, उनका सबसे बड़ा दोष उनके मन की चंचलता एवं व्यक्तित्व की अस्थिरता माना गया तथा साथ में यह भी कहा गया कि स्त्रियों में न्याय की भावना कम होती है और ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना अधिक होती है। किन्तु भारतीय विद्वानों एवं विचारकों ने महिलाओं के प्रति आदर एवं सम्मान का भाव ही प्रदर्शित किया है। जीवन के हर क्षेत्र में महिला अपने पति की समान रूप से मदद करती थी साथ ही साथ अपनी प्रतिष्ठा को भी स्थापित करती थी।

प्राचीन इतिहास के ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि 15वीं सदी ई.पू. से 10वीं

सदी ई.पू. के बीच स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व एवं समाज विकास में उनका महान योगदान था। पुरुषों की तुलना में वे कहीं पर भी हीन नहीं समझी गईं। वे स्वतंत्र रूप में शिक्षा ग्रहण करती थी तथा स्वतंत्र विचरण करती थी। इस समय नई नवेली दुल्हन जब ससुराल जाती थी, तो वहाँ की सामग्री मानी जाती थी। पत्नी अपने पति का हर काम में समान रूप से हाथ बंटाती थी और पति के समान ही समाज में गौरवशाली स्थिति की हकदार थी। वह पति के साथ मिलकर याज्ञिक कर्म भी करती थीं, एक प्रकार से स्त्री पुरुष से उच्च था किन्तु वैदिक काल में वे पुरुषों के समकक्ष दिखाई पड़ती हैं। उनका उपनयन संस्कार भी किया जाता था। शिक्षित कन्या की प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान भी किए जाते थे। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करती थी, जो स्त्रियाँ निष्ठापूर्वक विद्या अध्ययन में लगी रहती थी उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। किन्तु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा में ह्रास नजर आता हुआ दिखाई पड़ता है। इस समय पवित्रता के नाम पर कर्मकाण्ड तथा आङ्गिरस का बोलबाला दिखाई देता है और स्त्रियों को हीन भावना से देखा जाने लगा। उन्हें यज्ञ कार्य कराने से दूर रखना शुरू कर दिया गया।

सूत्र एवं स्मृति काल तक आते-आते स्त्रियों की दशा बहुत ही दयनीय एवं निम्न हो गई अब उन पर शक भी किया जाने लगा जैसे इस श्लोक में कहा गया-

पिता रक्षित कौमारे, भर्ता रक्षित योवने।

रक्षित स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।

अर्थात् स्त्री को कभी भी स्वतंत्र नहीं रखना चाहिए, वह हमेशा किसी न किसी के साथ ही सुरक्षित है, बचपन में पिता, जवानी में पति तथा बुढ़ापे में स्त्री को पुत्र के साथ ही सुरक्षा मिलती है। इस समय स्त्रियों के ऊपर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये। कुछ धर्मशास्त्रकारों ने उनकी सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक आर्थिक एवं शैक्षणिक स्वतंत्रता को लगभग समाप्त कर दिया। अब पुत्री का जन्म होना अच्छा नहीं माना जाता था पुत्र प्राप्ति की कामना अपने चरम पर पहुँच गई थी। गुप्तकाल तक आते-आते स्त्री शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उसे गौरी और भवानी का नाम दिया गया। लेकिन स्त्री के शक्ति स्वरूपा होने के बावजूद इस काल में उसे पुरुष के समान अधिकार नहीं दिए गये। पूर्व मध्य काल तक आते-आते समाज में पुरुष पूर्णरूप से हावी हो चुका था। उसने स्त्रियों पर कठोर नियंत्रण में रखकर उनके ऊपर एकाधिकार कर लिया। धर्म एवं समाज के नाम पर स्त्रियों को सुरक्षित रखने के लिए ऐसी व्यवस्था बनाई गई जिसमें स्त्रियों की दशा और भी दयनीय होती गई और स्त्रियों का विकास पूर्णतः अवरूद्ध हो गया।

स्त्रियों का स्वरूप- सिंधु सभ्यता से ऋग्वैदिक काल तक स्त्रियाँ प्रायः स्वतंत्र थीं उन पर कोई भी प्रतिबंध नहीं था, वे शिक्षा ग्रहण कर सकती थीं। हर एक दृष्टि से स्त्री इस काल में पुरुष के समान अधिकार वाली थीं, शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ, विवाह आदि कार्य वह मन चाहे ढंग सम्पन्न करती थी। वैदिक काल में अनेक स्त्रियाँ विदुषी बनी जिन्होंने वैदिक ऋचाओं का सृजन किया इनमें अपाला, लोपामुद्रा, विश्वारा, सिक्ता, घोषा आदि का नाम उल्लेखनीय है। सुलभा, गार्गी तथा मैत्रेयी आदि विदुषी स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा वैदिक ऋषियों के समान थी। गार्गी तथा याज्ञवल्क्य ऋषि के बीच शास्त्रार्थ की घटना प्राचीन भारत की उल्लेखनीय घटना है जिसमें गार्गी ने याज्ञवल्क्य को परास्त कर दिया था। वैदिक काल की विदुषी महिलाओं की अद्भुत प्रतिभा, विलक्षण तर्क शक्ति, तथा मेधा का लोहा सभी मानते

थे। इस समय स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में समारोहों में बिना किसी प्रतिबन्ध के हिस्सा लेती थी। पुरुषों की भाँति सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में समारोहों में बिना किसी प्रतिबन्ध के हिस्सा लेती थी। पुरुषों के साथ मिलकर यज्ञ करती थीं बिना उनके सहयोग के यज्ञादि को पूर्ण नहीं माना जा सकता था तथा अकेला पुरुष अयोग्य माना जाता था। इसीलिए जब राम ने अवमेध यज्ञ का आयोजन किया तो सीता की स्वर्ण प्रतिमा उन्हें अपने पास में रखनी पड़ी थी। किन्तु उत्तर वैदिक काल से अवनति की स्थिति की शुरुआत होने लगी थी। इस समय उनके कुछ अधिकार तो बने रहे किन्तु उन्हें ईर्ष्यालु, असत्यवादी, झगड़ालू आदि निन्दनीय शब्दों से नवाजा जाने लगा था। किन्तु वह समारोहों एवं उत्सवों में अभी भी स्वतंत्र होकर आ जा सकती थी। महाभारत में एक जगह भीष्म पिता कहते हैं- स्त्री को पूज्य मानकर उसके साथ स्नेह का व्यवहार करना चाहिए, जहाँ स्त्रियों का आदर होता है। महाभारत में ही एक जगह भीष्म पितामह युधिष्ठिर को बताते हैं कि स्त्रियाँ अपनी लिप्सा को दबा नहीं पाती, इसलिए उनके ऊपर पुरुष का नियंत्रण होना चाहिए।

महाभारत में स्त्रियों के दो प्रकार बताए गये। (1) साध्वी (2) असाध्वी। साध्वी स्त्री पृथ्वी की माता एवं संरक्षिका है, जबकि असाध्वी स्त्री कुचक्र रचती रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत काल तक आते-आते उसका स्वतंत्र अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया तथा उसके शरीर पर पति का एकाधिकार हो गया। मनु जैसे स्मृतिकारों ने तो स्त्रियों पर कठोर प्रतिबंध लगा अनुसार स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।

विज्ञान वर की मिताक्षरा से यह बात उद्धृत होती है कि घर से बाहर बिना किसी से कहे स्त्री को नहीं आना चाहिए। यदि बाहर जाती है तो चादर ओढ़कर ही उसे निकलना चाहिए, किसी पुरुष से बात नहीं करनी चाहिए, शीघ्रता से न चले, अपनी नाभि को खुला न रखें, एड़ी तक वस्त्र धारण करे, अपने स्तनों पर से कपड़ा न हटाए तथा अपने पति एवं परिवार के लोगों से नफरत न करें। इस प्रकार पूर्व मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों पर कठोर नियंत्रण लगाए गये और सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी प्रतिबंध लगा दिए गये। अलबरूनी ने लिखा है कि पुत्री के जन्म पर मातम बनाया जाता था तथा पुत्र खुशी का प्रतीक माना जाता था।

स्त्रियों के अधिकार

1. शिक्षा का अधिकार- ऋग्वैदिक काल में स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही शिक्षा ग्रहण करती थीं, उनके साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। बुद्धि एवं ज्ञान के क्षेत्र में स्त्रियाँ अग्रणी हुआ करती थी। ऋग्वैदिक काल में पुत्र की भाँति पुत्री का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। पुत्री को भी यज्ञीय कार्यों का सम्पादन तथा वेदों का अध्ययन करने का अधिकार मिला हुआ था। रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्वारा, सिक्ता, निबावरी, घोषा तथा लोपामुद्रा आदि विदुषी महिलाओं का उल्लेख मिलता है, जो पांडित्य में प्रवीण थीं तथा अपने पति के साथ समान रूप से कार्य करती थी। उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भ में भी स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करती रही, वे ऋचाओं के गायन के साथ ललित कलाओं का अध्ययन भी करती थीं। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों के दो वर्ग थे। (1) सद्योवधू (2) ब्रह्मवादिनी। पहले प्रकार की स्त्रियाँ विवाहोपरान्त विद्याध्ययन नहीं करती थीं, जबकि दूसरे प्रकार की स्त्रियाँ आजीवन शिक्षा प्राप्त करती थीं। ऋषि कुशध्वज की पुत्री बहुमुखी प्रतिभा की धनी थी, उसने अपना पूरा जीवन विद्या अध्ययन में ही लगा दिया था, उसे ब्रह्मवादिनी कहा गया। इस युग में स्त्रियाँ वेद, दर्शन, मीमांसा, ज्योतिष तथा गणित आदि का भी अध्ययन करती थी। याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी

मैत्रेयी प्रख्यात दार्शनिका थी। जनक के दरबार में आयोजित एक सभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ किया था। किन्तु इसके बावजूद ऐसा प्रतीत होता है, कि वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज में शिक्षा का प्रावधान ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ग की महिलाओं को ही था।

छठी सदी ई.पू. तक आते-आते स्त्रियों की दशा (शिक्षा के क्षेत्र में) शोचनीय हो चुकी थी किन्तु बुद्ध के अवतरण के बाद वर्ण की महिलाओं को भी शिक्षा प्राप्ति के साक्ष्य मिलते हैं। बुद्ध धर्म ग्रंथों से पता चलता है कि कुछ स्त्रियाँ आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर विद्याध्ययन करती थी तथा कुछ विवाहोपरान्त भिक्षुणी रहकर भी शिक्षा ग्रहण करती थी। भद्रकुणकेशा, शुभा, सुमेधा, अनोपमा, खेमा, सुभद्रा, विशाखा आदि शिक्षा प्राप्त स्त्रियों की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। कई स्त्रियाँ शिक्षिका भी थीं जो शिक्षण कार्य पूरी तल्लीनता के साथ करती थी उन्हें 'उपाध्याया' की संज्ञा दी जाती थी। पाणिनी में अपनी अष्टाध्यायी में महिला शिक्षणशाला का उल्लेख किया है। पुराणों से पता चलता है कि स्त्री शिक्षकों के दो प्रकार हुआ करते थे। (1) आध्यात्मिक (2) व्यावहारिक, आध्यात्मिक श्रेणी में बृहस्पति की बहिन भुवना, अपर्णा, एकवर्णा, एकपाटला, मेना, धारिणी, संगति तथा शतरूपा का नाम उल्लेखनीय है, ये सभी ब्रह्मवादिनी थी। कुछ स्त्रियों के तपस्या करने के साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं जैसे-उमा, पीवरी, धर्मव्रता आदि ने तपस्या के बल पर मनोकूल पति का वरण किया था। अपाला नामक विदुषी शिक्षा तथा विद्याध्ययन के साथ-साथ अपने पिता के साथ कृषि कार्य भी करती थी। वैदिक काल में स्त्रियों की अवनति का जो दौर शुरू हुआ वह प्रथम एवं द्वितीय सदी ई. तक अपने चरम पर पहुँच गया। अब स्त्रियों की स्थिति शूद्रों की भाँति हो गई थी। स्मृतिकारों ने महिलाओं पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए थे। गुप्तकाल एवं हर्ष काल में अभिजात्य वर्ग की कुछ स्त्रियाँ छुटपुट शिक्षा ग्रहण करती रही लेकिन पूर्व मध्यकाल तक आते-आते महिलाओं की शिक्षा का मार्ग लगभग अवरुद्ध हो चुका था।

2. सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार- महिलाओं को आर्थिक रूप से मजबूत करने के उद्देश्य से ही स्मृतिकारों ने उनके लिए सीमित अधिकारों की बात कही। हिन्दू धर्म ग्रंथों में कुछ ऐसे प्रावधान किए गये कि विशेष परिस्थिति में महिलाओं को सम्पत्ति से कुछ हिस्सा दिया जा सकता था। वैदिक काल में पुत्री को भी पुत्र के समान पिता की जायदाद में हिस्सा मिलता था। उसे किसी भी प्रकार से पुत्र से कम नहीं समझा जाता था। पुत्र के समान ही उसे माता-पिता की सम्पत्ति का हिस्सेदार माना गया है। किसी विशेष परिस्थिति में कही से कोई धन या सम्पत्ति पिता को प्राप्त हो जाती थी तो वह पुत्र एवं पुत्री दोनों के लिए ग्राह्य मानी जाती थी। स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार चौथी सदी ई.पू. तक सुरक्षित थे, किन्तु जब हम द्वितीय सदी ई.पू. के इतिहास का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि इस समय के स्मृतिकारों ने शूद्रों के समान स्त्रियों को भी सभी अधिकारों से वंचित कर दिया। भाई के न रहने पर बहन को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं माना गया।

आपसतम्ब ने यह व्यवस्था दी कि यदि किसी पिता को यदि पुत्र नहीं है तो वह अपनी सम्पत्ति अपने किसी खून के सम्बन्धी को ही दे सकता है। यदि कोई सम्बन्ध न रखता हो, तो उस सम्पत्ति का अधिकार उसकी पुत्र को मिल सकता था। लेकिन ऐसी सम्पत्ति का उपयोग केवल धार्मिक कार्यों के लिए ही किया जा सकता था। वरिष्ठ, गौतम तथा मनु जैसे स्मृतिकारों ने पुत्री के न रहते हुए यदि उसकी मृत्यु हो जाती है और उसकी विधवा पत्नी भी नहीं रहती तो इस स्थिति में व्यक्ति की सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी उसकी पुत्री होगी। बृहस्पति तथा नारद ने भी पुत्री के उत्तराधिकारी को नहीं माना। पूर्व मध्यकाल के लेखकों में

अलबरूनी ने पुत्री को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बताया है। जीमूतवाहन ने अपनी दायभाग तथा विज्ञाने वर ने अपनी मिताक्षारा में लिखा है कि पुत्री अपने पिता की सम्पत्ति के 1/4 भाग की ही स्वामिनी हो सकती थी।

विधवा स्त्री का भी सम्पत्ति में अधिकार बताया गया किन्तु कई स्मृतिकारों ने यह स्पष्ट नहीं किया कि कौन-सा भाग विधवा को उसके भरण-पोषण के लिए दिया जाता था। किन्तु ब्राह्मण धर्म ग्रंथ विधवा के अधिकार को स्वीकार नहीं करते हैं। परवर्ती काल में विधवा के अधिकारों को समाज ने कुछ हद तक स्वीकार किया। आपस्तम्ब ने भी विधवा को सम्पत्ति का अधिकारी माना है। मनु ने तो विधवा के अधिकारों को सिरे से खारिज कर दिया। मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि ने लिखा है कि सम्पत्ति में विधवा का अधिकार कतई नहीं होना चाहिए। प्रथम सदी ई. तक आते-आते हम देखते हैं कि समाज व्यवस्थाकारों ने नियम बना दिया कि यदि विधवा पुनर्विवाह नहीं करती तो उसके भरण-पोषण के लिए कुछ धन अवश्य दिया जाना चाहिए। कौटिल्य ने विधवा के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों को स्वीकार किया। इस तरह सम्पत्ति सम्बन्धी, स्त्रियों के अधिकारों को स्मृतिकारों ने अपने-अपने अनुसार व्याख्यायित किया लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्त्रियों के सीमित अधिकार ही मिले थे। बाद में उन्हें सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

स्त्री की व्यक्तिगत सम्पत्ति- पितृसत्तात्मक प्राचीन भारतीय समाज के व्यवस्थाकारों ने स्त्री धन के सन्दर्भ में महिलाओं की विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों का उल्लेख किया है। जिस धन तथा सम्पत्ति पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता था, वह स्त्री धन कहलाता था। ये उपहार स्त्री के माता, पिता, भाई तथा अन्य सगे सम्बन्धी प्रदान करते थे। विज्ञाने वर ने स्त्री धन के छः प्रकार बताए हैं जो इस प्रकार हैं-

1. माता-पिता, भाई एवं पति द्वारा दिया गया उपहार,
2. विवाह के समय कन्यादान के साथ प्राप्त हुआ धन,
3. विवाह पश्चात स्त्री को उसकी ससुराल में "पादवन्दनप्रथा" के तहत मिला धन,
4. सम्पत्ति विभाजन के समय माता-पिता द्वारा पुत्री को दिया गया उपहार,
5. आसुर विवाह में माता-पिता द्वारा दिया गया उपहार,
6. उत्तराधिकार में पति द्वारा दी गई सम्पत्ति स्त्री धन।

अपराक ने भी स्त्री धन इस बात को स्वीकार किया है। थेरीगाथा से पता चलता है कि धर्मदिल को उसके पति ने यह अधिकार दे रखा था कि यदि वह अपने पिता के घर जाये तो जो चाहे ले जा सकती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति में स्त्री का अधिकार होता था, जिसे वह अपनी इच्छानुसार अपने पास रख सकती थी। पति के मरने के बाद भी वह उसकी अधिकारिणी रहती थी। अपनी सहमति से सम्पत्ति को वह उसे बेच सकती थी या किसी को दे सकती थी। हिन्दू समाज में स्त्री धन महिला की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को उजागर करता है। जो बुरे वक्त में उसके काम आता था। प्राचीन भारत में स्त्रियों के अधिकारों को लेकर धर्मशास्त्रकारों में बहुत मतभेद रहा, जिसके चलते उनके दो वर्ग बन गये। पहला वह जो महिलाओं के अधिकारों को स्वीकार नहीं करते थे दूसरा जो महिलाओं के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों को स्वीकार करते थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों का सम्पत्ति का अधिकार विवाद ग्रस्त रहा। प्राचीन काल के बजाय पूर्व मध्यकाल के शास्त्रकारों ने उदारता का परिचय दिया और

इस बात को कहा कि महिलाओं को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार मिलने चाहिए।

उपसंहार- प्राचीन भारत में स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं शैक्षणिक स्थिति एक समान नहीं थी। समय के साथ-साथ उसमें उतार-चढ़ाव आते रहे। जब सिन्धु सभ्यता का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि समाज मातृप्रधान था। सम्भवतः स्त्री ही शासक होती होगी, अच्छे-बुरे निर्णय स्त्री ही करती रही होगी। समाज में उसका सर्वोच्च स्थान रहा होगा। वैदिक काल में जब हम आते हैं तो पाते हैं कि पुरुष के समान ही स्त्री को समाज में दर्जा मिला हुआ था, क्योंकि स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया। इसलिए बिना स्त्री की उपस्थिति के पुरुष अकेले कोई काम नहीं कर सकता था एवं उसके द्वारा किया गया कार्य फलीभूत भी नहीं होता था। इसलिए स्त्री को वैदिक काल में पुरुष के समान ही सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक अधिकार प्राप्त थे, किन्तु उत्तर वैदिक काल में हम देखते हैं कि स्त्री के अधिकारों में कमी आने लगी थी। अब वह शिक्षा तो ग्रहण कर सकती थी, लेकिन उनकी स्वतंत्रता बाधित होती हुई प्रतीत होती है। स्त्री को अकेले कही भी आने-जाने की छूट नहीं रह गई थी। स्त्रियों की प्रतिष्ठा का तेजी से क्षरण हम सूत्र एवं स्मृतिकाल में देखते हैं। लगभग सभी स्मृतिकारों एवं धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकारों की बात नहीं कही है। कुछ ने स्त्री के अधिकारों का समर्थन किया तो कुछ ने विरोध किया, जिसका उपरोक्त लेख में वर्णन किया गया है। इस समय समाज में वर्णव्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में पूरी तरह से स्थापित हो चुकी थी। समाज के उच्च वर्ण की कुछ महिलाओं को ही कुछ अधिकार प्राप्त थे। शूद्र वर्ण की स्त्री को छोड़िए पुरुष तक को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। अब महिलाओं को शूद्र वर्ण की श्रेणी में ला दिया गया था। महिलाओं को अविश्वासी, मानसिक रूप से कमजोर एवं अक्षम माना जाने लगा था, किन्तु भगवान बुद्ध के समय में हम स्त्रियों की स्थिति में हम पुनः सुधार देखते हैं क्योंकि बुद्ध ने अपने उपदेशों में सभी को समान अधिकार देने की बात कही। उन्होंने सभी वर्णों के स्त्री एवं पुरुषों को सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक अधिकार समान रूप से देने का उपदेश दिया। मौर्य काल में भी हम पाते हैं कि उच्च वर्ण की कुछ महिलाएँ शिक्षा ग्रहण कर सकती थी एवं राजकाज में कुछ सहभागिता भी कर सकती थी। वह सम्मान की भी हकदार थी एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वच्छंदता से आ-जा सकती थी, लेकिन ऐसी स्त्रियों की संख्या कम ही थी। ऐसी ही स्थिति कमोवेश गुप्त एवं हर्ष काल में भी रही। इस काल में भी उच्च वर्ग एवं शासक वर्ग की कुछ महिलाओं को ही अधिकार प्राप्त थे। समाज की बहुसंख्यक स्त्रियाँ अधिकारों से वंचित हो चुकी थी। महिलाओं की स्थिति में सबसे ज्यादा गतिरोध एवं हास राजपूत काल में दिखाई देता है। अब तो बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियाँ भी समाज में स्थापित हो चुकी थी। उनके सभी अधिकार छीन लिए गये और पूर्ण रूपेण उन्हें परतंत्र करके पुरुषों की दया पर निर्भर कर दिया गया।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. झा एवं श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ-102
2. शतपथ ब्राह्मण के लोक 5.2.1.10
3. बृहत्संहिता 74.5, 5, 11, 15 एवं मनु 9.26
4. रोबैक - द साइकोलाजिकल करेक्टर पृष्ठ 600-11
5. ऋग्वेद 10.85.46
6. शतपथ ब्राह्मण 1.19.2.14

7. ब्रह्मदारण्यक उपनिषद् 6.4.17
8. मनुस्मृति 9.3
9. हर्षचरित 4. (231) 5
10. मिश्र, जयशंकर; प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृष्ठ-406
11. बृहदारण्यक उपनिषद् 3-6
12. अथर्ववेद 2.36.1 तथा शतपथ ब्राह्मण 5.1.6.10
13. मैत्रायणी संहिता 3.6.3
14. महाभारत अनुशासन पर्व 46.5
15. बौधायन धर्म सूत्र 1.1.19
16. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य 2.14.8, मेघातिथि 1.87, मनुस्मृति 5.147
17. ग्यारवीं सदी का भारत पृष्ठ 154
18. मनुस्मृति 2.66
19. ऋग्वेद 8.31
20. बृहदारण्यक उपनिषद् 3.6.1
21. हार्नर, विमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, अध्याय दो
22. पाणिनि अष्टाध्यायी 6.2.46
23. वायुपुराण 66.77, 72.13-15, विष्णु पुराण 3.10.19, मत्स्य पुराण 20.27
24. ऋग्वेद 8.91.5.6
25. मनुस्मृति 2.56, 9.18
26. काव्यमीमांसा पृष्ठ 53
27. तैत्तरीय संहिता 6.5.8.2
28. बौधायन धर्म सूत्र 17.15
29. थेरीगाथा सं. 327
30. आपस्तम्ब धर्म सूत्र 2.14.2.4
31. वशिष्ठ धर्म सूत्र 15.7
32. महाभारत 13.80.11 तथा अर्थशास्त्र 3.5
33. याज्ञवल्क्य स्मृति 2.135
34. जीमूतवाहन की दायभाग 11.24 तथा विज्ञाने वर की मिताक्षरा 2.135
35. तैत्तरीय संहिता 6.5.4.2
36. मेघातिथि मनुस्मृति 9.187
37. अर्थशास्त्र 3.5
38. मनुस्मृति 9.194
39. अपराक प्र. 751, मिताक्षरा 2.145
40. थेरीगाथा 12

स्मार्ट शहर : अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य

• नीरज कुमार राय

सारांश- मानव सभ्यता को शहरों ने आगे बढ़ाया है, जो सत्ता, संस्कृति, व्यापार के ठिकाने तथा उत्पादन के केन्द्र रहे हैं। इतिहासकार सिंधु घाटी की सभ्यता को शहरी सभ्यता मानते हैं। बाद के काल में भारत में कई बड़े शहरी केन्द्र हुए, जिनमें प्राचीन काल में पाटलीपुत्र (पटना), वैशाली, कौशांबी तथा उज्जैन एवं मध्यकाल में आगरा तथा शाहजहाँनाबाद (दिल्ली) प्रमुख हैं। भारत की शहरी सभ्यता की बात करें तो सूची बहुत लंबी है। स्मार्ट सिटी के विचार को समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि शहर कैसे होते हैं। शहर घनी आबादी वाले क्षेत्र होते हैं, जिनमें अलग-अलग व्यवसाय तथा कौशल एवं जातीय तथा सामाजिक संरचना वाले लोग एक साथ रहते हैं। वास्तव में विविधता और भिन्नता हमेशा से ही शहरों की पहचान रही है, जिनसे नए विचारों को बढ़ावा मिला है, किन्तु समावेश, निष्पक्षता तथा न्याय संबंधी चुनौतियाँ खड़ी हुई हैं। शहर अलग-थलग भी नहीं होते हैं, बल्कि शहरी क्रम में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं, जिनसे शहरी प्रणाली का विकास होता है। शहरीकरण के निचले स्तर (छोटे शहर एवं नगर) ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक करीब से जुड़े होते हैं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन बड़े शहरों से छोटे शहरों तक प्रत्येक स्तर पर होता है। इस दृष्टिकोण से शहर आर्थिक वृद्धि के केन्द्र ही नहीं होते हैं, बल्कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों समेत सभी प्रकार की आबादी को विकास के फल भी देते हैं। इसके अलावा शहर अपनी सीमाओं के भीतर ही नहीं बल्कि सभी शहरों एवं कस्बों में आवागमन एवं आदान-प्रदान का कारण भी बनते हैं। वे सूचना, पूँजी, वस्तुओं और सेवाओं की आवाजाही तथा मजदूरों के आवागमन के माध्यम से भी एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। चूंकि अतीत में विभिन्न आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत रहे हैं, इसलिए मानव इतिहास के अपने-अपने युग में वे स्मार्ट रहे हैं। किन्तु स्मार्ट सिटी की वर्तमान बारीकियों को वैश्वीकरण की शक्तियों और सूचना प्रौद्योगिकी के विराट विस्तार के वर्तमान संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जिससे हमारे शहरों की सूरत तय हो रही है और जिनका हमारे जीवन पर प्रभाव रहा है।

मुख्य शब्द- मानव सभ्यता, सत्ता, संस्कृति, व्यापार, स्मार्ट सिटी

स्मार्ट सिटी का नमूना 80 के दशक के उत्तरार्द्ध में शहरी संदर्भों को समझने के साधन के रूप में सामने आया और उसके बाद से वे विभिन्न संदर्भों में तेजी से विकसित होते गए। टाउनसेंड के अनुसार स्मार्ट सिटी वे स्थान हैं, जहाँ नई और पुरानी समस्याएँ दूर करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी, (आईटी) को जोड़ दिया जाता है। रोड़े, कांच और इस्पात से बने पुराने शहर के नीचे अब कंप्यूटर और सॉफ्टवेयरों का बड़ा जाल बिछा है। दूसरी ओर नया शहर पहले बने हुए शहरों का बेहतर और डिजिटल रूप है, जो शहरों के एक नए युग को आरंभ कर रहा है। हम इसे स्मार्ट सिटी कह सकते हैं। एक अन्य दृष्टिकोण है, जो पूरे स्मार्ट सिटी की ओर नहीं बल्कि उसके एक भाग की ओर देखने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए यह कहता है कि स्मार्ट सिटी का अर्थ जो भी हो उसमें प्रत्येक स्थान एक समान स्मार्ट

नहीं होगा अर्थात् कुछ स्थान, लोग और गतिविधियाँ दूसरों से बेहतर होंगी। वैश्विक आईटी कंपनी आईबीएम को लगता है कि, 21वीं शताब्दी में नागरिकों तथा व्यापारों को आकर्षित करने के लिए दुनिया भर के शहर एक दूसरे से होड़ करेंगे। शहर का आकर्षण इस पर निर्भर करेगा कि वह विकास के अवसरों को बढ़ावा देने, आर्थिक मूल्य प्रदान करने तथा प्रतिस्पर्धा में अलग स्थान दिलाने वाली बुनियादी सेवाएँ देने में कितना सक्षम है। व्यावसायिक एवं आवासीय उद्देश्य से आने वाले लोग विवेकशील होते हैं और वे ऐसे शहरों की तलाश करते हैं जो अधिक प्रभावी एवं उद्देश्यपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। वे अधिक स्मार्ट सिटी तलाश रहे हैं।

स्मार्ट सिटी की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है, किन्तु मूल प्रश्न यह है कि हम कैसी स्मार्ट सिटी चाहते हैं। हम कह सकते हैं कि स्मार्ट सिटी वे होती है, जहाँ स्मार्ट अर्थात् चतुर लोग रहते हैं। चतुर लोगों को दो प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। एक, जो बुद्धिमान एवं समृद्ध किन्तु व्यक्तिवादी है, उपभोक्तावादी तथा अलग-थलग रहने वाले होते हैं और दूसरे वे होते हैं, जो निचले तबके से मिलने, उसकी सहायता करने और उसका जीवन बदलने में सक्रिय होते हैं। इसी तरह स्मार्ट सिटी कोई अलग-थलग अथवा चारदीवारी में बंद शहर नहीं है बल्कि ऐसा शहर है, जो अपने निवासियों से जुड़कर उनका जीवन बदल देता है। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि शहर लोगों का कार्याकल्प करते हैं और लोग शहरों का निर्माण करते हैं। हमें यह स्पष्ट रूप से पता होना चाहिए कि अपने शहरों का निर्माण करने के लिए हम प्रौद्योगिकी का उपयोग किस प्रकार करते हैं और गरीबों तथा हाशिए पर रहने वाले लोगों के लिए इनके क्या परिणाम होते हैं (अल्बिनो एवं अन्य, 2015)। इसके अलावा भारत का तेजी से शहरीकरण हो रहा है, इसलिए लोगों का भाग्य इस पर बहुत निर्भर करेगा कि हम अपने शहर का निर्माण किस प्रकार करते हैं। साथ ही सरकार का हस्तक्षेप हमारे शहरों की परिकल्पना तथा निर्माण में सहायक हो सकता है। पिछले एक दशक में सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों को इसी के आलोक में देखा जाना चाहिए।

भारत की वर्तमान जनसंख्या का लगभग 31 प्रतिशत शहरों में बसता है और इनका सकल घरेलू उत्पाद में 63 प्रतिशत (जनगणना 2011) का योगदान है। ऐसी उम्मीद है कि वर्ष 2030 तक शहरी क्षेत्रों में भारत की आबादी का 40 प्रतिशत रहेगा और भारत के सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 75 प्रतिशत का होगा। इसके लिए भौतिक, संस्थागत, सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचे के व्यापक विकास की आवश्यकता है। ये सभी जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने एवं लोगों और निवेश को आकर्षित करने, विकास एवं प्रगति के एक गुणी चक्र की स्थापना करने में महत्वपूर्ण है। स्मार्ट सिटी का विकास इसी दिशा में एक कदम है।

स्मार्ट सिटी स्थानीय विकास को सक्षम करने और प्रौद्योगिकी की मदद से नागरिकों के लिए बेहतर परिणामों के माध्यम से जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने तथा आर्थिक विकास को गति देने हेतु एक अभिनव और नई पहल है। स्मार्ट सिटी उनकी सबसे अहम जरूरतों एवं जीवन में सुधार करने के लिए सबसे बड़े अवसरों पर ध्यान केंद्रित करता है। इसमें बदलाव के लिए दृष्टिकोण की श्रृंखला अपनाई जाती है - डिजिटल और सूचना प्रौद्योगिकी, शहरी योजनाओं की सर्वोत्तम प्रथाओं, सार्वजनिक-निजी साझेदारी और नीति में बदलाव। हमेशा लोगों को प्राथमिकता दी जाती है। इसका उद्देश्य ऐसे शहरों को बढ़ावा देने का है, जो मूल बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराएँ और अपने नागरिकों को एक सभ्य गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करे, एक स्वच्छ और टिकाऊ पर्यावरण एवं स्मार्ट समाधानों के

प्रयोग का मौका दें। विशेष ध्यान टिकाऊ और समावेशी विकास पर है और एक रेप्लिकेबल मॉडल बनाने के लिए है जो ऐसे अन्य इच्छुक शहरों के लिए प्रकाश पुंज का काम करेगा। ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए है जिसे स्मार्ट सिटी के भीतर और बाहर दोहराया जा सके, विभिन्न क्षेत्रों और देश के हिस्सों में भी इसी तरह के स्मार्ट सिटी के सृजन को उत्प्रेरित किया जा सके।

स्मार्ट शहर की सुविधाएं- स्मार्ट शहरों के लिए निम्न सुविधाओं की कल्पना की गयी है -

- पर्याप्त पानी की आपूर्ति
- निश्चित विद्युत आपूर्ति
- ठोस अपशिष्ट प्रबंधन सहित स्वच्छता
- कुशल शहरी गतिशीलता और सार्वजनिक परिवहन
- किफायती आवास, विशेष रूप से गरीबों के लिए
- सुदृढ़ आई. टी. कनेक्टिविटी और डिजिटलीकरण
- सुशासन, विशेष रूप से ई-गवर्नेंस और नागरिक भागीदारी
- टिकाऊ पर्यावरण
- नागरिकों की सुरक्षा और संरक्षा, विशेष रूप से महिलाओं, बच्चों एवं बुजुर्गों की
- सुरक्षा, और स्वास्थ्य और शिक्षा

स्मार्ट सिटीज मिशन- 2005 में जे.एन.एन.यू.आर.एम. (जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन) आरंभ हुआ, जिसे एक दशक बाद 2015 में स्मार्ट सिटी मिशन एवं अमृत (अटल मिशन फॉर रिजुवनेशन एण्ड अर्बन ट्रांसफॉर्मेशन) जैसे कार्यक्रमों में बदल दिया गया। जे.एन.एन.यू.आर.एम. पहले की शहरी नीतियों एवं कार्यक्रमों से काफी अलग था क्योंकि इसमें भारत के आर्थिक विकास में शहरों की महत्ता इस दृष्टि से मानी गई थी कि सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का लगभग दो तिहाई शहरी क्षेत्रों से ही आता है। स्मार्ट सिटीज मिशन एवं अमृत जैसी नई शहरी विकास रणनीति जे.एन.एन.यू.आर.एम. के अंतर्गत आरंभ की गई शहरी विकास नीतियों का ही नया एवं गहन प्रारूप है। कई लोगों ने शहरों के भीतर तथा क्षेत्रों के बीच तीव्र सामाजिक-आर्थिक असमानता के कारण जे.एन.एन.यू.आर.एम. को विभेदकारी बताकर इसकी आलोचना की थी। विकास तथा अस्थायी के साथ समावेशन शहरी विकास के किसी भी कार्यक्रम के लिए चुनौती रहा है।

स्मार्ट सिटीज मिशन 2015-16 से 2019-20 के बीच 100 से अधिक शहरों को अपने दायरे में लेगा। शहरी विकास मंत्रालय द्वारा मूल्यांकन किए जाने के बाद इसे बढ़ाया जा सकता है। इसलिए स्मार्ट सिटीज की अवधारणा तथा राजनीतियां विकसित होती रहेंगी। मिशन में स्मार्ट सिटी की परिभाषा नहीं दी गई, लेकिन इसका लक्ष्य, उस शहर की क्षमता बढ़ाना है, जो स्मार्ट सुविधाओं के माध्यम से स्मार्ट बनना चाहता है। स्मार्ट सुविधाओं की लंबी सूची में से कुछ हैं- ई प्रशासन तथा इलेक्ट्रॉनिक सेवा आपूर्ति, वीडियो के माध्यम से अपराधों की निगरानी, जलापूर्ति प्रबंधन के लिए स्मार्ट मीटर, स्मार्ट पार्किंग तथा यातायात का चतुराई भरा प्रबंधन। स्मार्ट सुविधाएं देने से शहर बुनियादी ढांचा तथा सेवाएं सुधारने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी एवं जानकारी का प्रयोग कर सकेंगे। इससे रेट्रैफिटिंग (शहर में सुधार) एवं पूर्ण विकास के माध्यम से क्षेत्र विशेष के विकास का प्रयास भी होगा। इसके अतिरिक्त बढ़ती शहरी आबादी को समेटने के लिए शहरों के आस-पास नए क्षेत्र (शहरों का विस्तार) भी विकसित किए जाएंगे। यह माना जा रहा है कि स्मार्ट सिटी के विकास की

रणनीतियों से पर्याप्त मात्रा में रोजगार सृजन होगा और गरीबों का ध्यान रखा जाएगा। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि स्मार्ट शहर समावेशी होंगे।

स्मार्ट सिटीज मिशन का क्रियान्वयन विशेष उद्देश्य उपक्रम (एस.पी.वी.) की सहायता से होगा, जिसका नेतृत्व पूर्णकालिक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सी.ई.ओ.) करेंगे। इसमें केन्द्र, राज्य सरकारों एवं स्थानीय प्रशासनों द्वारा मनोनीत व्यक्ति शामिल होंगे। यह एस.पी.वी.कंपनी अधिनियम-2013 के अंतर्गत शहर के स्तर पर लिमिटेड कंपनी होगी। सभी 100 स्मार्ट शहरों के लिए सलाह देने एवं विभिन्न हितधारकों के बीच तालमेल बिठाने के लिए शहर के स्तर पर स्मार्ट सिटी परामर्शी मंच का गठन किया जाएगा और इसमें जिलाधिकारी, सांसद, विधायक, महापौर, एस.पी.वी. के सी.ई.ओ.स्थानीय युवा एवं नागरिक तथा तकनीकी विशेषज्ञ शामिल किए जाएंगे। स्मार्ट सिटीज मिशन में प्रशासन तथा सुधारों में बुद्धिमान लोगों के सक्रिय सहभाग की आवश्यकता होगी। सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार विशेषकर मोबाइल आधारित सुविधाओं का अधिक प्रयोग कर एसपीवी बुद्धिमान लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करेगी। केन्द्र सरकार आरंभ में 194 करोड़ रुपये का अनुदान देगी और इतना ही अनुदान राज्य सरकार से भी प्राप्त होगा। स्मार्ट शहर के लिए आगे का अनुदान उसके प्रदर्शन पर निर्भर करेगा। कुल 100 स्मार्ट शहरों का चयन स्मार्ट सिटी प्रस्ताव आमंत्रित कर प्रतियोगिता के आधार पर होगा। स्मार्ट शहर के विकास के विभिन्न चरण में बड़ी संख्या में सलाहकार फर्मों तथा अन्य एजेंसियों का सहयोग लिया जाएगा। आगे चलकर ये शहर अपने मुख्य आर्थिक गतिविधियाँ जैसे स्थानीय व्यंजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, कला एवं शिल्प, संस्कृति, खेल के सामान, फर्नीचर, होजरी, टेक्सटाइल आदि के आधार पर ब्रांड और पहचान हासिल कर लेंगे। इस प्रकार स्मार्ट शहर उत्पादन एवं प्रभावी प्रशासन के केन्द्र ही नहीं होंगे होंगे, बल्कि खपत के भी केन्द्र होंगे। उस स्थिति में ये आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकते हैं और अपने नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता सुधार सकते हैं।

अमृत को स्मार्ट सिटीज मिशन के पूरक के रूप में आरंभ किया गया है, जिनके दायरे में एक लाख अधिक जनसंख्या वाले 500 शहर आएंगे। अमृत का कार्यक्षेत्र जलापूर्ति, कचरे का प्रबंधन, जल की समुचित निकासी, शहरी परिवहन एवं हरियाली भरे स्थानों एवं पार्कों का विकास करना है, जिसके लिए क्षमता-निर्माण एवं क्रियान्वयन का कार्य शहरी स्थानीय निकाय करेंगे। ऐसा मानते हैं कि अमृत के अंतर्गत वित्तीय सहयोग के लिए संभावित स्मार्ट शहरों को वरीयता दी जाएगी। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अन्य कार्यक्रमों से तालमेल बिठाते हुए राज्य की वार्षिक कार्ययोजना तैयार की जाएगी। योजना में राज्य का योगदान परियोजना की कुल लागत के 20 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। वार्षिक कार्ययोजना बनाने के बाद राज्य स्तर की क्रियान्वयन योजनाएँ बनाई जाएंगी। अमृत के अंतर्गत जलापूर्ति बढ़ाने के लिए एक अनूठा सुझाव यह है कि लंबी दूरी से जल लाने के बजाय जल की रिसाइक्लिंग की जाए और दोबारा उसका प्रयोग किया जाए। यो दो कार्यक्रम शहरी कायाकल्प में भी एक-दूसरे के पूरक होंगे। अमृत परियोजना आधारित प्रणाली पर चलता है, लेकिन स्मार्ट सिटीज मिशन क्षेत्र आधारित रणनीति पर काम करेगा। दोनों कार्यक्रम राज्य, शहरी, स्थानीय निकायों एवं निजी क्षेत्र के बीच साझेदारी को बढ़ावा देने का यत्न करते हैं। और केन्द्र सरकार निर्णायक भूमिका निभाएगी।

चुनौतियाँ एवं परिणाम- भारत की वर्तमान शहरी व्यवस्था की विशेषता यह है कि इसमें 7935 शहर हैं, तीन महानगर (मुंबई, कोलकाता और चेन्नई) हैं, जिनका ब्रिटिश शासन के

दौरान विकास हुआ। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली है। उनके बाद दूसरे स्थान पर बेंगलुरु, हैदराबाद, अहमदाबाद और पुणे जैसे बड़े शहर हैं। इन आठ शहरों की परस्पर निर्भरता तथा पारस्परिक संबंध एवं उनके क्षेत्रीय वर्चस्व एवं शहरी गलियारों में भारत को वैश्विक आर्थिक शक्ति में बदल देने की क्षमता है। किन्तु ये शहर स्वयं ही यह करने में सक्षम नहीं हैं, क्योंकि उनके सामने बड़ी चुनौतियां हैं। इसलिए शहरी विकास की रणनीति महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। क्षेत्रीय असमानता, शहरी-ग्रामीण विभाजन एवं शहर के भीतर विषमता भारत के शहरी कायाकल्प एवं आर्थिक प्रगति में बड़े बाधक हैं। वर्तमान केन्द्र सरकार के स्मार्ट सिटीज मिशन एवं अमृत की परिकल्पनाओं तथा रणनीतियों को इसी आलोक में देखा जाना चाहिए। मध्य, पूर्वी एवं पूर्वोत्तर भारत के कम शहरीकरण वाले क्षेत्रों में कई स्मार्ट शहरों का प्रस्ताव दिया जा रहा है। अमृत भी 4041 विधिक शहरों में से 500 पहले चरण में अपने दायरे में लेना चाहता है। किन्तु बड़ी संख्या में (3894) जनगणना शहर हैं, जो दोनों में से किसी भी कार्यक्रम के अंतर्गत नहीं आते। जनगणना शहरों की कमान प्रायः ग्राम पंचायत के हाथ में होती है, जिनके पास संसाधनों एवं संस्थागत क्षमता की तो कमी होती है, किन्तु ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच सेतु का कार्य करने की संभावना होती है। जनगणना शहरों को भी शहरी विकास रणनीति में शामिल करने से ग्रामीण विकास के लिए शहरीकरण की संभावना भी सामने आएगी।

स्मार्ट सिटीज मिशन की क्षमता और अमृत एवं हाउसिंग फॉर ऑल के साथ उसके तालमेल से कई लाभ हो सकते हैं किन्तु गरीबों एवं झुग्गी बस्तियों के हितों की रक्षा की आवश्यकता है। यह कार्यक्रम न तो प्रशासन के स्तर पर और न ही क्रियान्वयन के स्तर पर अलग-अलग होने चाहिए अन्यथा इनमें समावेशन समाप्त हो जाएगा। जैसी कि परिकल्पना की गई है, स्मार्ट शहर डिजिटल विभाजन को बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि शहर के भीतर एवं शहर तथा गाँवों के बीच विभाजन समाप्त करने के लिए है। स्मार्ट शहर के विचार को सूचना एवं डिजिटल प्रौद्योगिकियों के प्रयोग से शहरी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने एवं प्याप्त तथा प्रभावी सेवा आपूर्ति सुनिश्चित करने की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। इन कार्यक्रमों की सफलता का निर्णय भविष्य में यह देखकर होगा कि इन्होंने लोगों के जीवन को कितना बदला और हमारे समाज में बढ़ रही असमानता को कितना कम किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

- अल्बिनोवी, यू बेराडी तथा आर एम डैजेलिको (2015) "स्मार्ट सिटीज: डेफिनिशंस, डाइमेंशंस, परफॉर्मेंस एंड इनीशिएटिव्स", जर्नल ऑफ अर्बन टेक्नोलॉजी, 22(1): 3-21
- स्मार्ट सिटी मिशन - स्मार्ट भारत के निर्माण की और बढ़ते एक कदम (2016): [https://www-indiagov-in](https://www.indiagov-in)
- आर बी भगत (2014): भारत में शहरी नीति और कार्यक्रम, योजना, सितम्बर 2014
- आर बी भगत (2015): स्मार्ट शहर: अवधारणाएं एवं रणनीतियाँ, योजना, सितम्बर 2015
- आर रामचंद्रन (1989): अर्बनाइजेशन एंड अर्बन पालिसी इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली
- नीरज कुमार राय (2011): सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक संरचना, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- स्मार्ट सिटीज (2015): मिशन, विवरण और दिशानिर्देश, भारत सरकार, शहरी विकास मंत्रालय, जून, 2015

कोविड 19 का जनजातीय शिक्षा पर प्रभाव (दन्तेवाड़ा जिले के मुरिया जनजाति के विशेष संदर्भ)

• अशोक कुमार नाग
•• आयशा कुरैशी

सारांश- छत्तीसगढ़ राज्य का दन्तेवाड़ा जिला जनजातीय समुदाय की दृष्टिकोण से मुरिया जनजाति की बहुलता वाला जिला है। वैश्विक महामारी कोरोना काल में जहां पूरे विश्व में अफरा-तफरी का वातावरण निर्मित हुआ और लॉकडाउन की स्थिति बनी। दन्तेवाड़ा जिला में भी 15 मार्च 2020 से लॉकडाउन के कारण सभी शैक्षणिक संस्थान को बंद करना पड़ा। सामान्य जन जीवन प्रभावित हुआ। मनोवैज्ञानिक रूप जनजातीय समाज भी इस आपदा-विपदा के कारण भयातुर दिखाई दिया। सामान्य दिनचर्या से लेकर सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियां प्रभावित हुईं। 4-5 माह के एक लंबे अन्तराल पश्चात अनलॉक की प्रक्रिया प्रारंभ होने लगी, शासन-प्रशासन द्वारा कोरोना वायरस से बचाव को लेकर सुरक्षा एवं बचाव संबंधी आदेश निर्देश को ध्यान में रखकर जनजीवन को पुनः सामान्य स्तर पर लाने के प्रयास हुए। इसी क्रम में स्कूलों की कक्षाएं भी अब आनलाइन मंच पर प्रारंभ की गईं। शिक्षकों को ऑनलाइन कोर्स के माध्यम से प्रशिक्षित किया गया, सर्वे करवाये गये। हर संभव प्रयास हुए एवं निरंतर जारी हैं। किन्तु जनजातीय समुदाय तक संचार सुविधाओं की पहुंच विहीनता, कमजोर मोबाइल नेटवर्क, पालकों की मोबाइल के उपयोगिता संबंधी अज्ञानता, कमजोर आर्थिक स्थिति, रोजमर्रा की सामान्य जीवन जीने की प्रवृत्ति ने आनलाइन कक्षा को लेकर अनेकानेक चुनौतियां एवं समस्याएं रख दी। एक लंबे समय अंतराल तक स्कूलों की पठन-पाठन से युक्त वातावरण से अलगाव ने जनजातीय छात्रों में सीखने की गति, ज्ञान के स्तर को प्रभावित किया एवं असमानता की खाई को और अधिक बढ़ाया। जनजातीय समुदाय सूचना क्रांति के इस युग में प्रथम पीढ़ी शिक्षार्थी के रूप में प्रयोग के दौर में है। कोरोना महामारी के इस भय-भ्रांति युक्त वातावरण ने उनकी समूची दशा-दिशा को प्रभावित ही नहीं किया अपितु अस्त-व्यस्त कर दिया। प्रस्तुत शोध के माध्यम से कोविड 19 के कारण जनजातीय शिक्षा पर हुए प्रभाव को जानने का विनम्र प्रयास है।

मुख्य शब्द- कोविड 19, संक्रमण, लॉकडाउन, जनजाति

परिचय- जिले में अविष्कृत तथा नवाचार युक्त शिक्षा जैसे पोटाकेबिन, आस्था गुरुकुल, छू लो आसमान, नन्हे परिन्दे उजर 100 आदि शिक्षण संस्थाओं एवं कार्यक्रमों ने जनजातियों में शिक्षा के प्रति अभिरूचि जागृत की। फलस्वरूप अज्ञानता तथा अशिक्षा से ग्रसित क्षेत्र जो कि नक्सलगढ़ के नाम से अभिशप्त था, अब जाग गया है, एजुकेशन सिटी जैसे अभिनव संस्था की स्थापना के कारण शिक्षा के गढ़ के रूप में वैश्विक स्तर पर ख्याति अर्जित कर रहा है। आवासीय परिसर से युक्त आश्रम, छात्रावासों में छात्र-छात्राएं अपने भविष्य के सपने गढ़ने लगे। पालकों में भी बच्चों के भविष्य को लेकर निश्चिंतता की

- शोधार्थी समाजशास्त्र बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर, छत्तीसगढ़
- सहायक प्राध्यापक, शोध निदेशक बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर, छत्तीसगढ़

मुस्कान दिखाई देने लगी है।

लिंगभेद को समाप्त कर समावेशी तथा गुणवत्तापूर्ण बाधा रहित शिक्षा का रास्ता सुगम बना दिया। किंतु सरल सहज एवं सामान्य जीवन के अभ्यस्त जनजातियों के लिए कोविड 19 का छात्र-छात्राओं की शिक्षा पर विशेष प्रभाव दिखाई दिया। विद्यालय बंद हुये, अधूरा पाठ्यक्रम, परीक्षा नहीं हुई, लाकडाउन की लंबी अवधि ने छात्रों के ज्ञान के स्तर, सीखने की क्षमता तथा पढ़ाई के प्रति अभिरूचि को प्रभावित किया। आनलाइन कक्षाओं के माध्यम से कुछ प्रयास अवश्य किये जा रहे हैं किंतु यह अभ्यास का दौर है। निश्चित ही इसके दूरगामी परिणाम होंगे किन्तु यह प्रयोग जनजातीय शिक्षा की दशा और दिशा के लिए एक सबक होगा। घरेलू कमजोर आर्थिक दशाएं, कमजोर नेटवर्क, पालकों में शिक्षा के प्रति उदासीनता, शिक्षकों के साथ सतत संपर्क का अभाव, शिक्षकों का अन्य शासकीय कार्यों में संलग्नता, परिवार के साथ छात्रों का रोजमर्रा की जीवनचर्या में भागीदारी, कृषि, जानवरों को चराने आदि में सहयोग आदि ऐसे तथ्य हैं, जो इस महामारी के दौर में जनजातीय शिक्षा की निरंतरता में बाधक रहे हैं।

देश की शिक्षा स्तर पर कोरोना का प्रतिकूल प्रभाव हुआ है। संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 32 करोड़ छात्रों की शिक्षा प्रभावित हुई, जिसमें से 15.18 करोड़ छात्राएं एवं 16.25 करोड़ छात्र हैं। शिक्षा पर इस प्रभाव से स्पष्ट है कि अनेक परिवर्तनों और चुनौतियों के दौर में हमें अपने शैक्षणिक प्रणाली में डिजिटलीकरण को मजबूती देने की आवश्यकता है। महामारी के बाद विद्यालयों की स्थायी तकनीक एवं अवसंरचना में बदलाव लाना होगा। शिक्षकों के प्रशिक्षण व उनके कार्य कौशल में सुधार लाने होंगे। परीक्षाएं पारंपरिक तरीके से पृथक् ऑनलाइन माध्यम से कराने की आवश्यकता होगी। एक अध्ययन के अनुसार कोविड 19 का दौर बीतने के बाद डिजिटल माध्यम से पढ़ाई की प्रवृत्ति बढ़ेगी, कम अवधि वाले पाठ्यक्रम प्रचलित होंगे। इससे शिक्षा जगत में नए विचारों के उदाहरण प्रस्तुत होंगे। कोरोना के दबाव के कारण विद्यालयों में डिजिटल माध्यम का ही प्रयोग अधिकाधिक किया जावेगा व्हाट्सएप, जूम, टीम एप्स, ई मेल के प्रयोग में बढ़ोत्तरी होगी। यद्यपि विभिन्न देशों में ऑनलाइन शिक्षा से जुड़ी समस्याओं के दृष्टिकोण से भारत में अच्छी गति वाली इंटरनेट की सुनिश्चितता अभी नामुमकिन है। नैशनल सैम्पल 2017-18 के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 42 प्रतिशत शहरी जी 15 प्रतिशत ग्रामीण घरों में इंटरनेट की सुविधा है। यदि एक माह में एक बार इंटरनेट का प्रयोग करने वालों के इंटरनेट से जुड़ा मानें तो केवल 34 प्रतिशत शहरी एवं 11 प्रतिशत ग्रामीण लोग ही इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। बितानी कम्पनी जो उच्च शिक्षा के संबंध में संस्थान की रैंकिंग एवं इनकी नीति का विश्लेषण करती है, इसके अनुसार मंहगी पढ़ाई में निवेश पर मिलने वाला लाभ कम होगा और कोविड 19 के बाद रोजगार के अवसर कम होंगे।

अध्ययन पद्धति- प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ के दन्तेवाड़ा जिला का चयन किया गया, उत्तरदाता के चयन हेतु दैव निदर्शन के लाटरी पद्धति से जिले के 4 विकास खंड के 12 ग्रामों का चयन किया गया। चयनित ग्राम में से 300 मुरिया जनजाति परिवार का चयन उद्देश्यपूर्ण दैव निदर्शन पद्धति के माध्यम से किया गया। चयनित उत्तरदाताओं से तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन पद्धति के माध्यम से किया गया। अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अधिकांश अनुसूची वीडियो कालिंग के माध्यम

से भरे गये। अध्ययन से संबंधित द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु समाचार पत्र-पत्रिका, अप्रकाशित व प्रकाशित शोध पत्रिकाएं, इंटरनेट आदि से लिये गये हैं।

परिणाम एवं विश्लेषण-

आवासीय विद्यालय में अच्छी शिक्षा- जिला प्रशासन एवं छत्तीसगढ़ शासन द्वारा आवासीय विद्यालयों की स्थापना का उद्देश्य बाधा मुक्त शिक्षा प्राप्त कर जनजातीय छात्रों की शाला त्यागने की प्रवृत्ति में कमी लाना। छात्र-छात्राओं के अंदर शिक्षा के प्रति सकारात्मक प्रवृत्तियां विकसित करना। सर्वसुविधा युक्त आवासीय परिसर में क्षेत्रीय भाषा-भाषी अनुदेशकों की नियुक्ति के द्वारा बच्चों में अपनत्व की भावना का विकास करना।

तालिका क्रमांक-01

आवासीय विद्यालय की शिक्षा का प्रभाव

क्रमांक	आवासीय विद्यालय की शिक्षा का प्रभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
1	शाला त्यागी छात्रों की संख्या कम हुई	108	36
2	पालकों में शिक्षा के प्रति अभिरूचि जागी	59	19.67
3	गांव से स्कूल की दूरी की समस्या समाप्त हुई	97	32.33
4	भाषा संबंधी परेशानी दूर हुई	28	9.33
5	लागू नहीं	08	2.67
योग		300	100

तालिका क्रमांक 01 के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना था कि लाकडाउन से पूर्व जिले में बाधामुक्त समावेशी शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जिले में ही अविष्कृत पोटा केबिन आश्रम, नन्हे पंरिदे आस्था जैसी आवासीय विद्यालय के कारण शाला त्यागी बच्चों की संख्या में कमी आयी। 32.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि स्कूलों से निवास स्थान की दूरी, नदी-नाले, पहुंच विहीन दुर्गम क्षेत्र होने के कारण से कई बच्चे स्कूल जाना बीच में छोड़ देते थे, आवासीय परिसर ने इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया। 19.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि आवासीय विद्यालय में छात्रों को भोजन, कपड़े, पुस्तकें आदि निःशुल्क उपलब्ध होने के कारण पालकों में भी निश्चित होकर बच्चों को स्कूल भेजने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। पालकों में शिक्षा के प्रति अभिरूचि जागने लगी है। 9.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार आवासीय विद्यालय में स्थानीय भाषा-बोली वाले अनुदेशक होते हैं जो कि छात्रों को उनकी भाषा में शिक्षा देते हैं इससे सहज भाव से शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। 08 प्रतिशत उत्तरदाताओं के लिए यह प्रश्न लागू नहीं होता।

स्कूल बंद होने के कारण जनजातीय शिक्षा में हुए प्रभाव- कारोना वायरस की रोकथाम हेतु देश में लॉकडाउन किया गया। इस दृष्टिकोण से जिले में ऐहतियात के तौर पर सभी शैक्षणिक संस्थान को आगामी आदेश के लिए बंद करने के आदेश हुए।

तालिका क्रमांक- 02

स्कूल बंद होने के कारण जनजातीय शिक्षा पर हुए प्रभाव

क्रमांक	स्कूल बंद होने के कारण जनजातीय शिक्षा पर हुए प्रभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
1	छात्रों की पढ़ाई के प्रति रुचि में कमी	56	18.67
2	अधिकतम समय खेलकूद में बिताते हैं	88	29.33
3	व्यवहार में परिवर्तन	104	34.67
4	बच्चों में निराशा तथा उदासीनता बढ़ रही है	41	13.67
5	लागू नहीं	11	3.67
योग		300	100

तालिका क्रमांक 02 में स्कूलों के बंद होने के कारण जनजातीय शिक्षा पर हुए प्रभाव के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि अधिकतम 34.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन हो गया। बच्चे अब जिद्दी तथा पालकों की आज्ञा का पालन नहीं करते। 29.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि अधिकांश बच्चों का समय अब पढ़ाई से हटकर खेलकूद में ज्यादा लगने लगा है। 18.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि बच्चों की पढ़ाई के प्रति रूति कम हो गयी है। 13.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि बच्चों को स्कूल जैसा वातावरण नहीं मिलने के कारण बच्चे अब पढ़ाई से जी चुराने लगे हैं।

संचार साधनों का अभाव- संचार क्रांति के दौर में जनजातीय समाज तक इनकी पहुंच का स्तर आज भी न्यून है।

तालिका क्रमांक - 03 संचार साधनों का अभाव

क्रमांक	संचार साधनों का अभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
1	परिवार में मात्र एक मोबाईल है	102	34
2	टेलिविजन नहीं है	46	15.33
3	समाचार पत्र नहीं पढ़ते	99	33
4	बिजली एवं पक्की सड़क नहीं है	41	13.67
5	लागू नहीं	12	04
योग		300	100

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर तालिका क्रमांक 03 में प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकतम 34 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर में एक ही मोबाईल है, जो घर का मुखिया चलाते हैं। 33 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे समाचार पत्र नहीं पढ़ते क्योंकि उन तक समाचार पत्र नहीं पहुंच पाती। वहीं 15.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का ने कहा कि उनके घर में टेलिविजन नहीं है। 13.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके घर में बिजली एवं गांव तक पक्की सड़क नहीं है। 04 प्रतिशत उत्तरदाताओं के लिए यह प्रश्न लागू नहीं होता।

ऑनलाइन शिक्षा में होने वाली समस्याएं- शासन द्वारा जारी निर्देशानुसार शिक्षकों को ऑनलाइन कक्षाएं प्रारंभ करने संबंधी आदेश जारी किये गये। इस हेतु सर्वे के माध्यम से छात्रों के घरों में मोबाईल की उपयोगिता की जानकारी भी एकत्र करवायी गयी। उत्तरदाताओं के परिवार में अध्ययनरत छात्रों को ऑनलाइन शिक्षा में आने वाली समस्या संबंधी जानकारी एकत्र की गई प्राप्त तथ्यों को तालिका क्रमांक 04 में दर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक- 04 ऑनलाइन शिक्षा में होने वाली समस्याएं

क्रमांक	ऑनलाइन शिक्षा में होने वाली समस्याएं	आवृत्ति	प्रतिशत
1	मोबाईल का उपयोग केवल बातचीत के लिए ही करते हैं	165	55
2	मोबाइल नहीं है	62	20.67
3	मोबाईल नेटवर्क सही नहीं है	53	17.67
4	बच्चे मोबाईल का उपयोग मनोरंजन के लिए करते हैं	12	4.00
5	मोबाईल के उपयोग के आंखों की समस्या	8	2.67
योग		300	100

उपरोक्त तालिका क्रमांक 4 से स्पष्ट है कि 55 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास की पैड वाला मोबाईल है, जिसका उपयोग वे केवल बातचीत के लिए ही करते हैं। वहीं 20.67

प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास मोबाईल नहीं है। 17.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घर में मोबाईल के नेटवर्क की समस्या है। 4 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार परिवार में बच्चे मोबाईल का उपयोग पढ़ाई के लिए कम मनोरंजन गेम खेलने में ज्यादा करते हैं। 2.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बच्चों की मोबाईल के अधिक समय तक उपयोग के कारण आंखों में जलन जैसी समस्या होती है।

शैक्षणिक संसाधनों की उपलब्धता- शहरी या अन्य आर्थिक रूप से संपन्न वर्गों के बच्चों को सभी प्रकार की शैक्षणिक संसाधनों की पूर्ति उनके पालक कर सकते हैं। किन्तु जनजातीय परिवारों में अधिकांश पालक अशिक्षित होते हैं, वे अपने बच्चों को अपने परिवार की आर्थिक जरूरतों के सहयोगी के रूप में देखते हैं। वनोपज संकलन, जानवरों को चराने, लकड़ी बीनने, खेती करने जैसे कार्यों में उनका सहयोग लेते हैं। अध्ययन के दौरान जनजातियों के घरों में शैक्षणिक संसाधनों की उपलब्धता संबंधी जानकारी लेने का प्रयास किया गया। अध्ययन से प्राप्त तथ्यों को तालिका क्रमांक 05 में प्रदर्शित किया गया है -

तालिका क्रमांक- 05

शैक्षणिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर आवृत्ति

क्रमांक	शैक्षणिक संसाधनों की उपलब्धता	आवृत्ति	प्रतिशत
1	घर में विद्यालय जैसे सुविधाएं नहीं होने के कारण छात्र पढ़ाई नहीं करते	132	44
2	नक्शा, प्रयोग सामग्री, लाइब्रेरी या अन्य शिक्षण सामग्री नहीं है	100	33.33
3	आर्थिक समस्या	32	10.67
4	लॉकडाउन के कारण शहर जाकर समग्री क्रय नहीं कर पा रहे	27	09
5	लागू नहीं	09	03
योग		300	100

तालिका क्रमांक 05 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अधिकतम 44 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने घर में विद्यालय जैसी परिस्थितियां उपलब्ध न होने के कारण से बच्चों के लिए ऑनलाइन कक्षा को व्यावहारिक रूप से शिक्षा हेतु अनुपयुक्त माना। वहीं 33.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उनके घरों में नक्शा प्रयोग सामग्री लाइब्रेरी या अन्य शिक्षण सामग्री का अभाव है। 10.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि बच्चों को शिक्षण सामग्री की उपलब्धता के विषय में कोई ध्यान नहीं देते उनका अधिकांश समय खेल-कूद में ही बीतता है, परिवार की आर्थिक समस्या के कारण वे इन संसाधनों की व्यवस्था करने में सक्षम नहीं है, 09 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना था कि लाकडाउन के कारण वे शहर जाकर सामग्री क्रय पाने में असमर्थ हैं। 03 प्रतिशत उत्तरदाताओं पर यह लागू नहीं होता।

अधूरे पाठ्यक्रम को पूर्ण कर पढ़ाई जारी रखने की समस्या- स्कूल बंद होने के पश्चात कक्षाओं के लगने का क्रम भी बंद हुआ पाठ्यक्रम अधूरे रहे जिन्हें पूरा करने तथा कक्षाएं पुनः जारी करने की चुनौतियां सामने आयी। अध्ययन के दौरान इन समस्याओं को ज्ञात करने का प्रयास किया गया प्राप्त तथ्यों को तालिका क्रमांक 06 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका क्रमांक - 06
छूटी पाठ्यक्रम को पूरा कर पढ़ाई पुनः जारी रखने की समस्या

क्रमांक	छूटी पाठ्यक्रम को पूरा कर पढ़ाई पुनः जारी रखने की समस्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1	पिछली पढ़ी अधिकांश पाठ भूल चुके	108	36
2	स्मरण शक्ति एवं सीखने की क्षमता कम हो गई	56	18.67
3	बच्चों में परीक्षा न होने की चिंता	86	28.67
4	पालकों की परेशानियां	35	11.67
5	लागू नहीं	15	05
योग		300	100

तालिका क्रमांक 06 में तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उनके बच्चे पिछली पढ़ी हुई अधिकांश चीजें भूल चुके हैं। 28.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने परीक्षा न होने के कारण छात्रों के भविष्य को लेकर चिंता व्यक्त की है। 18.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके बच्चों की कक्षाएं बंद होने के कारण अभ्यास और सीखने का क्रम भी बंद हो गया जिसकी वजह से उनकी स्मरण शक्ति कम हो गई है। 11.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने का छात्र के साथ पालकों के लिए भी उनकी छूटी पढ़ाई को जारी रखने के लिए समस्यापूर्ण है। 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के लिए यह प्रश्न लागू नहीं होता।

निष्कर्ष एवं सुझाव- कोविड 19 की अनिश्चितता के समय में लॉकडाउन से हुए दुष्प्रभावों के कारण शैक्षणिक संस्थाओं के बंद होने से छात्रों में शिक्षा के प्रति रुचि विकसित करना चुनौतियों से भरा होगा। आवासीय विद्यालय के कारण जनजातीय छात्रों की शिक्षा के स्तर में सुधार हो गया है। किंतु विद्यालय बंद होने से छात्रों की शिक्षा के प्रति रुचि कम हो रही है। छात्र अब खेलकूद में अधिक समय बिताने लगे। आर्थिक स्थिति से कमजोर जनजातीय परिवारों में की एनडाइड मोबाईल ही होती है, जिससे वो ऑनलाइन कक्षा में भाग नहीं ले पा रहे। गिने चुने परिवारों में मात्र एक ही स्मार्ट फोन है जो इनके पालक रखते हैं। कमजोर नेटवर्क की समस्या के कारण भी ऑनलाइन कक्षाएं प्रभावित हो रही। कई छात्रों के घरों में बिजली नहीं है। संचार सुविधा कमी के कारण कोई भी सूचना छात्रों तक सही समय पर नहीं पहुंच पा रही। अधिक समय तक मोबाईल के उपयोग के कारण आंखों में जलन, सिरदर्द जैसी समस्या छात्रों में हो रही है। अधूरे पाठ्यक्रम को पूरा करने व पुनः कक्षाएं प्रारंभ करना छात्रों एवं पालकों के लिए चिंतनीय विषय है।

सुझाव - उपरोक्त निष्कर्ष के उपरांत निम्न सुझाव है -

1. शिक्षकों व छात्राओं को डिजिटल तकनीकी से युक्त शिक्षण प्रणाली हेतु आवश्यक प्रशिक्षण एवं संसाधन उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।
2. छूटे हुए पाठ्यक्रम को पूरा करने हेतु छात्र, शिक्षक के साथ पालकों के भी सहयोग की आवश्यकता होगी।
3. ग्राम स्तर पर प्राजेक्टर के माध्यम से ऑनलाइन कक्षा हेतु सहायता से पालक एवं छात्रों को ऑनलाइन शिक्षा की उपयोगिता संबंधी जानकारी दी जानी चाहिए।
4. लाउडस्पीकर के माध्यम से मोहल्ले में सोशल डिस्टेंस बनाकर कक्षाएं लगाना बेहतर विकल्प हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. जगदलपुरी, लाला ; “बस्तर इतिहास एवं संस्कृति”, तृतीय संस्करण, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्रस्तावना, 2007.
2. हसनैन, नदीम ; “जनजातीय भारत” जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर, नई दिल्ली, 1977
3. कुजूर, निस्तर ; “बिहार जनजाति में शिक्षा, दशा एवं दिशा” आयु पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2018.
4. शर्मा, ब्रम्हदेव ; “आदिवासी विकास (एक सैद्धांतिक विवेचन)”, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1986.
5. चौरसिया, विजय ; “प्रकृति पुत्र बैगा”, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2004.
6. कुरुक्षेत्र, जनवरी 2016.
7. <https://www.villagesquare.in/hindi/2020/05/28>.
8. <https://www.google.comamp/s/m.punjabkesari.in/blog/news/lockdown-corona-virus-study-unesco-1177955%3famp>.
9. <https://www.mediaforrights.org/betone/education/hindi-articles/164>.

बाल अपचार (कोविड 19 के संदर्भ में)

• गजानन मिश्र

सारांश- अपराध की तरह बाल अपचार की समस्या वर्तमान में एक ऐसी समस्या के रूप में समाज के समक्ष उभरकर आयी है जिससे समूचा जगत गम्भीर हो गया। आवारागर्दी, भीखमांगना, दुर्व्यवहार, बुरे इरादों से शैतानी करना और उदण्डता, इनकी प्रवृत्तियों में शामिल है। बाल अपचार एक परिस्थितिजन्य अपचार है। परिस्थितियाँ आपराधिक व्यवहार में मुख्य भूमिका निभाती हैं। अतः परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण मानवीय स्वभाव में परिवर्तन व भिन्नता आना स्वाभाविक है, कोविड-19 में समाज पर पड़े प्रभाव के फलस्वरूप बालकों में जो विशेषकर आपराधिक क्षेत्र से आते थे, स्कूल व विभिन्न संस्थाएँ बन्द हो जाने के कारण खाली समय में समाज विरोधी कार्यों की तरफ मुड़ गये व अपचार की ओर अग्रसर हुए। प्रस्तुत शोध पत्र में इस प्रकार के बाल अपचारियों की व्याख्या की गई है।

मुख्य शब्द- बाल अपचार, सामाजिक परिवर्तन, कोविड-19

मानव ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। मानव युग के प्रारम्भ से वर्तमान काल तक अनेक सभ्यताओं व संस्कृतियों का निर्माण व विध्वंस हो चुका है किन्तु स्वयं मानव के प्रगति चरण निरंतर अथक रूप से बढ़ते जा रहे हैं और उनकी प्रगति का रहस्य यही है कि उसने स्वयं के अस्तित्व को बनाये रखा है। उसने मानव बीज अर्थात् मानव शिशु को प्रत्येक प्रकार का संरक्षण दिया है और यदि ऐसा न किया होता तो कहा नहीं जा सकता था कि मानव के अवशेष किस रूप में होते। आज नहीं बल्कि वर्षों पूर्व के मनुष्यों ने यह अनुभव कर लिया था कि यदि मानव वंश का अस्तित्व बनाये रखना है तो मानव शिशु की रक्षा अनिवार्य है। परिवार में जन्म लेने के पश्चात् ही मानव शिशु के शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक विकास के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। यह कथोक्ति अपने आप में पूर्ण सत्य है, कि “Child is the father of the man.”

पश्चिमी देशों के तरुण-तरुणियों की भांति भारतीय परिवारों के तरुण-तरुणियाँ स्वतंत्र नहीं हैं, उन पर पालकों का नियंत्रण कुछ अंश तक आज भी बना हुआ है परन्तु खेद का विषय यह कि पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण तथा आधुनिकीकरण के नाम पर भारतीय कुटुम्बों में उनके बच्चों पर से उनके पालकों का नियंत्रण हटता जा रहा है। अतः उचित मार्गदर्शन के अभाव में उनमें आपराधिक प्रवृत्ति के पनपने का अवसर मिल जाता है। अपचारी किशोरों की समस्या वर्तमान में एक ऐसी समस्या के रूप में हमारे समक्ष उभरकर आयी है कि समूचा विश्व इस संबंध में गम्भीर हो गया है। चाहे वे विकसित देश हो या विकासशील, सभी इस समस्या से जूझ रहे हैं। वास्तव में विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों में किशोर अपचारिता की समस्या अत्यंत जटिल हो गई है। यह समस्या आज की समस्या नहीं है बल्कि पुरातन कालीन समाज भी इस समस्या से ग्रसित था। 2400 वर्ष पूर्व सुकरात ने लिखा था, बच्चे अब विलासिता की ओर उन्मुख हो रहे हैं, उनमें बुरी आदतों

• सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, महात्मा गांधी महाविद्यालय, करेली

का समावेश हो रहा है, प्राधिकार की अवमानना कर रहे हैं, बड़ों का अनादर और व्यायाम के बदले गपशप कर रहे हैं, समूहों में एकत्रित होकर बकवास करते हैं, रूचिकर भोजन पसंद करते हैं, एक पैर को दूसरे पैर पर रखते हैं और अपने अध्यापकों को भयभीत करते हैं। इसी संदर्भ में अनेक विद्वानों का यह मानना है कि अपराध मानव समाज का अपरिहार्य अंश है। मानव सभ्यता के ज्ञान के समय से ही, मनुष्य अपराध की धारणा से परिचित है। मनुष्य की प्रवृत्ति स्वार्थी है, जिससे सामान्य लोगों के हितों पर संघर्ष होता है और कुछ कार्य जो समाज के मानकों के विपरीत हैं, उनको अपराध की संज्ञा दी जाती है।

आदिम समाज में अपराध के संबंध में अधिक समस्याएँ नहीं थीं क्योंकि व्यक्ति कुल, समूहों में रहा करते थे। समस्याएँ सीमित होने के कारण अपचारकी धारणा आधुनिक धारणा की तुलना में बहुत विस्तृत नहीं थी। मानव जीवन की ज़िल्लताओं और सभ्यता की प्रगति के कारण अपराधों की संख्या और प्रकार में सतत वृद्धि हुई है।

अनैतिक एवं अपराधिकता में घनिष्ठ संबंध है। वध करना, बलात्कार, चोरी व अपहरण अथवा घर में आग लगाना उच्च कोटि के अनैतिक कार्य हैं, ये कार्य निर्विवाद रूप से दण्डित किये जाते हैं क्योंकि ये सर्वत्र अपराधिक माने जाते हैं किन्तु नैतिकता और वैधता दोनों परिवर्तनशील विचारधाराएँ हैं जो नियम वर्तमान समय में नैतिक है आवश्यक नहीं कि भविष्य में भी वह विधिक बनी रहे। पुनः उसी युग में कुछ कार्य किसी स्थान पर नैतिक अथवा विधिक किन्तु दूसरे स्थान पर अनैतिक या अविधिक हो सकते हैं, यह विभिन्न देशों के बीच तथा एक ही देश के विभिन्न भागों में सत्य हो सकता है। नैतिकता तथा वैधता के लिये आवश्यक नहीं है कि सहगामी हों। अपचार का परिभाषित करना एक कठिन कार्य है जिसे व्यवस्थित रूप से आज तक किसी ने भी विवेचित नहीं किया है। अपचार विधि द्वारा निषेध कार्य है जिसके लिये दण्ड दिया जाता है। किसी कार्य को अपचारकी संज्ञा दिये जाने के लिये आवश्यक है कि उस कार्य को करने वाले व्यक्ति का आशय दोषपूर्ण हो। अपचार को कई प्रकारों में बांटा गया है। कुछ विद्वानों ने इन्हें सामान्य और गम्भीर अपचार के रूप में विवेचित किया है। वहीं कुछ विद्वानों ने इन्हें असामान्य और अव्यवस्थित अपचार में बांटा है।

अपचारशास्त्रियों ने आयु के आधार पर अपराध को दो वर्गों “बाल अपचार” और “वयस्क अपराध” में विभक्त किया है। उपरोक्त शोध पत्र में बाल अपचार की समस्या को स्पष्ट किया गया है। समाज में बाल या किशोर अपचार एक गम्भीर समस्या है। गम्भीर समस्या इसलिये माना गया है, क्योंकि बालक समाज का भविष्य होते हैं। यदि देश के भावी कर्णधार अपराधिक गतिविधियों में संलग्न होते हैं, तो आने वाले दिनों में देश के लिये चुनौती और समस्या के रूप में होंगे। इसलिये 18 वीं शताब्दी से बाल या किशोर अपराधों को बाल सुधार के रूप में लिया जा रहा है। इस उद्देश्य के लिये न्यायालयों ने किशोर अपराधियों को कारागार की अपेक्षा सुधार गृहों में भेजने को प्राथमिकता दी। इसके साथ ही बाल अपचारी से व्यवहार में दण्डात्मक व्यवहार की अपेक्षा सामाजिक कल्याण और सुधार की अवधारणा को प्राथमिकता प्रदान की जाने लगी। इसके लिये अमेरिका में 18 वीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने बाल आंदोलन प्रारम्भ किये जिसका मुख्य उद्देश्य किशोर अपराधियों का वयस्क अपराधियों से सम्पर्क-विकार रोकना था। किशोर अपचार को अपराध की श्रेणी से अलग करने के लिये ही अपराधशास्त्रियों, विधिवेत्ताओं ने किशोर अपराध को विषय में नयी शब्दावली का प्रयोग प्रारंभ किया। जैसे किशोर अपचार और किशोर अपचारिता प्रारम्भ किया गया। वहीं किशोरों द्वारा किये जाने वाले अपचार में अभियुक्त को

गिरफ्तार न करके अभिरक्षा में रखने की बात की एवं इन्हें दण्डित करने की जगह सुधारने की आवश्यकताओं को महत्वपूर्ण माना। इससे संबंधित सभी अभिलेखों को पत्रावलियों का भाग माना जाता है, आपराधिक व्यक्तियों का नहीं।

बाल्यावस्था के व्यवहार के अतिलंघन संख्यात्मक व्यवहार और समस्यात्मक लक्षण वाले व्यवहार में अंतर करना कठिन है। बाल्यावस्था में सामान्यतः बहिन की गुल्लक से पैसे चुराना, भाई बहिनों को दाँतों से काटना, माँ को मारना, घर से भागना, स्कूल से भागना, जरा-जरा सी बात पर क्रोध करना, झल्लाहट, घर के सामान को तोड़ना, छुपकर धूम्रपान, नशा करना, जुआ खेलना, नशीले पदार्थ का लेन-देन करना, अश्लील साहित्य, अश्लील फिल्म, अश्लील संदेश आदान प्रदान करना, हस्तमैथुन करना आदि जैसे व्यवहार हैं। जिनमें बच्चों की बढ़ती सहभागिता की विवेचना करना कठिन है, क्योंकि घर से बाहर निकलने पर बच्चा एक नये संसार में प्रवेश करता है, जहाँ उसके मित्रों का एक नया संसार निर्मित होता है। इस स्तर पर बालकों के द्वारा किया जाने वाला व्यवहार, जो समाज और विधि की दृष्टि से आपराधिक व्यवहार है, उनमें और बच्चों के क्रीड़ा व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में ही बालकों द्वारा समाज विरोधी गतिविधियों का सम्पादन होता है। बाल्यावस्था में बच्चों के क्रीड़ा व्यवहार में बच्चों के कदाचरण को शास्त्रियों और अपचारशास्त्रियों ने एक स्वाभाविक क्रिया के रूप में लिया है, वहीं विधिशास्त्रियों ने इसे अपचार की श्रेणी में रखा है। लंबे प्रयासों के बाद 18 वीं शताब्दी से किशोरवस्था में किये जाने वाले गैरकानूनी कृत्यों को अपराध की जगह अपचारिता की संज्ञा प्रदान करते हुये उन्हें सुधारगृह में रखने की शुरुआत की।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि इच्छाओं को दबाया नहीं जा सकता है। जब किसी बच्चे के मन में किसी वस्तु को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा के परिणाम स्वरूप बेचैनी पैदा हो जाती है तो या तो वह उस वस्तु को सामान्य उपायों से प्राप्त करके अपनी बेचैनी को दूर कर लेता है अथवा सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध आचरण करके उसे असमान्य उपायों से प्राप्त करना चाहता है। यदि वह उसे पाने में असमर्थ रहता है तो असफलता की प्रतिक्रिया के स्वरूप व समाज विरोधी गतिविधियों की ओर उन्मुख हो जाता है, जैसे यदि बच्चा बिस्कुट खाने की इच्छा पर उसे डांट दिया जाता है तो बच्चा बिस्कुट की चोरी कर बैठता है और यही चोरी किशोर अपचार का स्वरूप है। कानून की दृष्टि से एक खास आयु सीमा के बालक द्वारा समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं एवं मान्यताओं का उल्लंघन ही किशोर अपचार है। यद्यपि किशोर अपचार की सार्वभौमिक परिभाषा नहीं दी जा सकती है फिर भी कुछ विद्वानों ने किशोर अपचारको परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

सिरिल बर्ट के अनुसार, उस बालक को अपराधी बालक कहते हैं जिसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ इतनी गम्भीर हो जाती हैं कि इसके प्रति सरकारी कार्यवाही आवश्यक हो जाती है। डॉ. एम.जे. सेठना के अनुसार, किशोर अपराध के अन्तर्गत किसी बालक या ऐसे तरुण व्यक्ति के गलत कार्य आते हैं जो कि सम्बन्धित स्थान के कानून (जो उस समय लागू हों) के द्वारा निर्दिष्ट आयु सीमा के अन्दर आते हैं। रॉबिन्सन ने किशोर अपचार में आवारागर्दी और भीख मांगना, दुर्व्यवहार, बुरे इरादों से शैतानी करना और दण्डता की प्रवृत्तियों को शामिल किया है। डॉ. परिपूर्णानन्द वर्मा के अनुसार “किशोर अपचारकर्तव्यों की उपेक्षा अथवा उल्लंघन है, एक गलती है। सैलिम एवं बुलफैंग के अनुसार किशोर अपचार एक निश्चित आयु सीमा के बालक का गैर कानूनी आचरण है, वह आचरण जो अपने गम्भीरतम

परिणाम स्वरूप, उस बच्चे को एक संस्था में तब तक रखने का कारण बन सकता है, जब तक कि वह बच्चा वयस्क नहीं हो जाता है।

पूर्ववर्ती अध्ययन : बाल अपचार के संबंध में अनेकानेक विद्वानों ने पूर्व में अध्ययन किया जा निम्नानुसार है -

लोम्ब्रासो (1906) के अनुसार कुछ अपराधी जन्म से ही अपराधी स्वभाव के होते हैं तथा उनमें अपराधिकता वंशानुगतता के कारण होती है। ऐसे अपराधियों को लोम्ब्रासों "एटाविस्ट" की संज्ञा देते हैं। लोम्ब्रासों के अनुसार ही ऐसे अपराधी जिनकी मानसिक दशा सामान्य नहीं होती है, स्वाभाविकतः उचित अनुचित में विभेद करने की क्षमता न होने के कारण वे अपराधों के प्रति अधिक संवेदनशील नहीं रहते हैं।

जे.एल.गिलिन (1945) के अध्ययन में यह सिद्ध कर दिया कि दर्शकों पर फिल्म और टी.वी., रेडियो का अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। क्योंकि ये समाज में मनोरंजन के सशक्त माध्य के रूप में स्वीकार किये जा चुके हैं। फिल्मों में दिखाये जाने वाले मारपीट के हिंसात्मक दृश्य एवं पाश्चात्य सभ्यता वाली बातों का विशेषतः बालक व किशोरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे उन्हें जीवन की वास्तविकता मानते हुये उनका आंधानुकरण करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। वर्तमान में किशोरवय लड़के, लड़कियों में अपचारिता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का प्रचार व संचार माध्यम प्रमुख कारण है।

डोनाल्ड टैफ्ट (1959) (क्रिमिनोलॉजी) के अध्ययन में परिवार एक ऐसी संस्था है जिसमें बालक की सभी प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी की जाती हैं। यदि परिवारजन अपने बच्चों के प्रति उदासीन है और उनकी उपेक्षा करते हैं तो निश्चित ही बच्चे उनके स्नेह के अभाव में स्वयं को निराश्रित और उपेक्षित अनुभव करने लगते हैं और माता-पिता की लापरवाही के कारण अपराधिकता की ओर अग्रसर होते हैं।

डॉ. सुशीलचन्द्र (1967) (Sociology of Deviation in India) के अनुसार किशोर अपचारकी असामान्य स्थिति के समाधान के लिये एक क्रांतिकारी दृष्टि चाहिये। समाज में दुर्भाग्य से आज संरक्षकों को हर कदम पर यह बोध कराया जाता है कि बच्चों की बेसिक आवश्यकता उसे प्यार किया जाना है, परन्तु कहीं भी यह नहीं समझाया जाता कि प्यार क्या है और न ही संरक्षकों में प्यार उत्पन्न करने की योग्यता की शिक्षा दी जाती है। यदि संरक्षक जानबूझकर अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चे में आपराधिकता उत्पन्न होती है तो संरक्षकों को दण्डित किया जाना चाहिये।

सदरलैंड (1978) के अनुसार विभिन्न सामाजिक कारणों में पारिवारिक परिस्थितियों का अपराधिकता का सबसे गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि माता-पिता अनुचित आचरण करते हैं तो बच्चे उनकी देखा-देखी करते हुये वैसा ही आचरण करने लगते हैं।

ऐनरिको फ़ैरी (Criminal Sociology) के अध्ययन के अनुसार संवेदनशीलता, सामाजिक अक्षमता, भौगोलिक स्थिति आदि जैसे अनेक अन्य कारण होते हैं, जो किशोरों की आपराधिक प्रवृत्तियों पर प्रभाव डालते हैं। फ़ैरी का निश्चित मत था कि अपराधों की रोकथाम के लिये अपचार निवारण अभियान चलाना तथा अपराधी में सुधार लाने के लिये दंड का भी माध्यम के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उन्होंने अनियत दण्ड का समर्थन करते हुये बताया कि इसके प्रयोग द्वारा अपराधी को समाज में पुनर्स्थापित करने में सहायता मिलेगी।

डॉ. ग्लुएक और गैरिंग (1959) ने अपचारी किशोरवय बालक-बालिकाओं के

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् यह पाया कि आपराधिकता के मार्ग की ओर ले जाने का प्रमुख कारण यह होता है कि उनमें से अधिकांश यौवनारम्भ काल में हिंसक प्रवृत्ति के हो जाते हैं और उन्माद में वे ऐसे अनेक कृत्य कर बैठते हैं जो विधि विरुद्ध या अपचार होते हैं। यह भी साबित हो चुका है कि इनमें से अधिकांश पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त होते ही स्वयं को सुधार लेते हैं परन्तु सुधार हेतु अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में इनमें से अनेक अपचारी या अपराधी बन जाते हैं। इन परिस्थितियों में गरीबी, उपेक्षा, माता-पिता का दुराचारी होना, शैक्षणिक असफलता, परित्याग, कुसंगति, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

डब्ल्यू. तपन (Juvenile Delinquency) के मतानुसार आधुनिक युग में जीवन इतना अधिक व्यस्त एवं भौतिकवादी हो गया है कि आबादी की सघनता के कारण प्राकृतिक मनोरंजन के साधन प्रायः लुप्त हो गये हैं। आज के मनोरंजन की प्रवृत्ति व्यावसायिक अधिक हो गई है। सिनेमाओं में मारधाड़, यौन प्रदर्शन, जासूसी, चोरी, डाकाजनी आदि की घटनायें प्रमुख रूप से रहती हैं। होटल, क्लबों एवं रेंस्तराओं में भी स्वस्थ मनोरंजन का सर्वथा अभाव हो गया है। बालक अपनी आदत के कारण इन सब में जो कुछ भी देखते हैं और पसंद करते हैं, उसे अपने जीवन में करके देखना चाहते हैं। नायक के अंदाज में यौन स्वेच्छाचारिता, खलनायक के अंदाज में मार-धाड़, चोरी, डकैती एवं नायिका के अंदाज में अनैतिकता व फैशन का अनुकरण करके आपराधिकता की ओर बढ़ जाते हैं।

डॉ. एम.जे. सेठना (1998) (Society and The Criminal) के अनुसार योग्य एवं प्रेरणा देने योग्य शिक्षकों को चाहिये कि अपने निरीक्षण-परीक्षण में रहने वाले विद्यार्थियों में आत्म-निरीक्षण को प्रोत्साहित करें। उन्हें ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे वे अच्छाई-बुराई में स्वयं भेद कर सकें। समय-समय पर बालक की शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षा ली जानी चाहिये, जिससे यदि कोई विकार हो तो उसे प्रारम्भ में ही दूर कर दिया जाना चाहिये।

उद्देश्य- शोध कार्य के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं -

1. किशोर अपराधियों की सामाजिक पृष्ठभूमि को ज्ञात करना। जिसमें अपराधी के जन्म, व्यवसाय आदि चरों को स्पष्ट किया गया है।
2. कोविड-19 के प्रभाव के फलस्वरूप उन कारणों को ज्ञात करना जो किशोरों को आपराधिक कृत्यों की ओर ले जाते हैं।
3. अपचार उपरांत किशोर अपराधियों की प्रतिक्रिया को जानना।

उपकल्पना - शोध प्रक्रिया किसी घटना से संबंधित एक प्रकार के सम्प्रत्यात्मक प्रतिमान से प्रारम्भ होती है, जिसके सम्बन्ध में शोध कार्य प्रस्तावित है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में अन्वेषणात्मक आधार पर वास्तविक तथ्यों को मौलिकता प्रदान की गई है। शोधकार्य हेतु निर्मित कुछ महत्वपूर्ण उपकल्पनाएँ निम्न हैं -

1. किशोर अपराधियों की सामाजिक पृष्ठभूमि किशोर अपचारिता को प्रभावित करती है।
2. भावी जीवन में आपराधिकता निश्चित करने के लिए परिवार को सर्वोच्च स्थान होता है।
3. जिन कारणों से किशोरों के द्वारा अपचार किया जाता है, उनके ज्ञात होने पर किशोर अपचार कम हो सकते हैं।

अध्ययन क्षेत्र - किशोर अपचार वर्तमान समय में एक बहुत बड़ी सामाजिक समस्या है। इस बिन्दु को दृष्टिगत रखते हुए मैंने अपने अध्ययन क्षेत्र में नरसिंहपुर जिला मध्य प्रदेश की करेली तहसील के कोविड-19 के तहत टोटल लॉकडाउन के पश्चात् पुलिस थाने के

रिकार्ड एवं ग्राम सरपंच से ली गई सूचना के आधार पर किशोर अपराधियों से उनके माता-पिता एवं स्वयं उनसे शारीरिक दूरी व कोविड-19 के नियमों का पालन करते हुए प्राथमिक जानकारी के आधार पर तथ्यों को इकट्ठा किया गया है, जिसमें तहसील करेली के 18, ग्राम करपगांव के 13, बरमान के 13 एवं आमगांव के 09 किशोर अपराधियों को शामिल किया है, जो निम्न अपराधों में संलग्न थे।

बाल अपचारके प्रकार							
ग्राम	शराब ढोना	गाँजा लाना ले जाना	चोरी	सिगरेट व गुटका लाना ले जाना	पाकेटमारी	कुल	प्रतिशत
करेली	95 9-43	06 11-32	04 7-54	01 1-88	02 3-77	18	3396
बरमान	02 1-06	03 1-59	03 1-59	03 1-59	02 1-06	13	24.53
आमगांव	03 1-59	- 1-59	03 1-59	01 0-53	02 1-06	09	16.98
करपगांव	03 1-59	04 2-12	02 1-06	01 1-06	03 1-59	13	24.53
कुल प्रतिशत	13 6-89	13 6-89	12 22-64	06	09	53	98.99

स्रोत- पुलिस थाना करेली एवं साक्षात्कार के आधार पर

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में शोध हेतु 53 किशोरों को शामिल किया गया है जिनकी उम्र 10 से 15 वर्ष के बीच में है, जिसमें अपचार के प्रमुख घटकों में सारणी में दर्शाये अनुसार शराब ढोने वाले किशोर 9.43, 1.06, 1.59 एवं 1.59 शामिल हैं। गाँजा ढोने वाले किशोरों में 11.32, 1.59, एवं 2.12 शामिल हैं। चोरी करने वाले 5.54, 1.59, 1.59 एवं 1.06 किशोर शामिल हैं, सिगरेट व गुटका लाने-ले जाने वाले 1.88, 1.59, 0.53, 1.06 किशोर शामिल हैं। अंतिम तौर पर पाकेटमारी वाले किशोर 3.77, 1.06, 1.06, 1.59 शामिल हैं।

उक्त किशोरों से विभिन्न अपराधों के संदर्भ में संलग्नता क्यों है, इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा गया तो अधिकांश का यह कहना था कि हमारे पास कोई काम नहीं है, स्कूल भी नहीं लग रहे हैं, माँ-बाप पूरे समय डांटते या मारते रहते हैं। उससे डरकर हम घर से बाहर चले जाते हैं। ऐसे बालक अपनी इच्छाओं एवं आक्रोश को अपने विभिन्न विस्फोटक संवेगों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कुछ बच्चे भावनात्मक रूप से अस्थिर मिले, जिससे उनके मन में असंतुलन पैदा हुआ जिससे क्रोध, घृणा, भय और अपचारकी भावना ने जन्म लिया। कुछ बच्चों का ये मानना था कि हम तो सिर्फ मनोरंजन के आधार पर अवैध सामान को इधर से उधर ले जाते हैं, इसमें हमको कुछ पैसे मिल जाते हैं। कुछ किशोरों ने यह भी व्यक्त किया कि जेब काटना और विभिन्न अपचार करना खाली समय का परिणाम है।

सुझाव - असुखद एवं विध्वंसक प्रकृति के अन्य प्रतिभासों के निवारण की भांति किशोर अपचारिता का निवारण भी प्रकटतः घटना के बाद पश्चात्तर्वर्ती नियंत्रण की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। बाल अपचार अथवा अपचार निवारण के अनगिनित सुझाव दिये जा सकते हैं, लेकिन केवल इन्हें निम्न बिन्दुओं में सीमित किया गया है।

1. उन सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का समाप्त करना जो किशोरों को अपचार की ओर अग्रणी करती हैं।
2. उन किशोरों पर ध्यान देना जो जैविक अथवा मनोवैज्ञानिक अपूर्णताओं अथवा इच्छित साक्ष्य पर पहुंचने के निमित्त अथवा आर्थिक अभावों के कारण असामाजिक प्रवृत्तियों की तरफ झुक जाते हैं।
3. कानूनन रूप से भारतीय दण्ड संहिता की धारा 370 और अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 जिसमें शोषण का प्रयोजन शामिल है, का कठोरता से पालन

किया जाना चाहिए। चाइल्ड लाईन स्वयंसेवी संस्थायें, बाल कल्याण समिति, जिला बाल सुरक्षा इकाई, पुलिस जैसी संस्थाओं को चाहिए कि ऐसे बच्चों पर नजर रखे।

4. 06 से 14 वर्ष के बच्चे को गुणवत्ता युक्त शिक्षा निःशुल्क नामांकन, मध्याह्न भोजन को शामिल होना चाहिए।
5. किशोरों के घर के अन्दर का दूषित वातावरण भी किशोर मनोवृत्तियों पर बुरा प्रभाव डालता है। अतः ऐसे परिवारों को चिन्हित कर उन्हें उचित मार्गदर्शन देना चाहिए। यह आवश्यक है कि परिवार बच्चे के निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, अतः प्रत्येक परिवार का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने आप को एक आदर्श परिवार के रूप में प्रस्तुत करे। यह प्रमाणित हो चुका है कि अधिकांश बाल अपचारी अशिक्षित एवं उन परिवारों से आते हैं जो अत्यंत निर्धन होते हैं, अतः ऐसे परिवारों की आर्थिक एवं अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, यह समाज व राज्य शासन की नैतिक जिम्मेवारी होनी चाहिए।
6. सामाजिक संस्थाओं को चाहिए कि वह हर क्षेत्र में बाल कल्याण समिति बनाये और उनमें क्षेत्रीय अनुभवी एवं उत्साही कार्यकर्ताओं को स्थान दिया जाये। यह कार्यकर्ता उस क्षेत्र के बालकों की समस्याओं को समझें और उनके सफल समाधान का उपाय खोजकर उनके क्रियान्वयन में सहयोग करें।
बाल अपचार हमारे लिये अभिशाप है, इस अभिशाप का प्रयाश्चित करना हमारा धर्म है। इसके प्रायश्चित के लिए हमें भागीरथी प्रयास करना होगा, तभी समाज से हम बाल अपचार का उन्मूलन कर पायेंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. पॉल डब्ल्यू पतन, क्राइम जस्टिस एण्ड करप्सन एम.सी.ग्रा. हिलबुक कम्पनी, न्यूयार्क 1970, पेज-10
2. डूनाल्ड आर. टेफ्ट, क्रिमिनॉलॉजी, द मेकमिलन कम्पनी न्यूयार्क, 1956, पेज-8-9
3. सदरलैण्ड एडविन एच. प्रिंसपल्स ऑफ क्रिमिनॉलॉजी- द टाईम्स आफ इंडिया,
4. डोनाल्ड आर. क्रेसी प्रेस बाम्बे 1968, पेज- 16
5. शेल्डन ग्लूक एवं अरनेस्टलिंग जुबेनाइल डेलिक्वेंसी, कॉमनवेल्थ फंड, इलीनार ग्लूक न्यूयार्क 1950, चेप्टर 15
6. सेठना एम.जी. सोसायटी एण्ड द क्रिमिनल, लीडर्स प्रेस, बाम्बे 1952 पेज- 205
7. Ferri, E., Criminal Sociology, Trans, By J.I. Kelly and John Lisle, Little Brown Boston, 1917
8. Robin, Sol.: Crime & Juvenile Delinquency (1958), Page 46. Approach to Penal Probelems, 24, 2nd Ed.
9. Shulman, H.M. The Family and Juvenile Delinquency- Criminology A Book of Reading (1953), Page 453, Sage
10. Publication INC.

मुरिया जनजातीय समाज की वर्तमान जीवन प्रणाली के महत्वपूर्ण पक्षों में आये बदलावों का अध्ययन (बस्तर जिले के विशेष संदर्भ में)

● रूपिन्दर जीत कौर
●● किरण नुरुटी

सारांश- बस्तर अंचल की प्रचलित जनजातियों में से एक मुरिया जनजाति है, यह जनजाति बस्तर अंचल के अलग-अलग स्थानों में निवासरत है, प्रकृति पर निर्भर यह जनजाति अपने शुरुआती काल में विकास से अनभिज्ञ रही परंतु समयानुसार विभिन्न सभ्यताओं, धर्मों, मान्यताओं व विश्वासों के सम्पर्क व शासन द्वारा चलाई गई, योजनाओं के फलस्वरूप वर्तमान में जनजातीय जीवन प्रणाली के महत्वपूर्ण पक्ष जैसे-सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक पक्षों में कई बदलाव दृष्टिगोचर हो रहा है। बदलाव जीवन का आवश्यक अंग है, बिना परिवर्तन के विकास संभव नहीं व समय की मांग ही बदलाव है, परंतु सकारात्मक विकास ही हितकर प्रतीत होता है। जनजातीय समाज अपने सांस्कृतिक मूल्यों के कारण विश्व में अपना अलग स्थान स्थापित किये है। वर्तमान में उन सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन प्रतीत होने लगा है, जो जनजातीय पिछड़ाव की स्थिति को अंकित करता है।

मुख्य शब्द- जनजातीय जीवन, परिवर्तन, नवीन सभ्यता, सम्पर्क, आधुनिकीकरण, शहरीकरण, परसंस्कृति सम्पर्क

जनजातीय शब्द अपने में विशालता समेटे हुए है, जनजातीय शब्द की उत्पत्ति तथा अर्थ के विषय में अलग-अलग विचारधाराएं हैं, जनजाति शब्द उन लोगों के समूह के लिए सम्बोधित किया जाता है, जो शहरी क्षेत्रों से बहुत दूर घने जंगलो, पहाड़ों और पर्वतों में रहते हों व प्रकृति के माध्यम से अपनी समस्त आवश्यकताएं पूर्ण करते हों। जनजाति जिन्हे आदिवासी नाम से सम्बोधित किया जाता है, आदिवासी किसी भी क्षेत्र के मूल निवासियों को कहा जाता है, जिसकी उत्पत्ति उसी निश्चित स्थान से हुई है, जिस स्थान पर वे जीवन निर्वाह कर रहे हैं। इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया में जनजाति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है। जनजाति परिवारों का वह संकलन है, जिसका एक अपना सामान्य नाम होता है, जो सामान्य भाषा बोलते हैं तथा जो सामान्य प्रदेश में रहता है या जो रहने का दावा करता है।¹ वेरियर एल्विन ने जनजातियों के संबन्ध में कहा कि आदिवासी भारत वर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है, ये वे प्राचीन लोग हैं जिनके नैतिक आधार व दावे हजारों वर्ष पुराने हैं।²

जनजाति शब्द की उत्पत्ति तथा अर्थ के विषय में भिन्न-भिन्न विचारधाराएं हैं, सन् 1981 ई. की जनसंख्या रिपोर्ट में जनसंख्या आयुक्त डॉ. एन बेन्स ने जातियों को उनके परम्परागत व्यवसाय के आधार पर वर्गीकृत किया। कृषक एवं चरवाहा जातियों की श्रेणी के अन्तर्गत उन्होने “वन्यजातियों” के नाम से एक पृथक उप शीर्षक बनाया। सन् 1901 की

● शोधार्थी, समाजशास्त्र, बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर (छ.ग)

●● सहायक प्राध्यापक, गुन्डाधुर कॉलेज, कोंण्डगांव (छ.ग), शोध निर्देशक समाजशास्त्र बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर (छ.ग)

जनसंख्या रिपोर्ट में उन्हें प्रकृतिवादी कहा गया। सन् 1911 ई. में उन्हें जनजाति प्रकृतिवादी अथवा जनजातीय धर्म को मानने वाले लोग कहा गया। सन् 1921 ई. की जनसंख्या रिपोर्ट में उन्हें पहाड़ी एवं वन्य जनजातियों का नाम दिया गया। सन् 1931 ई. की जनसंख्या रिपोर्ट में उन्हें 'आदिम जनजाति' कहा गया। भारत सरकार अधिनियम सन् 1935 ई. में जनजातीय जनसंख्या को 'पिछड़ी' जनजातियाँ नाम दिया गया। सन् 1941 ई. की जनसंख्या रिपोर्ट में केवल जनजातियाँ कहा गया।³

इस प्रकार से जनजातियाँ प्रायः प्रकृति के समीप रहकर, प्रकृति के परिवेश अनुसार स्वयं को ढालने की अनोखी विशेषता रखती हैं, भारत जनजातियों में समृद्ध देश में शामिल हैं, इसी समृद्धि में बस्तर अंचल की मुरिया जनजाति भी सम्मिलित है। मुरिया जनजाति छ.ग. राज्य के कई क्षेत्रों में निवासरत है। यह बस्तर अंचल के आस-पास बहुतायत में है। मुरिया जनजाति के सम्बन्ध में लाला जगदलपुरी विस्तार से बताते हैं "मुरिया जनजाति बस्तर की आदिम जनजातियों में से एक है। शाब्दिक आधार पर देखा जाए तो मुरिया शब्द संस्कृत का एक शब्द है - मूल। "मूल" का शब्दार्थ होता है जड़, आरंभ और मुख्य प्रधान बस्तर के ग्रामीण क्षेत्र में यही "मूल" शब्द उच्चारण में "मूर" हो गया। "मूर" याने प्रारंभ हल्बी का एक वाक्यांश लीजिये- मूरे नाजुक (सिरे से नहीं) और यह रहा एक संपूर्ण वाक्य - आमी धान काटुक मुरियालू से अर्थात् हमने धान काटना शुरू कर दिया। "मूर" संज्ञा शब्द का विशेषण है- "मुरिया" शब्द। "मुरिया" माने मूल निवासी, बुनियादी या प्रधान।"⁴

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मुरिया जनजाति बस्तर अंचल की प्रधान या मूल जनजाति है। इस जनजाति का आरंभ बस्तर के घने जंगलों से हुआ है। इस जनजाति ने स्वयं को यहां के घने जंगलों के अनुसार ढालने की अनुपम कला जीवन के आरंभिक काल से ही प्राप्त की है, इस कारण से शुरूआती काल से वर्तमान तक यह जनजाति अपना अस्तित्व बनाये हुए है, जनजाति अपने शुरूआती काल में प्रकृति के काफी समीप रही है।

प्रकृतिमय समीपता के सानिध्य में धर्म व धार्मिक मान्यताओं व विश्वासों में प्रकृति के प्रति श्रद्धा व भय के भाव रहे हैं। जादु-टोना, भूत-प्रेत सम्बन्धित मान्यताएं व संस्कृति का केंद्र घोटुल व उसकी मान्यताओं का भी विशेष महत्व है, साथ ही गोदना प्रथा व जन्म से लेकर मृत्यु तक गीतों की प्रधानता व चित्रकला, काष्ठ कला के अनेक रूप जनजातीय मुरिया समाज में उपस्थित होकर इस सभ्यता को अनुपम रूप प्रदान करते हैं। इन्हीं विशेषताओं के साथ देव संस्कृति की पोषक मानी जाने वाली मुरिया संस्कृति विश्व में आकर्षण का केंद्र बनी हुई है।

अध्ययन का उद्देश्य- इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1 मुरिया जनजातीय समाज की वर्तमान धार्मिक स्थिति का अध्ययन करना ।

2 मुरिया जनजातीय समाज की वर्तमान आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना ।

अध्ययन पद्धति- प्रस्तावित अध्ययन के लिए बस्तर जिले के परपा व केशलुर व आस-पास के क्षेत्र को चुना गया है।

उत्तरदाताओं का चुनाव- अध्ययन हेतु 110 मुरिया परिवारों का चयन दैव निदर्शन पद्धति से किया गया है तथा अध्ययन द्वारा उनकी धार्मिक आर्थिक स्थिति का आंकलन किया गया है।

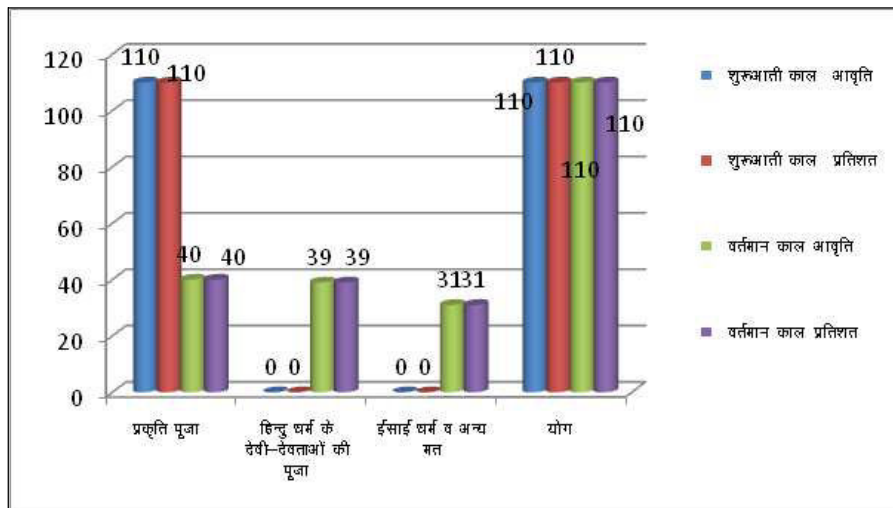
तथ्यों के सकलन हेतु प्रयुक्त उपकरण व प्रविधि- अध्ययन हेतु साक्षात्कार अनुसूची उपकरण व अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

वर्तमान जीवन प्रणाली में आया परिवर्तन- विकास व परिवर्तन आपस में सम्बन्धित है अर्थात् परिवर्तन की एक दिशा विकास की ओर भी अग्रसर करती है। बस्तर की मुरिया जनजातीय समाज शुरूआती काल से बड़े ही शालीन व सरल तरीके से अपनी अनोखी संस्कृति का निर्माण कर प्रकृति परिवेश के अनुसार स्वयं को ढालकर जीवन निर्वाह करता आया है। यह जनजाति प्रकृति व आपसी सहयोग के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सम्पूर्ण आधारों पर आत्मनिर्भर व सम्पन्न जनजाति रही है। प्रकृति की गोद में निवासरत इस जनजाति के सम्पर्क में कई सभ्यताएं आईं, मुगलों के काल में मुस्लिम संस्कृतियों के सम्पर्क में आए, तत्पश्चात् ब्रिटिश काल में ईसाई धर्म व मिशनरियों के सम्पर्क में आए व समय-समय पर विभिन्न संतों के प्रभाव में आकर स्वयं के प्रकृतियम धर्म से विमुख होते जनजातीय समाज वर्तमान में मिश्रित संस्कृति के रूप में हमारे समक्ष प्रतीत होते हैं। विकास की ओर अग्रसर होती संस्कृति में कई बदलाव अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर रही है। प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण सारणियों में दिखाया जा रहा है।

सारणी क्र. 01

आराध्य देवी देवताओं की पूजा

क्र.	धार्मिक आस्था का आधार	शुरूआती काल		वर्तमान काल	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	प्रकृति पूजा	110	110	40	40
2.	हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की पूजा	0	0	39	39
3.	ईसाई धर्म व अन्य मत	0	0	31	31
	योग	110	110	110	110



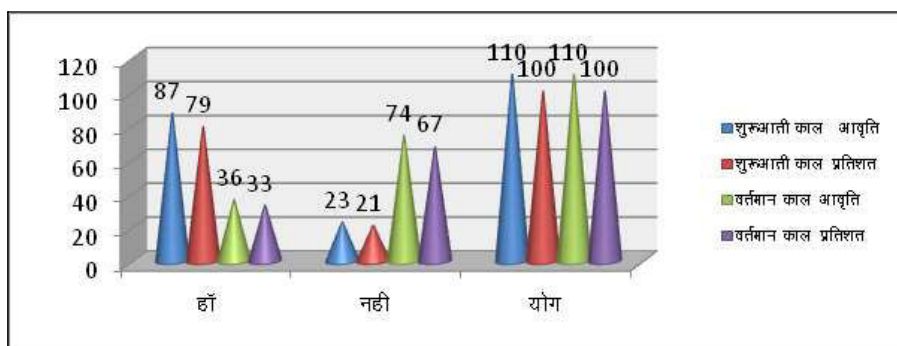
उपरोक्त सारणी एवं रेखा चित्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शुरूआती काल के सम्बन्ध में जनजातीय समाज का मानना है कि उनके पूर्वजों द्वारा 100 प्रतिशत प्रकृति की पूजा की जाती थी। वर्तमान समय के आंकड़ों के आधार पर प्रकृति पूजा 40 प्रतिशत, हिन्दू धर्म के देवी-देवता 39 प्रतिशत एवं 31 प्रतिशत ईसाई धर्म अपनाने वाली जनसंख्या का है। विजय शंकर उपाध्याय, विजय प्रकाश शर्मा के अनुसार ईसाईयों के सम्पर्क में आने वाली

जनजातियों के बहुत से सदस्य ईसाई बन गये और हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आने से अनेकों सदस्यों ने हिन्दू धर्म अपना लिया इससे यह देखा गया कि एक ही जनजाति हिन्दू अथवा ईसाई हो गये।⁴ अतः प्रकृति प्रेमी व सहृदयी आदिवासी जनजातीय समाज पेड़, पौधों व अपनी ही मान्यताओं से सम्बन्धित रहा जनजातीय सभ्यता ईसाई मिशनरियों के चरमोत्कर्ष प्रचार के कारण व हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आकर स्वयं के धर्म को हेय दृष्टि से देखने लगे, इसका प्रमुख कारण ईसाई धर्म प्रचारकों का मिथ्या प्रचार व शहरीकरण, नगरीकरण अशिक्षित भोले-भाले ग्रामीण जनजातीय समाज को भ्रमित कर स्वयं की संस्कृति से विमुख होती गई तथा वर्तमान पीढ़ी संस्कृति पिछड़ाव की कगार पर आ गई है।

सारणी क्र. 02

बीमारियों के उपचार में तन्त्र मंत्र झाड़-फूक के माध्यम से उपचार

क्रं.	झाड़ फूक व तन्त्र मंत्र के माध्यम से उपचार	शुरूआती काल		वर्तमान काल	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	87	79	36	33
2	नहीं	23	21	74	67
	योग	110	100	110	100

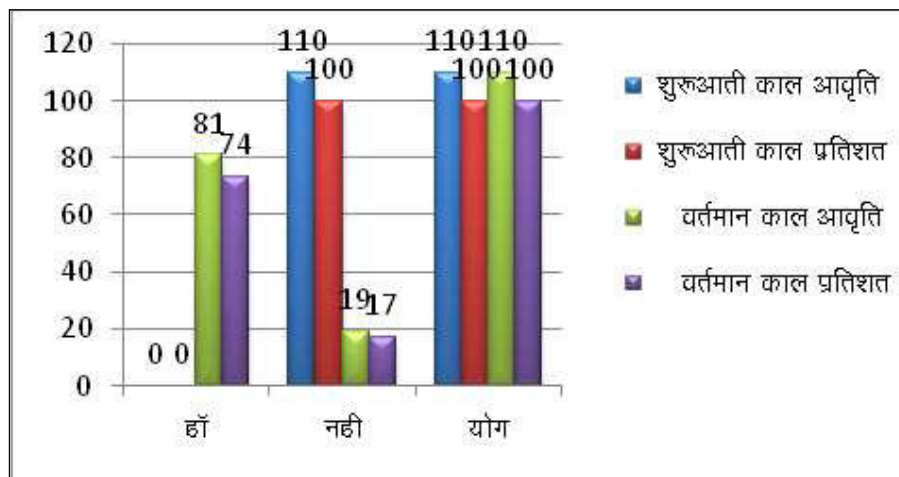


उपरोक्त सारणी क्र. 02 से ज्ञात होता है कि, मुरिया जनजातिय समाज के अपने प्रारम्भिक काल में बीमारियों के उपचार हेतु सर्वप्रथम जादू-टोना व झाड़-फूक पर विश्वास किया जाता रहा जिसका सर्वाधिक प्रतिशत 79 है, तथा उपचार तन्त्र-मंत्र के माध्यम से नहीं होता था ऐसा मानने वाले 21 प्रतिशत है उनका मानना है कि औषधियों का प्रयोग भी किया जाता था। वर्तमान काल में शिक्षा के विकास के कारण स्वरूप वर्तमान पीढ़ी शिक्षित है, इस कारण जादू टोना पर विश्वास ना करने वालों का प्रतिशत सर्वाधिक 67 है। ग्रामीण अंचल होने के कारण कुछ परिवार आज भी इसे अपनाते हैं, जिसका प्रतिशत 33 है, परंतु इसका प्रतिशत कम है।

धार्मिक पिछड़ाव की स्थिति के साथ-साथ आर्थिक पिछड़ाव की स्थिति में भी जनजातीय समाज को देखा जा सकता है।

सारणी क्र. 03
बेरोजगारी व भूखमरी की समस्या

क्र.	बेजगारी व भूखमरी की समस्याँ	शुरूआती काल		वर्तमान काल	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हो	0	0	81	74
2	नही	110	100	19	17
	योग	110	100	110	100

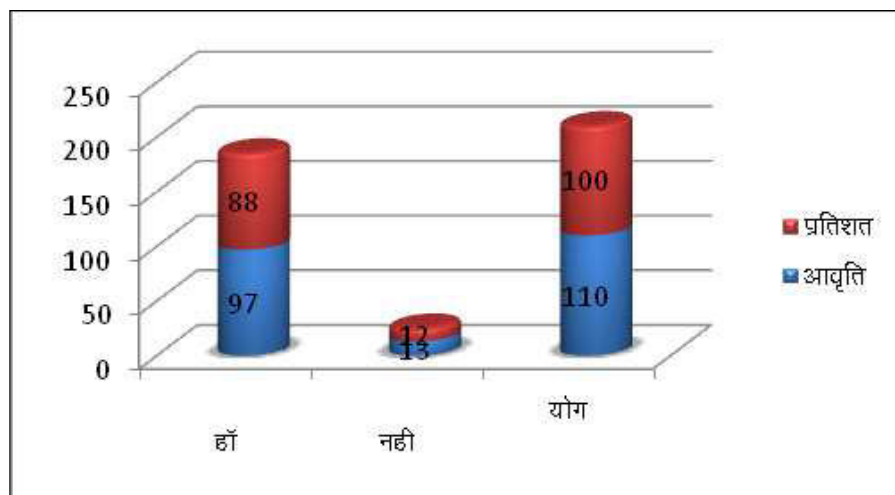


उपरोक्त सारणी एवं रेखाचित्र के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि शुरूआती काल में बेरोजगारी, भूखमरी जैसे कोई समस्या नहीं थी, आय प्राप्त व जीवन निर्वाह के साधन प्रकृति में आसानी से उपलब्ध थे, जिस कारण शुरूआती काल में बेरोजगारी व भूखमरी जैसी समस्या 0 प्रतिशत थी, शत प्रतिशत उत्तरदाता इस मत पर सहमत है, परंतु वर्तमान समय में शिकार पर प्रतिबंध है व जंगलों की कटाई व भूमि पर शासन का नियंत्रण व बाहर से आये लोगों द्वारा भूमि हथियाने सम्बन्धित समस्याएं हैं। जिस कारण वर्तमान समय में 81 प्रतिशत बेरोजगारी व भूखमरी की समस्या ग्रसित है 19 प्रतिशत जनसंख्या मानती है कि उनके गांव क्षेत्र में यह समस्या नहीं है।

विजय शंकर उपाध्याय, विजय प्रकाश शर्मा (2009) “नगरों के सम्पर्क में आने के पूर्व कम से कम जनजातियों की आर्थिक स्थिति बुरी नहीं थी, वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वन सम्पत्ति लघु उद्योग द्वारा कर लेते थे, किंतु जब से इन लोगों ने नगरों से सम्पर्क स्थापित किया तब से जनजातियों के वंशानुगत गृह उद्योग का विनाश हो गया।”⁵

सारणी क्र. 03
कृषि की दयनीय स्थिति

क्रं.	क्या वर्तमान समय में कृषि से सही आय नहीं प्राप्त होती व आर्थिक स्थिति पिछड़ती जा रही है, व आय हेतु अन्य साधन अपनाए जा रहे हैं।	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	97	88
2	नहीं	13	12
	योग	110	100



उपरोक्त सारणी क्रमांक 03 के आंकड़ों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में कृषि की स्थिति दयनीय हो गई है इसके सम्बन्ध में 88 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति प्रगट की है। कृषि सम्बन्धित अच्छी स्थिति के सम्बन्ध में 12 प्रतिशत उत्तरदाता परिवारों ने सहमति प्रगट की है। वर्तमान समय में शिक्षित युवा वर्ग कृषि कार्यों के प्रगति रूचि नालेने के कारण कृषि की स्थिति वर्तमान में पिछड़ती जा रही है।

निष्कर्ष- परिवर्तन जीवन का अनिवार्य अंग है बिना परिवर्तन एक सफल जीवन की कामना नहीं कि जा सकती परंतु जनजातीय समाज जो कि अपनी संस्कृति विभिन्नता के लिए विश्व में अलग स्थान प्राप्त किये है। उस समाज में वर्तमान समयानुसार परिवर्तन को स्वीकार करते हुए, कुछ नकारात्मक पक्ष भी दृष्टिगोचर हुए हैं, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कलात्मक पक्ष शामिल है, इन परिवर्तनों में धर्म प्रमुख रहा है, धर्म की स्वतन्त्रता हमारे भारतीय समाज द्वारा सभी को प्रदान की गई है, परंतु वर्तमान में कुछ कारणों के तहत भोले-भाले जनजातियों को धर्म के नाम पर चमत्कार प्रदर्शन के माध्यम से भ्रमित किया जा रहा है, वही दूसरी ओर शुरूआती काल की आर्थिक आत्मनिर्भरता वर्तमान में बेरोजगारी का विकराल रूप धारण करने को विवश है। इसी प्रकार संस्कृति के अन्य पक्षों में जनजातीय समाज को अपनी स्वयं की संस्कृति से पिछड़ाव की ओर अग्रसर किया जा रहा है, तथा जिन जीवन मूल्यों से जनजातीय समाज अपने अस्तित्व विश्व में स्थापित है, उन जीवन मूल्यों से आधुनिक मूल्यों के टकराव की स्थिति में वर्तमान पीढ़ी विकास की दौड़ में शामिल होकर

संस्कृति के पक्षों से पिछड़ती प्रतीत हो रही है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता है, उन व्यवस्थाओं की जो विकास को आत्मसात कर संस्कृति की आत्मा की रक्षा कर वर्तमान पीढ़ी को संस्कृति से विमुख ना होने दे। इसी मत की सहमति प्रगट करते शिव कुमार पाण्डेय के अनुसार “आदिवासी समाज अपने पुराने दिन की बांट देख रहा है, उसके दिन बहुरंगे इसी आशा में कुछ ऐसा करने के प्रयास में है कि, उसका सामाजिक संगठन फिर से बने और एक बार गाँव में घोटुल में फिर मांदर की थाप हो लोक गीत की स्वर लहरी गुंजायमान हो।” इस प्रकार से जरूरत है कुछ प्रयासों की जिसके माध्यम से मुरिया जनजातीय समाज संस्कृति का विस्तार भावी पीढ़ी को हस्तांतरित कर सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. Imperial Guzzetiar, pp.313-321
2. वेरियर ऐल्विन (1943): “द अबोरिजिनलस्” ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई पृ. -7
3. Census of India (1961), Vol.1 Part V.B (II) PP. 2-3
4. जगदलपूरी लाला (2016): “बस्तर इतिहास व संस्कृति” मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृ.92.93
5. उपाध्याय विजय शंकर, शर्मा विजय प्रकाश (2009) : “भारत की जनजातीय संस्कृति” मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ.159,60
6. उपाध्याय विजय शंकर, शर्मा विजय प्रकाश (2009) : “भारत की जनजातीय संस्कृति” मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ.165
7. पाण्डेय शिव कुमार (2019): “बस्तर की मुरिया जनजाति” विशाल कौशिक प्रिंटर्स, दिल्ली पृ. 167

महादलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति

● पुष्पा

सारांश- भारतीय समाज में महादलितों को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है जैसे भग्न पुरुष, बाह्य जाति, पंचम, शूद्र, चांडाल, अछूत, अस्पृश्य आदि। महात्मा गाँधी ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया। साइमन कमीशन तथा सरकारी विज्ञप्ति द्वारा 1935 में 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग किया गया। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने भी 1950 ई० में अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया। बिहार में कुल 22 अनुसूचित जातियों को अधिसूचित किया गया। इन सभी जातियों को महादलित की श्रेणी में रखा गया है। ये जातियाँ अन्य जातियों की तुलना में निम्न स्तर पर आती हैं। इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति भी निम्न होती है।

मुख्य शब्द- महादलित जातियाँ, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति

महादलित की अवधारणा- भारतीय समाज में 'कमजोर वर्ग' समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक विशेष पहलु है, कोई भी समाज तब तक स्वस्थ व सबल नहीं हो सकता है जब तक कि समाज का हर अंग व्यवस्थित जीवन न जीये। अनुसूचित जातियाँ (दलित), अनुसूचित जनजातियाँ, स्त्रियाँ, अल्पसंख्यक व पिछड़े वर्ग आदि कमजोर वर्ग माने जाते हैं। वर्षों से कुछ समाजशास्त्री इनकी समस्याओं के मूल्यांकन एवं उनकी परिस्थिति में हो रहे परिवर्तनों के अध्ययन में प्रयत्नशील रहे हैं। वैधानिक दृष्टि से उनकी स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए चाहे कितने भी कदम उठाये गए हों, व्यावहारिक दृष्टि से उनके साथ भेदभावपूर्ण रवैया जारी है। उनकी समस्याओं के प्रति गंभीरता नहीं दर्शायी जाती।

अनुसूचित जाति भारतीय सामाजिक स्तरीकरण में सबसे नीचे का स्तर है। इसके लिए विभिन्न शब्दों का उपयोग होता है। परम्परागत भारत में इन्हें 'भग्न पुरुष', 'बाह्य जाति', 'पंचम', अछूत/अस्पृश्य, उपेक्षित माना जाता रहा है। अंग्रेजों ने इन्हें दलित वर्ग (Depressed class) कहा। 1931 की जनगणना में उन्हें बाहरी जाति (Exterior caste) कहा गया। महात्मा गाँधी ने उन्हें 'हरिजन' नाम दिया। साइमन कमीशन तथा सरकारी विज्ञप्ति द्वारा 1935 में 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग किया गया। भारत सरकार ने भी 1950 में अनुसूचित जाति नाम का ही प्रयोग किया। अनुसूचित जातियों में अन्य जातियों को सम्मिलित करने की घोषणा राष्ट्रपति ही कर सकता है।

बिहार राज्य में अनुसूचित जाति के अन्तर्गत 23 जातियाँ अधिसूचित थी। कार्मिक और प्रशासनिक सुधार मंत्रालय भारत सरकार की एक अधिसूचना में 'भूमिज' नामक एक दलित उपजाति को विलोपित कर दिया गया है। इससे राज्य में अनुसूचित जाति के अंतर्गत 22 जातियाँ-उपजातियाँ रह गई हैं। 1. बांतर, 2. बौरी, 3. भोगता, 4. भुईयाँ, 5. चौपाल, 6. दबगर, 7. डोम-डांगर, 8. घाँसी, 9. हलाल-खोर, 10. भंगी-मेहतर, 11. कंजर, 12.

● समाजशास्त्र, पटना विश्वविद्यालय, पटना

कुरियार (करोरी), 13. लालबेगी, 14. मुसहर, 15. नट, 16. पान-स्वासी, 17. राजवार, 18. तुरी, 19. धोबी, 20. पासी, 21. चमार, 22. दुसाध।

बिहार की दलित जातियों की प्रस्थिति, गतिशीलता एवं भूमिका के सम्बन्ध में सच्चिदानन्द सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'द हरिजन इलिट' में लिखा है कि जब भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उस समय दलितों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक स्थिति निम्न स्तर पर थी। भारत के संविधान में दलितों के उत्थान के लिए कई प्रावधान किए गए। उन्हें राजनीति में सहभागिता पाने के लिए लोक सभा, सभी राज्यों के विधान सभाओं में आरक्षण का प्रावधान किया गया। शैक्षणिक उत्थान के लिए विद्यालय एवं महाविद्यालयों में नामांकन में आरक्षण के साथ-साथ उन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की गई। उन्हें सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त दलितों के उत्थान के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएँ आरम्भ की गईं। इन सभी सुविधाओं का लाभ उठाकर दलितों में एक नए वर्ग का उदय हुआ जिन्हें "हरिजन इलिट" का नाम दिया गया जो अपनी जातियों के लोगों से अपने को उच्च मानते हैं तथा इनके साथ सामाजिक सहवास करना पसन्द नहीं करते हैं। फिर भी बिहार राज्य में बहुत सारी दलित उपजातियाँ मुख्यतः शिक्षा के अभाव में आरक्षण का लाभ नहीं उठा पाती हैं। शिक्षण संस्थाओं में इस समुदाय के बच्चे पर्याप्त संख्या में नामांकित नहीं हो पाते और इसमें एक बड़ी संख्या उन बच्चों की भी है जो नामांकन होने के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। परिणाम स्वरूप इन जातियों में शिक्षा का स्तर लगभग नहीं के बराबर है।

इन दलित जातियों के विकास के लिए 21 सितम्बर-2007 को महादलित आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने एक बड़ी संख्या में विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं तथा जन-प्रतिनिधियों से सम्पर्क किया। आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ढेर सारे संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद मुसहर, भुईयाँ, मेहतर, डोम, नट आदि दलित जातियाँ अभी तक समग्र विकास की धारा से मिलीं दूर हैं। इनमें सामाजिक असमानता और आर्थिक विपन्नता बाधक बन रही है। इसलिए इन दलित जातियों को एक अलग श्रेणी में लाकर इन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। इसी उद्देश्य से इन दलित जातियों को एक अलग श्रेणी 'महादलित' में रखा गया।

राज्य महादलित आयोग ने अपने प्रथम प्रतिवेदन में 18 जातियों को महादलित के रूप में सम्मिलित करने की अनुशंसा की। बाद में सन् 2008 में महादलित आयोग ने दो और जाति जैसे-पासी और धोबी को महादलित के रूप में चयनित करने की अनुशंसा की गई। वर्ष 2009 में चमार (रविदास) के अभ्यावेदन पर जाँच करने के बाद आयोग के द्वारा उनके शैक्षणिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को देखते हुए इन्हें भी महादलित के श्रेणी में रखने के लिए अनुशंसा की गई। वर्ष 2015 में पूर्व मुख्यमंत्री जीतनराम मांझी ने 'दुसाध' जाति को भी महादलित में शामिल करने की घोषणा किये थे, लेकिन इस घोषणा का पालन नहीं हुआ। बाद के वर्ष 2018 में बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने दुसाध जाति को भी महादलित की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया। वर्तमान में बिहार राज्य में 22 महादलित जातियाँ एवं उप-जातियाँ हैं।

सारणी संख्या-01
बिहार में अनुसूचित जाति (दलित) की संख्या

वर्ष	कुल जनसंख्या	अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या	कुल जनसंख्या में प्रतिशत
1931	31,347,108	4,482,636	14.3
1941	35,170,840	4,449,111	12.65
1951	38,782,271	4,905,957	12.67
1961	46,447,457	6,536,875	14.07
1971	56,353,369	7,951,460	14.11
1981	69,914,734	10,133,627	14.51
1991	86,338,853	13,296,183	15.5
2001	82,878,792	13,048,608	15.7
2011	103,804,637	16,567,325	17.68

स्रोत : बिहार जनगणना भारत सरकार

बिहार के महादलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रस्थिति- समाज के अत्यन्त निचले पायदान पर रहने वाली यह जाति अति उपेक्षित पीड़ित, वंचित और घृणित कार्य करने वाली जातियाँ हैं। इनका उल्लेख ऋग्वेद में भी हुआ है। महादलित की श्रेणी में आने वाली इन 22 जातियों की सामाजिक स्थिति लगभग एक जैसी ही है। इनके रहन-सहन, खान-पान में किसी तरह का कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। इन सभी जातियों की सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन अन्य स्वर्ण जातियों की अपेक्षा अत्यन्त ही कष्टदायी, पीड़ित एवं सोचनीय है। महादलित की श्रेणी में आने वाली ये जातियाँ बिहार के लगभग सभी जिलों में पाये जाते हैं। परन्तु इनकी जनसंख्या एवं साक्षरता का अनुपात अलग-अलग होने के साथ-साथ अत्यन्त निम्न है। ये 22 जातियाँ बिहार के विभिन्न जिलों में ग्रामीण तथा कुछ शहरी क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये लोग कुछ पक्का अन्यथा अधिकतर कच्चे मकान में रहते हैं। कुछ जातियों के पास अपना भूमि होता है वरन् ये लोग नदियों के किनारे, सड़क के किनारे, मलिन बस्तियों में झुग्गी-झोपड़ी गाड़ कर अपना जीवन व्यतित करते हैं।

क्षेत्रों के विभिन्नता के चलते ये लोग जिस क्षेत्र में रहते हैं, उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा बोलते हैं जैसे- मैथिली, हिन्दी, भोजपुरी, मगही, सादरी, देवनागरी इत्यादि। खान-पान में ये लोग अधिकतर मांसाहारी होते हैं, मांस, मूस, चूहा, सुअर, स्वान चावल, बाजरा इत्यादि उपयोग में लाते हैं। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के वजह से ये लोग दैनिक मजदूर का काम जैसे सुलभ शौचालय में सफाई का कार्य, शादी-विवाह में ढोल बजाने का कार्य, पंक्षी पकड़ना व बेचने का कार्य करते हैं।

आजादी के 70 साल बाद भी इन जातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ है। महादलितों में स्वर्ण जातियों के साथ-साथ, अन्य अनुसूचित जातियाँ भी छुआ-छुत का व्यवहार करती हैं और इनसे सम्बन्ध नहीं रखते। इन जातियों की महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति और भी दयनीय है। शिक्षा के अभाव में ये जातियाँ अपने वंशागत परम्परागत ढाँचे को बनाये रखना ही अपना जीवन समझते हैं।

सारणी - 02
विद्यालय जाने का प्रतिशत

धोबी	पासी	दुसाध	चमार	भुईयाँ	मुसहर
45.6	39.4	34.1	33	15.1	9.8

स्रोत : महादलित आयोग 2009-10 तृतीय प्रतिवेदन

सारणी - 03
आर्थिक वर्ग में प्रमुख जातियों का प्रतिशत

	चमार	दुसाध	मुसहर	पासी	धोबी	भुईयों
कृषक	7.9	10.3	2.7	12.3	14.8	6.6
कृषि मजदूर	80.2	75.9	92.5	45.5	48.1	86.8
घरेलू उद्योग	2.1	1.6	0.8	12.2	9.6	1.2
अन्य	9.8	12.2	4.0	29.0	27.5	5.6

स्त्रोत : महादलित आयोग 2009-10 तृतीय प्रतिवेदन

सारणी - 04
साक्षरता एवं शैक्षणिक स्तर

साक्षरता दर	सभी अनुसूचित जातियाँ	धोबी	पासी	दुसाध	चमार	भुईयों	मुसहर
पुरुष	28.5	43.9	40.6	33.0	32.1	13.3	9
महिला	15.6	27.9	25.3	18.5	16.8	16.8	3.9

स्त्रोत : महादलित आयोग 2009-2010 - तृतीय प्रतिवेदन

निष्कर्ष- महादलित जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति निम्न है। शताब्दियों के शोषण, अन्याय और मुख्य रूप से सामाजिक, सांस्कृतिक जीवनधारा से पृथक्ता के कारण इस समुदाय में दासता की मनोवृत्ति का विकास हुआ है। इस समुदाय पर पड़ने वाला सामाजिक-आर्थिक संरचना का दबाव इतना अधिक प्रभावशाली रहा है कि समुदाय के सदस्यों ने अपनी निम्न स्थिति को स्वीकार करना अधिक उचित माना है।

सुझाव -

- महादलित जातियों के शैक्षणिक स्तर में सुधार हेतु विशेष प्रयास किये जाए।
- पुरुष मानसिकता में परिवर्तन हेतु गंभीर प्रयास किये जाये।
- ग्रामीण महिलाओं में आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की भावना जागृत किये जाये।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

- प्रोफेसर गोपीरमण प्रसाद सिंह (2014), 'भारतीय एवं संस्थाएँ', अग्रवाल, पब्लिकेशन
- महादलित आयोग (2009-2010) तृतीय प्रतिवेदन, तीसरी मंजिल, इंदिरा विकास भवन बिहार, पटना
- डा. सच्चिदानन्द सिन्हा (1977), 'द हरजिन इलिट', थामसन प्रेस, इण्डिया
- एन.के. दत्त, 'ओरिजन एवं ग्रोथ ऑफ कास्ट सिस्टम', पृष्ठ- 20
- हाजरा, 'स्टडीज इन दि पुराणिक ऑन हिन्दु राईट्स एंड कस्टम्स', पृष्ठ-208-16
- एम.एन. श्रीनिवास (1992), 'आधुनिक भारत में जातिवाद', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

दैशिक चिंतन में ही है भारत की सभी समस्याओं का हल: पंडित दीनदयाल उपाध्याय

• प्रवेश कुमार

सारांश : भारत की महान चिंतन परम्परा को विदेशी चिंतन के द्वारा जबरदस्ती ढक दिया गया या यूँ कहे की भारत के चिंतन को दकियानुशी मान उसके स्थान पर पश्चिमी चिंतन को प्रसारित और प्रचारित किया गया। भारत के महान चिंतन परम्परा को कैसे विदेशियों के द्वारा मारा दिया गया है, इसी सबको वे भारत की अवनिति का कारण भी मानते थे। भारत में सभी समस्याओं का समाधान उसी के पास है, किसी और के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारी संस्कृति और दर्शन दुनिया को दिशा देते रहे हैं, आज हम बाहरी विचारों और संस्कृति को ज्यादा सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उपयुक्त लेख में इन्हीं प्रश्नों पर बात करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- सम्यक् दर्शन चिंतन परम्परा

भारत का दर्शन सम्यक् दर्शन को परिलक्षित करता है उसी को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपने चिंतन के केंद्र में रखा इसी को आधार बना अपने विचारों को व्यक्त किया। भारत की वर्षों की गुलामी ने यहाँ के जन मानस पर विदेशी शिक्षा और विचारों का इतना ज्यादा प्रभाव कर छोड़ा था जिसको भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी मिटा पाना बेहद मुश्किल था। भारत की महान चिंतन परम्परा को विदेशी चिंतन के द्वारा जबरदस्ती ढक दिया गया या यूँ कहे की भारत के चिंतन को दकियानुशी मान उसके स्थान पर पश्चिमी चिंतन को प्रसारित और प्रचारित किया गया। भारत में अंग्रेजी प्रशासक लार्ड मैकाले आया जिसका शिक्षा से कोई लेना नहीं था, पर भारत में पश्चिमी चिंतन की परम्परा का अग्रदूत तो मैकाले ही था। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने भारत के मूल चिंतन को निकृष्ट (निम्न दर्जे) बता भारतीय मानस से इसे ओझल कर दिया, हम देखे तो भारत में पुनर्जागरण की बात की जाती है, भारत कभी सोया हो तो ना उसका जागरण होगा, परंतु विदेशी चिंतन के द्वारा ये ही बताया गया की भारत में अंग्रेजों के आने से पूर्व तो भारत में कुछ था ही नहीं। यहां व्याप्त जातिवाद ने भारत की समाज व्यवस्था को छिन-भिन्न कर दिया था, भारत तो कभी राष्ट्र था ही नहीं, अंग्रेजों के भारत में आने के बाद भारत के लोग सभ्य बने। अंग्रेजी प्रशासन ने जैसा सोच था भारत में परिणाम भी उसी प्रकार का निकला उनकी शिक्षा पद्धति अपने कार्य में सफल रही, इसी का परिणाम है आज भी देश में किसी से पूछा जाए लोकतंत्र कहा का विचार है तो सभी कहने लगते हैं की ये पश्चिमी विचार है परंतु जब पश्चिम अपने अंधकार युग में चल रहा था वही भारत में वैदिक काल में ही लोकतंत्र का बीज रोपण हो गया था। ऋग्वेद, अथर्ववेद इन में 'समिति' शब्द का प्रयोग आता है, जिसका अर्थ है सबका एक जगह इकट्ठा होना या एकत्र होना है, ये समिति ही राजा का चुनाव भी करती थी, ऐसे प्रमाण मिलते हैं (जायसवाल)। इसी

• सहायक प्रोफेसर, तुलनात्मक राजनीति और राजनीतिक सिद्धांत का केंद्र, स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रकार से दक्षिण के सभा, समिति, गणराज्य लोकतंत्र के बेमिसाल प्रमाण हैं जो भारत में हजारों वर्षों की परम्परा हैं। दीनदयाल जी के मन में इसी सबको को लेकर दुःख था और भारतीय जनमानस का अपने चित (संस्कृति) के प्रति उदासीन होना उनको सदैव खटकता था। अपने एकात्म मानववाद के सिद्धांत में वो अपनी चित्त को जानने की बात ही कर रहे हैं। दीनदयाल व्यक्ति को एक शरीर ना मानकर मन, बुद्धि और आत्मा भी हैं यदि इन चारों में से किसी एक की भी उपेक्षा की जाए तो व्यक्ति का सुख विकलांग हो जाएगा। भारत के महान चिंतन परम्परा को कैसे विदेशियों के द्वारा मार दिया गया है, इसी सबको वे भारत की अवनिति का कारण भी मानते थे। भारत में सभी समस्याओं का समाधान उसी के पास है किसी और के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारे संस्कृति और दर्शन दुनिया को दिशा देता रहा है आज हम बाहरी विचारों और संस्कृति को ज्यादा सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उपयुक्त लेख में इन्हीं प्रश्नों पर बात करने का प्रयास किया गया है।

भारत क्या है?

भारत वह भूमि है जहाँ कहा गया की सभी मानव एक परमब्रह्म की संताने हैं, सभी समान रूप से आगे बढ़े सभी समान हैं तो समान रूप से परस्पर राष्ट्र हित का चिंतन मनन करे ऋग्वेद में एक श्लोक आता है

समानी व आकुति समानाः हिर्यनि वः

समानमस्तु वो भे मनोयथाः व सुहासित

(अर्थ - है मनुष्य तुम्हारे संकल्प समान हो, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हो, तुम्हारे मन समान हो जिससे तुम परस्पर मिलकर एक हो कर रहो।)

इसी प्रकार का ज्ञान और विचार भारत के वेदों और उपनिषदों में प्रायः मिलता है परंतु समाज में कितना द्वेष है ऊँच- नीच का भाव है पंडित जी का संघर्ष इन्हीं सब से था। हम भारत की बात कर रहे हैं, उसके दर्शन की बात कर रहे हैं तो पहले भारत है क्या इसको जानना जरूरी है, भारत की संकल्पना हमारे ऋषियों ने की और बताया की

“उत्तरम यद् समुद्रस्य हिमाद्री चैव दक्षिणम्।

वर्षम तद् भारतम् नाम भारती यत्र संतति ।”

हमारा यह हमारा राष्ट्र कोई जमीन का टुकड़ा नहीं है ये जीता-जागता विराट जीवन है। दीनदयाल जी कहते हैं “हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारत माता है, केवल भारत ही नहीं, माता शब्द अगर इसमें से निकल दो तो भारत केवल एक जमीन के टुकड़े के अलावा और कुछ नहीं है।” पंडित दीनदयाल जी के चिंतन और उनके भारत और दुनिया को दिए अपने ज्ञान को वर्षों से छिपाया गया परंतु पिछले कुछ वर्षों में बौद्धिक जगत को दीनदयाल के चिंतन ने ना की प्रभावित किया बल्कि उनके सामने ये प्रश्न भी खड़ा किया की राजनीतिक अस्पृश्यता (Untouchability) के कारण हमने कितने महान चिंतक के विचारों को भारत के बौद्धिक दायरे से अलग-थलग रखा। ये सच है की दीनदयाल जी का चिंतन देसज चिंतन था, जिसे आजादी के बाद की बनी सरकारों के हुक्मरानों ने सिर्फ इस लिए अपने से दूर रखा किया की पंडित जी उनके दल उनके विचार से सहमत नहीं थे, राजनीतिक अस्पृश्यता का जीता जागता उदाहरण इसे कहा जा सकता है। भारत की परम्परा इसके बिल्कुल विपरीत सभी के विचार को सुनने और फिर उसके समन्वय करने के साथ जुड़ी है इसीलिए यहाँ पर एक ही परिवार में कोई भगवान को मानता है कोई उसके अस्तित्व को नकार देता है, परंतु दोनों एक ही माँ के पुत्र हैं और एक साथ रहते हैं।

बाबा साहब अम्बेडकर ने भी अपने जीवन में किसी प्रकार की राजनीतिक अस्पृश्यता को नकार दिया था, पंडित जी भी कहते हैं कि लोकतंत्र में सभी को एक दूसरे के विचार को सुनना और सम्मान करना चाहिए। इसीलिए सभी दलों से संवाद हो इसका सदैव समर्थन किया परंतु आजादी के बाद बनी सरकार ने विदेशी जमीन से आयातित विचार को अपने देश के संरचना में फिट करने की कोशिश की जिसका परिणाम हम आज भी भोग रहे हैं। आजादी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू समाजवाद से अधिक प्रभावित थे, जिसका परिणाम हुआ सरकार के काम का दायरा बढ़ा और जो काम उसके लिए प्राथमिक होने चाहिए थे, वो कुछ धीमी गति से चले। इस पर दीनदयाल जी का मानना था कि समाजवादी और पूँजीवाद प्रतिमान उन देश को लिये ठीक हो सकते हैं कोई भी प्रतिमान उस देश की काल और परिस्थिति के अनुसार होना चाहिए न की कही का कही फिट कर दिया जाए। दीनदयाल कहते हैं “समाजवाद और साम्यवाद को कागजी और आव्यवाहारिक सिद्धांत के रूप में देखते थे भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह विचार न तो भारतीयता के अनुरूप है और ना ही व्यावहारिक ही है। भारत के दर्शन को चलने के लिए भारतीय दर्शन ही कारगर वैचारिक उपकरण हो सकता है चाहे राजनीति का प्रश्न हो या अर्थव्यवस्था का प्रश्न हो अथवा समाज की विविध जरूरतों का प्रश्न हो, उन्होंने मानव मात्र के साथ जुड़े लगभग प्रत्येक प्रश्न की समाधानयुक्त विवेचना अपने वैचारिक लेखों में की है। भारतीय अर्थनीति कैसी हो इसका स्वरूप क्या है, इन सारे विषयों को पंडित दीनदयाल जी ने भारतीय अर्थ नीति विकास की दिशा में रखा है। शासन का उद्देश्य अंत्योदय की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए।

एकात्मक मानववाद (Integral humanism) उद्देश्य “स्वदेशी सामाजिक-आर्थिक माडल” जिसमें विकास के केंद्र में मानव है। समाजवाद और पूँजीवाद दोनों ही केंद्रवाद को बढ़ाते हैं, अंतर सिर्फ इतना होता है की समाजवाद में जहाँ सब पर नियंत्रण सरकार का होता है, वहीं पूँजीवाद में ये नियंत्रण कुछ पूँजीपति लोगों के पास होता है। भारत में तो हमेशा से लोकतंत्रीय व्यवस्था रही है और विकेंद्रीकरण की व्यवस्था से देश चलता रहा है, गाँव विकास और लोकतंत्र की सबसे छोटी और महत्वपूर्ण इकाई रही है। भारत में लोकतंत्र पश्चिम की अवधारणा नहीं है बल्कि ये अपना देसज है जो प्राचीन समय से चला आ रहा है। पंडित जी कहते हैं, लोकतंत्र की अवधारणा पश्चिम की नहीं बल्कि ये भारत के द्वारा दुनिया को दिया गया है। भारत की राज्य अवधारणा प्राचीनतम लोकतंत्रवादी है। वे कहते हैं “वैदिक सभा और समिति का गठन जनतंत्रीय आधार पर ही होता था तथा मध्यकालीन काल खंड में अनेक गणराज्य पूर्णतः जनतंत्रीय थे। राजतंत्रीय व्यवस्था में भी हमने राजा को मर्यादाओं में जकड़कर प्रजानुरागी ही नहीं, प्रजा अनुगामी भी माना है। कोटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा के कार्यों के बारे में विस्तार से बात की है, वही महाभारत का शांति पर्व भीष्म के द्वारा राजधर्म से सम्बंधित उपदेश राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हैं, इसलिए हमारे यह राजा प्रतीकात्मक है जिसका कार्य जनता के हित में कार्य करना है। राजा निरंकुश न हो पाए इसके लिए हमने मंत्री परिषद और सभा की जैसी संस्थाओं का सृजन किया। इन मंत्रियों में भी सभी वर्गों को हिस्सेदारी देना भारत की पुरातन परम्परा का हिस्सा था। मंत्रियों में से जिनमे चार ब्राह्मण, आठ क्षत्रिय, इक्कीस वैश्य और तीन शूद्र तथा एक सूत को सम्मिलित किया जाता था (मुखर्जी)। जिन राजाओं ने प्रजा की भलाई नहीं की उनके विरुद्ध जनता के स्वर को भी इतिहास में सुना है।”

लोकतंत्र वाद-विवाद से चलने वाला राज्य होता है। इस वाद- विवाद का स्थान हमारे यहां प्राचीन काल से ही विद्यमान है। हमारे यह एक उक्ति है “वादे वादे जायते तत्वबोधाः” दीनदयाल जी इसको भारत की लोकतंत्र में कितनी आस्था है, इसको बताते हैं साथ ही साथ पश्चिमी विचार में जहाँ बोलने की आजादी की बात की गई जिसमें वो waltaire की उक्ति जिसमें वो कहता है ‘मैं तुम्हारी बात सत्य नहीं मानता, किंतु अपनी बात कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं पूरी शक्ति से लड़ूँगा’ का सहारा लेते हुए कहते हैं वहाँ के चिंतन में व्यक्ति के विचार को ही सुना क्योंकि ये उसका अधिकार है, हमारे चिंतन में हम उसको सुन ही नहीं रहे तत्वबोध तक पहचानने का प्रयास भी कर रहे हैं। लोकतंत्र में मताधिकार, विधायिका, संविधानवादी कार्यपालिका और न्याय पालिका आदि का सृजन किया, क्या यही मात्र लोकतंत्र है या इसके अतिरिक्त भी कुछ है।

लोकतंत्र की भारतीय अवधारणा- दीनदयाल जी ने लोकतंत्र की भारतीय अवधारणा को दुनिया के आगे रखने का कार्य किया। लोकतंत्र की असली आत्मा उसके स्वरूप में नहीं, वरन् जनता की उम्मीदों को सही रूप से प्रतिबिम्बित करने की भावना में है। जनतंत्र किसी बाहरी ढाँचे पर निर्भर नहीं रहता। बालिग मताधिकार तथा निर्वाचन पद्धति जनतंत्र के बहुत बड़े अंग हैं, किंतु इनसे ही जनतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती। मताधिकार और निर्वाचन के साथ एक भावना भी जनतंत्र के लिए आवश्यक है। केवल बहुमत का शासन ही लोकतंत्र नहीं है, ऐसे तंत्र में तो जनता में एक तबका ऐसा हमेशा रहेगा, जिसकी आवाज चाहे वह सही ही क्यों न हो दबा दी जाएगी। जनतंत्र का ये स्वरूप ‘सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय’ नहीं हो सकता। अंतः भारतीय जनतंत्र की कल्पना में निर्वाचन, बहुमत, अल्पमत आदि बाहरी व्यवस्थाओं के स्थान पर सभी मतों के सामंजस्य और समन्वय पर ही बल दिया गया है (शर्मा)।

पंडित जी ने ‘लोकमत परिष्कार’ को लोकतंत्र के लिए जरूरी माना है। सरकार को जनता के पास बार-बार जाना चाहिए जनता बार-बार अपना मत विभिन्न विषयों पर व्यक्त करे ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए नहीं तो लोकतंत्र में मोबोकेरसी और औटोकेरसी स्थापित हो जाएगी। ये आज की व्यवस्था नहीं बल्कि प्राचीन व्यवस्था है, आज जिसे लोकमत कहते हैं वही लोकमत परिष्कार प्राचीन समय में था। हमारे यहां सभा का कार्य ही चर्चा करने का था, सभा के सदस्य जनता ही होती थी, गाँव में विद्यमान पंचायत की व्यवस्था चर्चा- परिचर्चा का ही स्थान था। भारत की परम्परा में हमें आदि शंकराचार्य को भी मुंडन मिश्रा और उनकी धर्मपत्नी से संवाद- प्रतिवाद करना पड़ता है। ये चर्चा लोकतंत्र के लिए आवश्यक है इसके बिना लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती है।

अखंड भारत की अवधारणा- हिमालयम समरभ्यम या वद हिंदू सरोवरम। तम देव निर्मितम देशम हिंदुस्तनम प्रवच्छते॥ (अर्थ - हिमालय से लेकर इन्दु सरोवर दक्षिण सागर तक फैला हुआ है, हिंदुस्तान कहलाता है, देवनिर्मित देश है) भारत की संकल्पना बहुत पुरानी है भारत की सीमाएं अधिक विस्तृत थी। दीन दयाल जी ने अखंड भारत की कल्पना की अपने प्रचारक जीवन में चंद्रगुप्त पर लिखे उपन्यास में वो अखंड भारत को देख रहे हैं और इसको वो राजनीतिक नहीं मानते। भारत को एक करने अखंड करने का चंद्रगुप्त मौर्य के द्वारा किया गया। दीनदयाल जी कहते हैं, “अखंड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है, जो अनेकता में एकता

का दर्शन कराता है। अंतः हमारे लिए अखंड भारत कोई राजनीतिक नारा नहीं है बल्कि यह तो हमारे सम्पूर्ण जीवन दर्शन मूल आधार है “ (शर्मा)।

दीनदयाल जी एक व्यावहारिक चिंतन देते हैं, भारत की अखंडता बनाए रखने के लिए वे जब विदेश नीति पर बात करते हैं तो एक तेज, प्रखर राजनेता की तरह हैं। विदेश नीति की बात करे हैं तो उसमें कौटिल्य के मंडल सिद्धांत की याद आ जाती है। पंडित जी वैसे तो बहुत आदर्शवादी, सिद्धांतवादी थे, परंतु भारत और दुनिया के साथ संबंधों की दृष्टि में वह अधिक व्यावहारिक भी थे। राष्ट्र हित किसी भी देश की विदेश नीति का प्राण होती है वो इसको मानते थे वे कहते हैं “ किसी भी देश की परराष्ट्र नीति, राष्ट्र के प्रकट स्वार्थ की सिद्धि के एकमेव उद्देश्य से तैयार की जानी चाहिए। उसे यथार्थवादी ही होना चाहिए और उसे विश्व की पार्थिव प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए (शर्मा)।”

राज्य की अवधारणा- पंडित जी ने अपने चिंतन के केंद्र में सदैव समाज को रखा, उन्होंने माना की समाज पहले था उसके बाद राज्य आया, इस समाज का संचालन धर्म के अनुसार होता था जहाँ सभी धर्मानुसार आचरण करते थे कोई किसी को कष्ट नहीं पहुँचता था, सभी समरस भाव से रहते थे। परंतु जब समाज में लोभ आया, मेरा-तेरा का विचार आया, तब समाज में अधर्म हुआ, लोग एक-दूसरे से संघर्ष करने लगे, उसके ही परिणाम स्वरूप राज्य और दंड का उद्भव हुआ। दीनदयाल जी कहते हैं “राज्य का निर्माण हमारे यहां सामाजिक समझौते के अनुसार हुआ। पहले राजा नहीं था, महाभारत में वर्णन है की शतयुग में ना राज्य था, ना राजा, ना दण्ड था, ना दण्ड देने वाला था, सब प्रजा धर्म के आधार पर एक दूसरे की रक्षा करते थे।”

राज्य की उत्पत्ति समाज में व्यक्तियों के भीतर पैदा हुई विकृतियों का परिणाम है, जब समाज अपने नियत पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से अलग हुआ तो समाज में अव्यवस्था स्थापित हो गई, इसी का परिणाम था समाज में कुछ लोगों ने इस अव्यवस्था से मुक्ति हेतु आपस में समझौता करके अपने में से ही किसी को राजा चुना और उसके हाथ में दण्ड देने का अधिकार दिया, ये ही वो पल था जहाँ से राजा और राज्य का उद्भव हुआ। भारत में राज्य का उद्भव समाज में धर्म को स्थापित करने हेतु ही किया गया, पश्चिमी चिंतन में राज्यों का उद्भव सम्पत्ति और अधिकारों के संरक्षण के साथ जुड़ा था। इस लिए हाब्सबस, लाक, रूसो अपने सामाजिक समझौता सिद्धांत में लोगों के अधिकारों के साथ जोड़ते हैं, उनके यहाँ का समाज एक कबिलाई समाज था, जहाँ पर मत्स्य न्याय था, हमारे यह धर्म का राज था और विगत उसके नष्ट होने के परिणाम स्वरूप राज्य की स्थापना होती है। दीनदयाल कहते हैं ‘राज्य, समाज द्वारा अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए बनाई गई एक संस्था है। अंग्रेजों के चले जाने के बाद देश की राजनीति, समाज व्यवस्था जीवनदर्शन आदि पर विदेशी शासकों के विचारों का जो प्रभाव था, वास्तव में उसे दूर हो जाना चाहिए था, परंतु इसके कम होने के स्थान पर ये बढ़ा है, उनकी वेश भूषा, रीतिरिवाज, नीतिशास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि सभी विषयों में उन्ही की बात हमारे यह प्रमाण मानी जाती है। वेद, उपनिषद, स्मृति, गीता आदि के स्थान पर हम मिल्स, हेगल, एडम स्मिथ, मार्क्स आदि के वचनों का ही प्रमाण देते हैं। ये विचार भारत के जन मानस में हीनता का भाव पैदा करता है, भारत इतने स्वर्णिम इतिहास का हिस्सा रहा, जहाँ के विश्वविद्यालयों में विदेशी पढ़ने के लिए पंक्तिबद्ध रहते थे, वही हम ज्ञान के लिए दुनिया को श्रेष्ठ मानते हैं।

वस्तुतः प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपने “स्व” का विचार करना आवश्यक होता है। स्वत्व के बिना स्वराज का कोई अर्थ नहीं होता है। आखिर प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयास करते हुए सुखी और सम्मानयुक्त जीवन व्यतीत कर सकने के लिए ही स्वतंत्रता की अभिलाषा सदैव रखता है। अपनी प्रकृति के साथ मेल न खाने वाली विचारधारा या कार्यप्रणाली का आधार लेने वाले राष्ट्र पर अनेक विपदायें आती हैं। हमारे देश के सामने जो संकट हैं उनका भी यही कारण है, हम अपने स्व को भूल गए हैं यही भूलना हमारी अवनति का कारण भी है।

एकात्म मानव दर्शन स्व-जागरण ही है- एकात्मक मानव दर्शन का अर्थ है, मानव जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्म संबंधों का दर्शन। एकात्म मानव दर्शन व्यक्ति जीवन और उसके सभी अंगों को ध्यान में रखते हुए संकलित विचार करता है। एकात्म मानव दर्शन सोचने की एकात्मकता और समग्र दृष्टि के साथ जुड़ा है, चिंतन टुकड़ों में नहीं समग्रता में होना चाहिए, जिस प्रकार से मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संकलित रूप है। इसलिए मानव का सर्वांगीण विचार उसके शरीर, मन बुद्धि और आत्मा सबका संकलित विचार है। व्यक्तित्व के इन चारों पक्षों की समुचित आवश्यकता को पूरा करने, उनकी विविध माँगें और इच्छा - आकांक्षाओं को पूर्ण करने तथा उनका सर्वांगीण विकास करने के लिए भारतीय संस्कृति ने व्यक्ति के सामने कर्तव्य के रूप में चार पुरुषार्थों का आदर्श रखा है। यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उन्नति भी अभिप्रेत है, जिससे समाज की सुयोग्य धारणा हो सके। भारत के चिंतन में धर्म, अर्थ, काम और अंत में मोक्ष का विचार है, ये ही जीवन के चार पुरुषार्थ भी हैं, धर्म से मोक्ष की और बढ़ने का क्रम है, व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य भोगवादी ना होकर त्याग और तपस्या से प्रभु भक्ति करते हुए मोक्ष की प्राप्ति करना करना है। अर्थ और काम दोनों को धर्म के अनुसार करना। हमारे चिंतन में धर्म सबसे ऊपर है और व्यक्ति को इसी के अनुसार आचरण करना चाहिए। दीनदयाल जी ये भी कहते हैं अगर धर्म के नाम पर कोई बेकार परंपरा चल रही है उसे तत्काल छोड़ देना चाहिए। दीनदयाल जी अपने चिंतन में बहुत सहज थे जो अच्छा है उसको ले लेना और जो समयानुकूल नहीं है उसको त्याग देना चाहिए।

सुख की अवधारणा क्या है- पंडित जी की सुख की अवधारणा पश्चिमी अवधारणा से बिल्कुल भिन्न थी, जहाँ पश्चिम में भौतिक संसाधनों के सकेन्द्रण को ही सुख माना गया, वही भारत के चिंतन में पड़ोसी को सुखी देख अपनी सुख की अनुभूति को लिया गया है। स्वामी इतना दीजिए जामे कूटुम्ब समाय, मैं भी भूखा ना राहु साधु भी भूखा ना जाए। इस दर्शन पर भारत चलता है, जहाँ राजा हरीचंद्र एक बाज की भूख को मिटाने के लिए अपने शरीर का माँस देने में अपने सुख को देखते हैं। लेकिन आज जो सुख की परिभाषा है, क्या वही असल सुख है, पंडित दीनदयाल जी कहते हैं भौतिक संसाधनों का एकत्रिकरण करना क्या सुख है, अगर ये सुख है तो इसका अंत कभी नहीं हो सकता। व्यक्ति की इच्छा (Desire) का क्या कभी अंत हो सकता है, “त्पना ना जीर्णा वयमया जीर्णा” अर्थात् शरीर जर्जर और गलितगत्र हो जाए तब भी वासनाओं का वेग कम नहीं होता। ये भारत का चिंतन नहीं है, ये विदेशी चिंतन है जो आज लोगों के भीतर तक घर कर गया है। देहिक सुख और चकाचौंध में आज व्यक्ति अपने मूल को भूल गया है। भारत के चिंतन में सभी को साथ लेकर चलने के संकल्प को बार-बार दोहराया गया है। उपनिषदों का ज्ञान तो हमें यही संदेश देता है-

“संघ गच्छःत्वम, सम वदात्वम, संभो मानसी जनतम
देवा भागम यथापूर्वे, साँझा नाना उपासिते”

ये श्लोक भारत के दर्शन और दीनदयाल जी के चिंतन को बखूबी बयाँ कर देता है, सभी साथ चले, सभी एक स्वर में बोले और सभी का मन एक हो जाए कोई ऊँच-नीच का भाव ना हो, जैसे पूर्व के काल में देवताओं का आचरण सभी मिलकर अपने अपने भाग को प्राप्त करते थे, उसी प्रकार हम भी आचरण करें। इस प्रकार का विचार भारतीय दर्शन का विचार है, जहाँ पर एक ही ईश्वर को सभी मानवों में समान रूप से देखने की बात की गई है। सामाजिक समरसता का विचार- पंडित दीनदयाल जी ने अपने जीवन काल में कभी भी छुआ-छूत के विचार को अपने आचरण में नहीं आने दिया। उनके लिए सभी हिंदू समाज के लोग एक हैं और उनकी साँझी पहचान होना हिंदू हैं। राष्ट्रीयस्वयं सेवक संघ जिस प्रकार से सामाजिक समरसता में मानता है की स्वतंत्रता, समानता, गरिमा के विचार को अपने आचरण और व्यवहार में लेकर आना ही समरसता है, उसी विचार को दीनदयाल जी ने अपने पूरे जीवन काल में माना। लोकसभा चुनाव लड़ते वक्त बहुत लोगों ने कहा की आप अपने को ब्राह्मण कह कर सम्बोधित कराओ तो हो सकता है, आप चुनाव जीत जाए परंतु दीनदयाल जी ने ऐसा नहीं किया और वो चुनाव हार गए। ऐसे मजबूत इरादों के साथ रहते थे पंडित दीनदयाल जी।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

- श्री तुकड़ो जी महाराज (सुदामा सावरकर, अनुवादक) 2002 : श्री ग्रामगीत, सहयोग पुस्तक कुटीर, नई दिल्ली
- शर्मा, महेश चंद्र (1994), दीनदयाल उपाध्याय व्यक्तित्व और शक्तित्व, वसुधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- उपाध्याय, दीनदयाल (2014), एकात्म मानववाद सिद्धांत, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
- गोपाल, कृष्ण (2015), भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, मध्यप्रदेश, भारत
- गुप्ता, तनसुखराम (1968), पंडित दीनदयाल उपाध्याय : महाप्रस्थान, सूर्या प्रकाशन, नई दिल्ली
- कुमार, प्रवेश (2011), दलित अस्मिता की राजनीति, मानक पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- नेने, विनायक वासुदेव (2014), पंडित दीनदयाल उपाध्याय दर्शन, खण्ड 2, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली
- जयसवाल, काशी प्रसाद (2014), भारतीय राजतंत्र (hindu polity), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, उत्तरप्रदेश
- मुखर्जी, राधाकुमुद (2014), हिंदू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- पाँचजन्य, 31 अगस्त 1953

गाँधी एवं अम्बेडकर के सामाजिक विचारों में महिला सशक्तिकरण

• स्मिता कुमारी

सारांश- अपने क्रान्तिकारी सामाजिक चिन्तन में डॉ. अम्बेडकर ने स्त्री-सशक्तीकरण के लिए सर्वप्रथम वर्ण-व्यवस्था और उससे फलित विषमताओं एवं बुराइयों का विरोध किया। यह व्यवस्था भले ही गुण-कर्म, श्रम-विषमताओं एवं बुराइयों का विरोध किया। यह व्यवस्था भले ही गुण-कर्म, श्रम-विभाजन, मानव-स्वभाव आदि पर आधारित कही गई हो, लेकिन उन्होंने स्पष्टतः कहा, “मेरे लिए यह चातुर्वर्ण्य जिसमें पुराने नाम जारी रखे गये हैं, घिनौनी वस्तु है, जिससे मेरा पूरा व्यक्तिगत विद्रोह करता है.....यह चातुर्वर्ण्य सामाजिक संगठन प्रणाली के रूप में अव्यावहारिक, घातक और अत्यन्त असफल रहा है। डॉ. अम्बेडकर ने गीता के उस कथन को स्वीकार नहीं किया जिसमें यह कहा गया है कि “चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।” अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अनिवाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान। इसी को वर्ण-व्यवस्था का मूलधार माना गया जिसका उन्होंने सशक्त खण्डन किया। गांधीजी के सामाजिक दृष्टिकोण इसे उन्होंने सर्वोदय के रूप में देखा। जिसमें स्त्री-पुरुष अमीर-गरीब सबों के उदय का आदर्श निहित है। रस्किन की पुस्तक ‘अन्दु दिस लास्ट’ का जब उन्होंने अध्ययन किया तो उनके जीवन में व्यावहारिक परिवर्तन आया। गांधीजी ने इस पुस्तक का गुजराती भाषा में रूपान्तरण किया जिसका नाम उन्होंने ‘सर्वोदय’ अर्थात् सबका कल्याण रखा। यही से यह शब्द भारत में प्रचलित हुआ। गांधीजी सर्वोदय आन्दोलन के जन्मदाता माने जाते हैं।

मुख्य शब्द- स्त्री-सशक्तीकरण, गुण-कर्म, श्रम-विभाजन, मानव-स्वभाव

मोहन दास करमचन्द का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को पोरबंदर (गुजरात) के एक सभ्रांत परिवार में हुआ। इनके दादा का नाम उत्तमचन्द गांधी और पिता के नाम करमचन्द गांधी था, इन्हें काबा गांधी भी कहते थे। वह अपनी जाति के वफादार, सच्चे-ईमानदार, साहसी और उदार व्यक्ति थे। काबा गांधी पोरबंदर, राजकोट तथा बीकानेर रियासतों के दीवान थे। 1876 में गांधी अपने माता-पिता के साथ राजकोट चले गये जहां उनकी प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ हुई। 1881 में उन्होंने हाई स्कूल में प्रवेश किया। अपनी माता पुतलीबाई की सलाह पर गांधी का विवाह 1883 में कस्तूरबा बाई के साथ हो गया। गांधी परिवार जाति से बनिया और पुष्टिमार्गीय वैष्णव परम्परा से अभिभूत था। परिवार में वैष्णव सम्प्रदाय की सादगी, पवित्रता और शाकाहारी भोजन के प्रति लगाव था। साथ ही पारंपरिक रूप से महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

1887 में गांधी ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और भावनगर के सामलदास कॉलेज में प्रवेश लिया। लेकिन शीघ्र ही, कानून का अध्ययन करने के लिए, वह इंग्लैंड चले गये।

• विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार) 812007

1891 में बॉर-एट-लॉ की उपाधि प्राप्त कर वह भारत वापस आ गये। राजकोट तथा बम्बई में बैरिस्टर गांधी ने वकालत की पर उन्हें विफलता का सामना करना पड़ा और अन्त में दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी नाम की एक मुस्लिम संस्था के दक्षिण अफ्रीका के कानूनी कार्यों की देखभाल के लिए, उन्हें झकझोर दिया। वह रेल में यात्रा करते समय उन प्रथम श्रेणी डिब्बों में नहीं बैठ सकते थे जिनमें श्वेत लोग यात्रा करते थे। उन्हें एक बार रेल के डिब्बे से धकेल दिया गया। तत्पश्चात् गांधीजी ने गोरी सरकार के दमन और भेदभाव का विरोध प्रारम्भ कर दिया। मई 1894 में उन्होंने नाटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की और 1896 में भारत आकर दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के अधिकारों के लिए आन्दोलन शुरू किया। इसी वर्ष वह पुनः डर्बन पहुंचे, ताकि अपने आन्दोलन को और गतिशील बना सके। सार्वजनिक सेवा करने के उद्देश्य को लेकर गांधीजी ने 1907 में वकालत का पेशा छोड़ कर अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिरोध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इसी कारण 1908 में उन्हें दो माह की सजा भी भोगनी पड़ी। वह एक प्रतिनिधि मण्डल लेकर इंग्लैण्ड भी गये जहां उन्होंने उपनिवेशन मंत्री को दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के प्रति हो रहे अत्याचारों के बारे में ज्ञापन दिया।

1915 में गांधीजी ने भारत लौटने के बाद 1917 में अहमदाबाद के मजदूरों की दयनीय स्थितियों को उजागर किया। उन्होंने उनके सुधार के लिए हाथ से चर्खा चालकर कपड़ा बनाने पर बल दिया। उन्होंने अहमदाबाद में ही साबरमती नदी के किनारे सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया जहां सभी आश्रमवासी शारीरिक श्रम किया करते थे। गांधीजी ने 'नवजीवन' गुजराती मासिक पत्रिका का सम्पादन अपने हाथों में लिया जिसके माध्यम से वह मजदूरों की समस्याओं और देश की गुलामी की जंजीरों के बारे में आवाज बुलन्द करते रहे। उधर वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को आजादी की लड़ाई में पूर्ण सहयोग कर रहे थे। अप्रैल, 1921 में उन्होंने कांग्रेस सदस्यता अभियान का लक्ष्य एक करोड़ सदस्यों का रखा। 10 मार्च, 1922 के 'यंग इंडिया' अंक में गांधीजी द्वारा लिखे गये तीन लेखों के कारण उनपर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया और उन्हें छः वर्ष की कैद की सजा दी गई। लेकिन बीमारी के कारण उन्हें 5 फरवरी, 1924 को रिहा कर दिया गया। तत्पश्चात् वह कांग्रेस पार्टी तथा अन्य माध्यमों द्वारा भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे। वह कई बार जेल गये और उन्हें 26 जनवरी, 1931 को गांधी- इर्विन समझौते के अन्तर्गत बिना शर्त रिहा किया गया। वह 1931 में हुई प्रथम गोलमेज परिषद में भाग लेने लंदन नहीं गये। लेकिन द्वितीय गोलमेज परिषद में भाग लेने वह अन्य कांग्रेसी प्रतिनिधियों के साथ लंदन पहुंचे जहां डॉ. अम्बेडकर से उन्हें मुकाबला करना पड़ा। डॉ. अम्बेडकर भारतीय अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में परिषदों में भाग ले रहे थे। गांधीजी ने यह स्वीकार नहीं किया कि डॉ. अम्बेडकर अछूतों के नेता हैं। उन्होंने स्वयं को अदूतों का सच्चा प्रतिनिधि बतलाया जिसे डॉ. अम्बेडकर ने भी कतई नहीं माना। गोलमेज परिषदों में साम्प्रदायिक गतिरोध इतना गम्भीर बन गया कि भारत की आजादी को लेकर प्रधानमंत्री मैकडोनाल्ड को 'साम्प्रदायिक पंचाट' की घोषणा करनी पड़ी। उसमें अछूतों तथा अन्य समुदायों-सिक्खों, ईसाइयों, मुस्लिमों आदि को पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया जो भारतीय राजनीति में एक विकट समस्या में परिणत हो गया।

गांधीजी उक्त साम्प्रदायिक पंचाट से परेशान हो गये। उन्होंने केवल अछूतों के पृथक् प्रतिनिधित्व का डटकर विरोध किया। अन्य लोगों के बारे में वह चुप रहे। गांधीजी ने 20 सितम्बर, 1932 को अछूतों को मिले पृथक् प्रतिनिधित्व के विरुद्ध आमरण अनशन

प्रारम्भ कर दिया। फलतः उनकी जान के लाले पड़ गये। डॉ. अम्बेडकर भी एक अभूतपूर्व राजनीतिक संकट में फंसे गये। उन्हें धमकियां मिली कि वह अपने रवैये को बदलें और गांधीजी से सहयोग करें। एक गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात् 24 सितम्बर, 1932 को समझौता हुआ जिसे 'पूना-पैक्ट' नाम दिया गया। तत्पश्चात् गांधीजी अछूतों-छातों की दिशा में काम करते रहे। उन्होंने 'हरिजन' नाम की पत्रिका भी प्रारम्भ की और 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की, ताकि कांग्रेसी नेता और अन्य समाज सुधारक छू आछूत-निवारण अभियान चलाते रहें। साथ-साथ ही गांधीजी ने 9 अगस्त, 1942 को बम्बई में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन को प्रारम्भ किया। उन्होंने 'करो या मरो' का नारा बुलन्द किया। 1947 तक अनवरत संघर्ष के पश्चात् मुस्लिम लीग द्वारा उत्पन्न अवरोधों के बावजूद, भारत को 15 अगस्त, 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। निश्चय ही, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गांधीजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही जिसे प्रायः सभी लोगों और समुदायों ने स्वीकार किया। लेकिन शुक्रवार 30 जनवरी, 1948 को दिल्ली की एक प्रार्थना सभा में जाते हुए, उन्हें एक हिन्दू हत्यारे ने गोली से उड़ा दिया। इस प्रकार एक ऐसे ऐतिहासिक घटनाक्रम का अन्त हो गया जो गांधीजी से जुड़ गया था।

गांधीजी का जीवन प्रारम्भ से अन्त तक इतना व्यस्त रहा कि वह अध्ययनशील तो रहे, पर लेखन कार्य अधिक न कर पाये। 1904 में गांधीजी ने रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' का अध्ययन किया। उसी वर्ष उन्होंने आहार-विज्ञान पर अनेक लेख गुजराती में लिखे जो हिन्दी में 'आरोग्य दर्शन' नामक पुस्तक में संकलित हो कर प्रकाशित हुए। 1909 में गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज' की रचना की और इसी बीच उन्होंने 'एथिकल रिलीजन' नामक एक पुस्तिका लिखी। 1925 के दौरान गांधीजी ने अपनी आत्मकथा 'द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ' लिखना प्रारम्भ किया जिसका प्रथम संस्करण 1940 में प्रकाशित हुआ। दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों की स्थिति और समस्याओं के बारे में उन्होंने 'हिस्ट्री ऑफ सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीकी' नामक ग्रन्थ की रचना भी की जिसका प्रकाशन 1950 में हुआ। गांधीजी के लेख तथा भाषणों का संकलन एवं संपादन अनेक ग्रन्थों में हो चुका है जैसे सत्याग्रह- 1910-35 (1935), नॉन-वॉयलेन्स इन पीस एण्ड वार (1950), सर्वोदय (1958), सेंट-परसेंट स्वदेशी (1938), दरिद्रनारायण (1946), ट्रस्टीशिप (1960), द साइंस ऑफ सत्याग्रह (1957) और इंडियन केस फोर स्वराज (1932)।

गांधी परिवार की वैष्णव परम्परा में पले होने के नाते, धार्मिक कर्म एवं निष्ठा में विश्वास करते थे। उनकी हिन्दू शास्त्रों, विशेषकर भगवद्गीता तथा उपनिषदों में अटूट आस्था थी। फिर भी उनके चिन्तन पर अनेक पाश्चात्य मनीषियों की छाप अंकित थी जैसे रस्किन और थोरू। गांधीजी ईश्वरवादी थे। उनके द्वारा ईश्वर में दृढ़ आस्था का भाव वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभाव में जाग्रत हुआ। उन्होंने वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त एवं अन्य हिन्दू धर्म-ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त की और जगत् तथा ईश्वर की यथार्थता को स्वीकार किया। उन्होंने नरसी मेहता की अमर कृति "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे" को अपने जीवन का सर्वोपरि अलंकार माना। यह स्वर उनके जीवन और प्रार्थना का अंग बन गया। गांधीजी का पूर्ण विश्वास था कि भगवत्-कृपा से ही मोक्ष प्राप्त हो सकती है। उन्होंने अपने ईश्वर सम्बन्धी विचारों के विषय में कहा, "जो ईश्वर को प्रेम के रूप में मानते हैं, उनके साथ मैं भी ईश्वर को प्रेम मानूंगा, किन्तु मेरे अन्तराल में यह बात बैठ गई है कि ईश्वर चाहे जो कुछ भी हो, ईश्वर सत्य है।.... सत्य ही ईश्वर है। सत्य-प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन प्रेम ही है। मैंने यह

भी पाया कि आंग्लभाषा में प्रेम के अनेक अर्थ हैं। वासना के अर्थ में पार्थिव प्रेम हमारे पतन का भी द्योतक हो सकता है। अहिंसा के अर्थ में प्रेम को मानने वाले बहुत ही कम व्यक्ति हैं, किन्तु सत्य हमेशा एक ही शक्ति में विश्वास है। सत्यान्वेषण के भावावेश में निरीश्वरवादियों ने सत्य के लिए ईश्वर के अस्तित्व को भी अस्वीकार कर दिया, और यही कारण था कि मैंने 'ईश्वर सत्य है' की अपेक्षा 'सत्य ही ईश्वर है' कहना अधिक उचित समझा।¹ स्पष्ट है कि गांधीजी ने ईश्वर को सत्य और प्रेम के साथ जोड़ा।² गांधी के इस तात्त्विक विचार में स्त्री-पुरुष समानता की बात निहित है।

गांधी का दार्शनिक चिन्तन अद्वैतवाद के निकट होते हुए भी शंकराचार्य के मायावाद से दूर था।³ उनका अद्वैतवाद परिवार की वैष्णव परम्परा से प्रभावित था। इसलिए उनका विचार बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत के निकट है। गांधीजी ईश्वर को प्रभु और भक्त को ईश्वर का दास मानते हैं। उनके अनुसार, स्त्री-पुरुष दोनों का जीवन ईश्वर का ही अंश होता है। उन्होंने माना कि "हमारे शरीर अलग-अलग हैं, किन्तु हमारी आत्मा तो एक है। यह ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ अपवर्तन के प्रभाव से विभिन्न रंगों की दिखाती हैं, किन्तु वास्तव में उन सबों का स्रोत एक ही है।"⁴ इस प्रकार गांधीजी ने हिन्दू धर्म की मूल मान्यताओं-ईश्वर का अस्तित्व, अमर आत्मा, ईश्वर-कृपा से मोक्ष आदि को स्वीकार किया। उन्होंने कहा, "मैं आस्था का एक आदमी हूँ। मेरी एकमात्र आस्था पूर्णतः ईश्वर ही है। मेरे लिए एक पग ही पर्याप्त है। अगला पग वही मेरे लिए स्पष्ट करेगा जब उसका समय आयेगा।"⁵ उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी भी संकटपूर्ण स्थिति में ईश्वर ही अवतार के रूप में सहायता करता है। गांधीजी ने ईश्वर और आत्मा में भेद नहीं माना। "उस आत्मा को जानना ही ईश्वर का जानना है। व्यावहारिक रूप में दोनों में अन्तर भले ही हो, किन्तु वास्तव में दोनों एक हैं। व्यावहारिक दशा में दोनों में भेद उत्पन्न होने का कारण अविद्या या माया है, यह माया ही बंधन है, और इस बंधन से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। उनके अनुसार जीव आत्मा का स्वरूप है। शरीर में बद्ध रहकर वह जीव है और बंधनमुक्त होने पर आत्मा है। इस प्रकार आत्मा ईश्वर से भिन्न नहीं है।⁶ स्पष्ट है कि ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी गांधीजी के विचार भारतीय दार्शनिक परम्परा में अद्वैतवाद से मेल खाते हैं।

गांधीजी सनातन हिन्दू धर्म में विश्वास रखते थे। "वह हिन्दू शास्त्रों के अनुसार, अवतारवाद, पुनर्जन्म, कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। राम को परम-पुरुष का अवतार मानते थे और 'राम' नाम को महामंत्र स्वीकार करते थे। गांधीजी राम के अनन्य भक्त थे, उनके सारे क्रिया-कलाप राममय थे। गांधीजी के राम सर्वोदय के दृष्टा, अहिंसा, त्याग और तितिक्षा के आदि देव हैं।⁷ 'राम' भारत के राम नहीं, बल्कि समस्त मानवता के आराध्य देव हैं। वैसे गांधीजी कट्टर हिन्दू थे, पर अन्य धर्मों की मान्यताओं के प्रति वह उदार थे। उन्होंने सभी धर्मों को समन्वय स्थापित किया। संक्षेप में, धर्म के विषय में वह समन्वयवादी थे।

गांधीजी की भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म में अटूट आस्था थी।⁸ उन्होंने वैदिक धर्म की प्रचलित वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कहा, "वर्ण-व्यवस्था में बुनियादी तौर पर सोची गयी समाज की चौमुखी बनावट ही मुझे तो असली, कुदरती और जरूरी चीज दिखती है।"⁹ गांधीजी चाहते थे कि वर्ण-व्यवस्था को उसके शुद्ध रूप में व्यावहारिक बनाया जाये। उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति जिस वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-में पैदा हुआ है, उस वर्ण के निर्धारित व्यवसाय ही करने

चाहिए। इस विचार के पीछे उनकी युक्ति थी कि व्यवसाय की जानकारी और विशेषज्ञता पर आनुवंशिकता पर्याप्त प्रभाव डालती है। गांधीजी ने व्यक्ति पर वंशानुक्रमण का प्रभाव माना। वह वर्ण-व्यवस्था को जन्म-आधारित और पेशेगत मानते थे। उन्होंने कहा, “वर्ण-व्यवस्था अवश्य ही व्यवसाय के संदर्भ में बनी है, जो केवल मानवता के कल्याण के लिए है और किसी अन्य के लिए नहीं” और साथ ही यह भी कहा कि “मेरा मत है कि वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित है” और “वर्ण का अर्थ है : जन्म लेने से पहले ही व्यक्ति का पेशा निश्चित कर देना।”⁹

निश्चय ही, गांधीजी वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे, किन्तु उन्होंने वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा में भेद किया। उनकी दृष्टि में वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण आते हैं, जबकि जाति-प्रथा के अन्तर्गत इन चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य सभी जातियां-उपजातियां हैं। गांधीजी ने छुआछूत को भी वर्ण-व्यवस्था से अलग माना। उन्होंने कहा, “वर्ण और आश्रम ऐसी संस्थाएं हैं जिनका जातियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्ण-नियम हमको यह शिक्षा देता है कि हम में से सबको अपनी जीविका अपने पूर्वजों के धंधों का अनुसरण करके कमाना है। वह हमारे अधिकारों में नहीं, बल्कि कर्तव्यों को परिभाषित करता है....और वर्ण-नियम में ऐसी कोई बात नहीं है जो छुआछूत में विश्वास की गारण्टी देती हो।”¹⁰ इस प्रकार गांधीजी ने वर्ण-व्यवस्था तथा आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास-को मानते हुए, वर्ण तथा जाति से भिन्न छुआछूत को अस्वीकार कर दिया और कहा, “वह वर्णाश्रम धर्म का सिद्धान्त ही तो जिसे मैंने सदैव स्वीकार किया है।”¹¹

गांधीजी ने अपने सामाजिक विचारों को और स्पष्ट करते हुए यह भी कहा, वर्ण धर्म विशेष प्रवृत्तियों के कुछ लोगों के निश्चित कार्य-क्षेत्र स्थापित करता है। इससे समस्त अवांछनीय स्पर्धा का अन्त हो जाता है, सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, वर्ण-नियम ऊंच-नीच के किसी भेदभाव को नहीं मानता....मेरा विश्वास यह है कि एक आदर्श समाज व्यवस्था उसी समय विकसित होगी, जब इस नियम के निहितार्थ पूर्णतः समझ लिए जाते हैं और उसे व्यावहारिक रूप दिया जाता है।¹² वह आदर्श समाज जो गांधीजी की शिक्षाओं के अनुसरण के फलस्वरूप विकसित होगा, उसे स्वयं महात्मा गांधी ने ‘सर्वोदय’ कहा। वह सर्वत्र कल्याण का आदर्श है। यह व्यवस्था “सभी प्रकार की सामाजिक असमानता, जाति-व्यवस्था और छुआछूत के उन्मूलन पर आधारित होगी। वर्णाश्रम के प्राचीन सिद्धान्त का पुनरुत्थान भी उसमें सन्निहित है।”¹³ गांधीजी ने अपने सामाजिक दृष्टिकोण को और पुष्ट करने के लिए यह कहा कि “वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मनुष्य के मिशन को शरीर और आत्मा की एकता के लक्ष्य को लेकर परिभाषित करता है....।”¹⁴ वर्ण-व्यवस्था, गांधीजी के अनुसार, “कोई मानवीय खोज नहीं है, बल्कि प्रकृति का एक अकाट्य नियम है, उस प्रकृति का कथन है जो सदैव न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के समान सदा वर्तमान एवं क्रियाशील है। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का नियम खोजे जाने के पूर्व विद्यमान था, उसी प्रकार वर्ण-नियम भी वर्तमान था। यह कार्य हिन्दुओं को सौंपा गया कि वे उस नियम की खोज करें।”¹⁵ इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था को गांधीजी ने प्रकृति का ही एक अंग माना जिसका किसी व्यक्ति तथा समुदाय द्वारा खण्डन असंभव है। वर्ण मानव अस्तित्व का एक शाश्वत नियम है। वह अनिवार्यतः हिन्दू जीवन एक अपृथक अंग है। वर्णाश्रम ने ही हिन्दू धर्म की रक्षा की है। संक्षेप में, गांधीजी के मतानुसार, “वर्ण आनन्द और वास्तविक धार्मिक अनुसरण के लिए सबसे उत्तम सुरक्षा का मार्ग है।”¹⁶ स्पष्टतया गांधीजी का सामाजिक दृष्टिकोण हिन्दू परम्परावादी

समाज दर्शन में ही निहित है।

गांधीजी के सामाजिक दृष्टिकोण इसे उन्होंने सर्वोदय के रूप में देखा। जिसमें स्त्री-पुरुष अमीर-गरीब सबों के उदय का आदर्श निहित है। रस्किन की पुस्तक 'अन्तु दिस लास्ट' का जब उन्होंने अध्ययन किया तो उनके जीवन में व्यावहारिक परिवर्तन आया। गांधीजी ने इस पुस्तक का गुजराती भाषा में रूपान्तरण किया जिसका नाम उन्होंने 'सर्वोदय' अर्थात् सबका कल्याण रखा। यही से यह शब्द भारत में प्रचलित हुआ। गांधीजी सर्वोदय आन्दोलन के जन्मदाता माने जाते हैं। उनके अनुसार, सर्वोदय समाज का अर्थ है-¹⁷

1. व्यक्ति की भलाई में ही सबकी भलाई निहित है।
2. एक वकील का कार्य उतना ही मूल्यवान है जनता कि नाई का, क्योंकि सभी को अपने कार्य से जीविकापार्जन का समान अधिकार प्राप्त है।
3. श्रम का जीवन अर्थात् खेती करने वाले किसान तथा हस्तशिल्पी का जीवन ही जीने योग्य जीवन है।

स्पष्टतः गांधीजी के सर्वोदय समाज में व्यक्ति ही सर्वोपरि है और हर व्यक्ति को जीविका कमाने का अधिकार है। कोई भी काम ऊंचा या नीचा नहीं है। यदि व्यक्तियों का भला होता है, तो सम्पूर्ण समाज का भला होगा। सर्वोदय अथवा सभी व्यक्तियों के अधिकतम सुख का विचार अधिकतम व्यक्तियों के सुख से युक्त है। सर्वोदय लोकतंत्र का पक्षधर और समानता का समर्थक है। लेकिन गांधीजी के अनुसार, सबका अधिकतम सुख उपयोगितावाद से भिन्न है। अहिंसा का पुजारी इस उपयोगितावादी सिद्धान्त को नहीं मानेगा कि अधिकतम संख्या का सुख ही महानतम सुख है। वह सबके महानतम सुख के लिए प्रयास करेगा और उसी आदर्श की अनुभूति के क्रम में अपने प्राण भी न्यौछावर कर देगा। वह मरने को तैयार रहेगा, ताकि अन्य लोग जीवित रह सकें। वह अपने को मरते समय तक अन्य लोगों की सेवा में अर्पित करता रहेगा। सर्वोदयी त्याग एवं तपस्या के लिए सदैव तैयार रहेगा, जबकि उपयोगितावादी कभी त्याग करने को स्व-प्रेरित नहीं होगा। उपयोगिता को आधार मानकर ही वह किसी भी कार्य को उचित ठहराने का प्रयास करेगा। इस प्रकार सर्वोदयी और उपयोगितावादी में अन्तर है।¹⁸

अपने शारीरिक श्रम से जीविका कमाना गांधीजी के सर्वोदय समाज का मूलाधार है। यही बात सभी वर्णों में सामान्यतः पाई जाती है।¹⁹ गांधीजी के पश्चात्, सर्वोदय विचार को आगे बढ़ाने वाले सन्त विनोबा भावे ने कहा कि सर्वोदय समाज की अवधारणा अनेक समस्याओं का समाधान है। “जब लोग मुझ से सर्वोदय समाज के संगठन के स्वरूप के बारे में पूछते हैं, तो मैं उन्हें बतलाता हूँ, यह एक क्रांतिकारी विचार है और न कि एक संगठन। यह ऐसी चीज है जिस पर विचार और क्रिया की जाये।” इसी बात को स्पष्ट करते हुए, विनोबाजी ने कहा, “महानतम संख्या के महानतम भलाई के पाश्चात्य विचार में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की समस्याओं के कीटाणुनिहित हैं, किन्तु सर्वोदय का विचार, जैसा कि गीता में उपदेश दिया गया है, सबकी भलाई से स्वतः को अर्पित कर देना है। यह वास्तव में सत्य और अहिंसा के प्रति हमारी ओर से निरपेक्ष आस्था की मांग है। हमें अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में कभी भी असत्य का सहारा नहीं लेना चाहिए, न ही अपने व्यापार अथवा अन्य धंधों में ऐसा करना चाहिए। हमें सर्वोत्तम प्रयास करते रहना चाहिए कि हमारे जीवन में हिंसा का कोई स्थान न मिले।.....इस महान् विचार के पीछे जो कुछ है हमें उस पर चिन्तन करना चाहिए, उसे अभिव्यक्ति देनी चाहिए, और हर समय उसका स्मरण करते रहना चाहिए.....

संसार की सभी समस्याओं का समाधान इसमें मिलेगा।²⁰

इस प्रकार गांधी और विनोबा के सर्वोदय समाज सम्बन्धी विचार मूलतः वर्णाश्रम और गीता-दर्शन से ही उद्भूत होते हैं जिसमें सम्यक् जीवन की कल्पना की गई है। ऐसे सम्यक् जीवन के मूलाधार शारीरिक श्रम, अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, चर्खा तथा खादी है।²¹ सर्वोदय समाज का न तो कोई संगठन होगा और न ही कोई विधान। प्रत्येक सर्वोदयी, स्त्री या पुरुष, निडर रहकर, अपनी अन्तरात्मा के अनुसार, सबकी भलाई में लगा रहेगा। यह समाज गांधीजी की समस्त शिक्षाओं का साकार रूप होगा। जैसा कि पूर्व में कहा गया, सर्वोदय समाज कोई संगठन नहीं, यह तो शब्दों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। विनोबाजी ने कहा, “यह मात्र कोई संगठन नहीं है। यह एक ऐसा ताकतवर शब्द है जो एक क्रांतिकारी विचार की अभिव्यक्ति है। एक सशक्त शब्द संस्थाओं से कहीं अधिक ताकतवर होता है। संगठनों में वह ताकत नहीं होती जो महान् शब्दों में होती है। शब्दों में बनाने और न-बनाने की ताकत होती है। शब्द उदार बनाते हैं, वे मनुष्यों और राष्ट्रों का पतन भी करते हैं। हमने महान् शब्दों में से अत्यधिक ताकत के शब्द को स्वीकार किया है। इसका अर्थ क्या है? हम कुछेक का उत्थान नहीं चाहते, यहां तक कि बहुतों का भी, अथवा उस अर्थ में महानतम संख्या का भी नहीं। महानतम संख्या की महानतम भलाई से हम संतुष्ट नहीं हैं। हम केवल एक एवं सबकी भलाई, पुरुष एवं स्त्री उच्च तथा निम्न, सबल एवं निर्बल, और बुद्धिमान् तथा मन्दबुद्धि की भलाई से संतुष्ट हो सकते हैं। हम केवल तभी संतुष्ट होंगे। यह सर्वोदय शब्द इस सर्वोच्च और सर्वसमाहित भावना की अभिव्यक्ति करता है।²²

गांधी और विनोबा दोनों ने सर्वोदय समाज की भावना को न केवल सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि से जोड़, अपितु यह भी कहा कि सच्चा सर्वोदयी अथवा सेवक ईश्वर का अनन्य भक्त होगा, तभी वह सबका भला कर पायेगा। इस भावना की पुष्टि करते हुए, विनोबा ने संत तुलसीदास को इस प्रकार उद्धृत किया, “सामान्यतः लोग अपनी वैयक्तिक भलाई चाहते हैं। कुछेक अपने ही लोगों का भला चाहते हैं।²³ लेकिन केवल ईश्वर के सेवक ही हरेक का भला चाहते हैं। इससे सिद्ध है कि सर्वोदय समाज का सेवक ईश्वर में अटूट आस्था रखनेवाला होगा, ताकि ईश्वर की संतान के रूप में वह सबको समान समझ कर सबकी भलाई में स्वयं को अर्पित कर दे। किसी सर्वोदय कार्यकर्ता किसी कठोर व्यवस्था से बंधा हुआ नहीं होगा, न ही वह संगठन की ताकत पर जियेगा। वह तो सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और ईश्वर में अटूट आस्था के बल पर काम करेगा। वह अपने कार्य-क्षेत्र में स्वतंत्र तथा निर्भीक होगा और सहयोग एवं सहानुभूति का सम्यक् जीवन व्यतीत करेगा।²⁴

सर्वोदय समाज के अर्थ और निहितार्थ को स्पष्ट करते हुए, विनोबा ने कहा, “दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान भी रखो और अपनी आवश्यकताओं को इस ढंग से संतुष्ट मत करो कि अन्य लोगों को कष्ट हो। यह एक ऐसा नियम है जिसके मानने से सुखी परिवार बनते हैं और ऐसे नियम का सम्पूर्ण समाज के हित में प्रसारण कठिन नहीं होना चाहिए। इसको तो सामान्यतः आसान और स्वभाविक मानना चाहिए। इस नियम के अनुसरण से सर्वोदय के प्रति योगदान होगा, और इससे अन्य नियमों की भी खोज होगी।.....यदि संसार में लोग दो नियमों स्वजीविका और रचनात्मक श्रम-का अनुसरण करें, तो इससे सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त होगा। मानव समाज की सृष्टि आदमी-आदमी के बीच द्वन्द्व अथवा एक-दूसरे के हितों में टकराव के लिए नहीं हो सकती....उनका समग्र चिन्तन पूर्ण विचार की ओर जाना चाहिए, न कि उनके बीच हितों के भेदभाव की ओर।²⁵ इस प्रकार विनोबा जी ने गांधी की

सर्वोदय समाज के विचार का विश्लेषण किया। सर्वोदय समाज के समग्र मूलाधार यहां प्रस्तुत है।²⁶

1. सभी सम्प्रदायों एवं धर्मों के बीच साम्प्रदायिक समजस्य की स्थापना
2. वर्ग भेदभावों का उन्मूलन तथा मद्य-निषेध का पालन
3. ग्रामीण उद्योगों का विकास, ग्रामीण सफाई एवं बेसिक शिक्षा का प्रसार
4. स्त्री-पुरुषों की प्रतिष्ठा और अधिकारों की समानता
5. आर्थिक समानता तथा कृषि-विकास
6. श्रम-संगठन तथा आदिवासियों का कल्याण
7. विद्यार्थियों, कोढ़ियों आदि को सहायता देना और
8. प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति रुचि और इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रम सर्वोदय सेवकों द्वारा हाथों में लेना।

भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महू छावनी मध्य प्रदेश में हुआ। उनके पिता का नाम रामजी सकपाल और माता का नाम भीमाबाई था। वह महार जाति के एक अछूत परिवार से थे। भीम के पिता फौज में एक अध्यापक थे। भीम बचपन में ही मातृहीन हो गये थे। लेकिन रामजी सकपाल ने भीम की शिक्षा-दीक्षा का काम भली भांति किया। उन्होंने भीम को स्वयं गणित और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान कराया। रामजी सकपाल के परिवार में धार्मिक वातावरण रहता था। वह अपने बच्चों को कबीर के दोहे सुनाते और बुद्ध तथा अन्य महात्माओं की शिक्षाओं का उपदेश देते थे। अपने पिता के नेक स्वभाव, मितव्ययिता, कठोर श्रम, सेवा-भाव, धार्मिक प्रवृत्ति और शिक्षा-प्रेम से भीम बड़े ही प्रभावित हुए थे।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् और हिन्दू समाज की विषम स्थितियों में रहते हुए भीम ने 1907 में मैट्रिक की परीक्षा बम्बई के प्रसिद्ध एलफिन्स्टन हाईस्कूल से पास की। व्यक्तिगत रूप से भीम, पारिवारिक दृष्टि से उसके पिता, भाई एवं बहिनों और सामान्यतः समस्त अछूत समुदाय के लिए यह शुभ अवसर था। तत्पश्चात् भीम ने इण्टर की परीक्षा पास की और 1912 में बी.ए. की स्नातक डिग्री बम्बई के विख्यात एलफिन्स्टन कॉलेज से हासिल की। इसके बाद भीमराव को बड़ौदा राज्य की फौज में एक लेफ्टीनेन्ट के पद पर नियुक्ति मिली। बड़ौदा के महाराजा से बी.ए. की पढ़ाई के लिए भीम को छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। इसी बीच उनके पिता का फरवरी 1913 में देहान्त हो गया, जिसके कारण भीमराव को बड़ा दुःख पहुंचा। पुनः महाराजा बड़ौदा ने भीमराव को अमेरिका में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की। उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई समाप्त कर, 1915 में एम.ए. और 1916 में पी-एच.डी. की उपाधियां प्राप्त की। भीम अमेरिका के स्वतंत्र एवं स्वच्छ वातावरण से बड़े प्रभावित हुए और अब्राहम लिंकन से जीवन की शिक्षा ग्रहण की। अमेरिका में अपनी शिक्षा समाप्त कर, डॉ. अम्बेडकर 1916 में ही लंदन पहुंच गये। उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स से एम.एस-ग्रेज-इन से बाॅपर-एट-लॉ की डिग्रियां 1921 में डी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की। डॉ. अम्बेडकर जर्मनी के बॉन विश्वविद्यालय में भी अध्ययन करने के लिए गये, पर धनाभाव के कारण वह भारत वापस आ गये। इस प्रकार एक अछूत बालक भीम ने देश-विदेशों में उच्चतम शिक्षा प्राप्त की। लेकिन वह जीवन पर्यन्त भारतीयों से ओतप्रोत रहे। वह विदेशों की चकाचौंध में नहीं फंसे और अपने पददलित समाज की सेवा में जुट गये।

अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी में अध्ययन करने के पश्चात् डॉ. अम्बेडकर में अदम्य साहस तथा आत्म-विश्वास का विकास हुआ। जनवरी 1920 में उन्होंने 'मूक नायक' पत्रिका प्रारम्भ की, जिसके माध्यम से उन्होंने अछूतों की शोचनीय स्थिति की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद अप्रैल 1927 में 'बहिष्कृत भारत' मराठी पत्रिका का संचालन किया। उनकी सराहनीय सामाजिक सेवाओं के लिए उन्हें 1927 में ही बम्बई विधान परिषद् का सदस्य मनोनीति किया गया। डॉ. अम्बेडकर विधान परिषद् के बाहर भी सक्रिय थे। उन्होंने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का संगठन तथा नेतृत्व किया। सन् 1930 के आस-पास जब भारतीय लोगों को ब्रिटेन की ओर से सत्ता एवं प्रशासन हस्तान्तरण की बातचीत चलनी प्रारम्भ हुई तो डॉ. अम्बेडकर ने अछूतों के हितों का प्रतिनिधित्व किया और 1930-1932 के दौरान लंदन में हुई गोलमेज परिषदों में भाग लिया, जहां वह गांधीजी के साथ राजनीतिक और कुछ सामाजिक एवं धार्मिक विवादों में पड़ गये। तभी से अम्बेडकर और गांधी में 'राष्ट्रीय आन्दोलन' के दौरान द्वन्द्व चलता रहा। पृथक् निर्वाचन व्यवस्था' को लेकर तो गांधीजी ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया, जिसके कारण डॉ. अम्बेडकर संकट में फंस गये। लेकिन 1932 में 'पूना-पैक्ट' के अन्तर्गत जब संयुक्त-निर्वाचन और सीटों की आरक्षण नीति तय हुई, तब वह संकट तो टल गया, किन्तु उनके बीच वैचारिक मतभेद विभिन्न रूपों में चलते रहे।

डॉ. अम्बेडकर ने बम्बई के एल्फिन्स्टन कॉलेज में प्राध्यापक का काम किया और 1935 में, उन्हें गवर्नमेण्ट लॉ कॉलेज, बम्बई का प्राचार्य नियुक्त किया गया। लेकिन वह सामाजिक जीवन में अछूतों के हितों एवं अधिकारों के लिए भी संघर्ष करते रहे। इन्हीं की प्राप्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर ने 'महाड का जल-सत्याग्रह', 'नासिक का धर्म-सत्याग्रह', 'मन्दिर प्रवेश अभियान' जैसे आन्दोलनों का सफल नेतृत्व किया और अनेक सभाओं तथा सम्मेलनों की अध्यक्षता भी की। इस प्रकार अछूतों पर हो रहे अत्याचारों, अन्यायों और सामाजिक विषमताओं तथा हिन्दू धर्म की कुरीतियों के विरुद्ध वह अपनी आवाज बुलन्द करते रहे। लेकिन यह देखते हुए कि कट्टर हिन्दुओं के मन और आचरण में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा है, डॉ. अम्बेडकर ने 13 अक्टूबर, 1935 को येवला कान्फ्रेंस में बहुत ही सोच-समझ के पश्चात् धर्मान्तरण की घोषणा कर दी, जिसके कारण समूचे भारत में तहलका मच गया। मार्च 1936 में 'जात-पात तोड़क मण्डल' ने डॉ. अम्बेडकर को अपने लाहौर में होने वाले वार्षिक सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन वह सम्मेलन स्थगित कर दिया गया, क्योंकि मण्डल के कार्यकर्ताओं ने उनके अध्यक्षीय भाषण- 'जाति का उन्मूलन' को कई जगह बदलने का प्रस्ताव रखा, जिसे डॉ. साहेब ने अस्वीकार कर दिया। यही भाषण आगे चलकर एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ।

डॉ. अम्बेडकर ने अगस्त 1936 में इंडिपेन्डेण्ट लेबर पार्टी की स्थापना की जिसके द्वारा चुनाव लड़ने के अतिरिक्त, भूमिहीनों, निर्धन खेतिहरों, कृषकों और श्रमिकों की वर्तमान आवश्यकताओं तथा कठिनाइयों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया। डॉ. साहेब ने पुराने उद्योगों के पुनर्जीवन तथा नयों को प्रारम्भ करने, छोटी-छोटी जोतों का संगठन तथा तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने, उद्योगों को सरकारी स्वामित्व एवं प्रबन्धन में लेने और मजदूरों के शोषण को रोकने पर बल दिया। फरवरी 1937 के चुनावों में लेबर पार्टी को बहुत कुछ सफलता मिली। वह श्रमिकों एवं कृषकों को संगठित करना चाहते थे। 23 जनवरी, 1938 को डॉ. अम्बेडकर ने अहमदनगर में किसानों-मजदूरों के लिए सम्मेलन को

सम्बोधित किया। उन्होंने 'अछूत रेलवे कर्मचारियों' को भी संगठित किया। एक विधायक के रूप में वह 1939-1940 के दौरान विधानसभा के अन्दर और बाहर अछूतों, किसानों-मजदूरों के हितों एवं अधिकारों की सुरक्षा करते रहे। 1941 के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने महारों एवं अन्य अछूतों की कठिनाइयों को सरकार तक पहुंचाया, ताकि उन्हें विभिन्न सेवाओं, विशेषकर पुलिस तथा सेना की नौकरियों में लिया जाए। जुलाई 1942 से 1946 तक वह गवर्नर-जनरल की एक्जीक्यूटिव काउंसिल में श्रम-मंत्री रहे। अपने कार्यकाल में डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय मजदूरों के हित में अनेक कानून बनवाये। यह बड़े गौरव की बात थी कि एक अछूत नेता ने इतने बड़े पद को भलीभांति सम्भाला। जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब पण्डित नेहरू ने उन्हें 1947 में अपनी मंत्रिपरिषद् में सम्मिलित कर लिया और इस प्रकार वह स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री बने, हालांकि पण्डित नेहरू के साथ कुछ मामलों जैसे 'हिन्दू कोड बिल' तथा 'लखनऊ सम्मेलन' के विवादों के कारण, 23 सितम्बर, 1951 को उन्होंने मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया।

16 मार्च, 1946 को केबिनेट-मिशन ने जब संविधान-सभा तथा अन्तर्कालीन सरकार की रूपरेखा सम्बन्धी योजना की घोषणा की तब डॉ. अम्बेडकर द्वारा संगठित एवं संचालित शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन ने अछूतों के हितों और अधिकारों की मांग रखी, किन्तु उनकी उपेक्षा की गई। उधर हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक झगड़ों से समूचे देश में अशान्ति एवं हिंसा का वातावरण फैल गया। भारत की एकता कायम रखने के लिए उनके प्रयास किये गये, पर 2 जुलाई, 1947 को माउण्ट बैटन योजना के अन्तर्गत भारत के दो टुकड़े हो गए, भारतीय संघ और पाकिस्तान। भारत की संविधान-सभा का प्रथम अधिवेशन 9 सितम्बर, 1946 को प्रारम्भ हुआ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष बने। इस सभा में देश के सभी गणमान्य राजनीतिज्ञ, नेता, विद्वान और वकील थे। डॉ० अम्बेडकर भी संविधान-सभा के न केवल एक सदस्य थे, अपितु नेहरू तथा राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं ने उन्हें संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनवाया, ताकि उनकी विधिक योग्यता और अनुभवों का संविधान के निर्माण में सदुपयोग हो सके। 1949 के अनन्त तक संविधान सभा की अनेक बैठकें हुईं जिनमें डॉ. अम्बेडकर ने सक्रिय भाग लिया। उन्होंने नये संविधान को एक सामाजिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया। उसमें संघात्मक, धर्म-निरपेक्ष और मानववादी तत्वों को सम्मिलित किया। भारत के नये संविधान में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिन्तन, राजनीतिक सूझ-बूझ और विधिक विद्वत्ता की छाप मिलती है। संविधान सभा में ही उन्होंने अछूत, कमजोर और पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए आरक्षण के प्रावधान सुरक्षित करवाये, हालांकि 26 जनवरी, 1950 के पश्चात् जब नया संविधान लागू हुआ, आरक्षण-नीति राजनीति में बदल गई है, जिसकी डॉ. अम्बेडकर ने कड़ी आलोचना की थी।

अपनी योग्यता एवं उपलब्धियों के कारण डॉ. अम्बेडकर को विभिन्न स्थानों में सम्मानित किया गया। 5 जून, 1952 को उन्हें कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने 'डॉक्टर ऑफ लॉज' की उपाधि प्रदान की और 12 जनवरी, 1953 को हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय ने भी उन्हें डी.लिट की उपाधि से विभूषित किया। डॉ. अम्बेडकर गम्भीर विद्वान, सशक्त वक्ता और चिन्तनशील विद्यानुरागी थे। उन्हें पुस्तकों से अत्यधिक प्रेम था। उनके निजी पुस्तकालय में अनेक दुर्लभ ग्रन्थ थे और लाखों की संख्या में सभी विषयों से सम्बन्धित पुस्तकें थीं। उनका अपने मित्रों एवं अनुयायियों से कहना था कि "अपने ज्ञान में

वृद्धि करो, संसार आपको मान्यता अवश्य देगा।” नेहरू मंत्रि-मण्डल से त्याग-पत्र देने के बाद डॉ. अम्बेडकर विद्या-अध्ययन में लीन हो गये और समाज के कमजोर तथा पिछड़े लोगों की भलाई के लिए भारत के कोने-कोने में जाकर उन्हें जाग्रत करने के काम में जुट गये। उधर उन्होंने अपनी धर्मान्तरण घोषणा को साकार रूप देने के लिए न केवल बुद्ध और बुद्धिज्म का गहन अध्ययन किया, बल्कि वह बौद्ध देशों-लंका, जापान, वर्मा, कम्बोडिया, नेपाल आदि में भ्रमण करने गये। 14 अक्टूबर, 1956 को वह अपने लाखों मित्रों एवं अनुयायियों सहित नागपुर में बौद्ध बन गये। इस प्रकार उन्होंने अपनी उस उद्घोषणा को पूरा कर दिखाया जब उन्होंने कहा था कि हिन्दू धर्म में पैदा न होना उनके बस की बात नहीं थी, पर हिन्दू धर्म में रहकर वह मरेंगे नहीं।

डॉ. अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन देश-प्रेम एवं जन्म-कल्याण की भावनों से ओतप्रोत था। वह ईश्वर, नित्य आत्मा, स्वर्ग-नरक, आवागमन, मोक्ष आदि में विश्वास नहीं करते थे, फिर भी धर्म में उनकी अटूट आस्था थी। मानव धर्म के रूप में बुद्ध का धर्म ही, उनके लिए सच्चा धर्म था। उनमें अदय साहस, धैर्य एवं ज्ञान का अद्भुत सम्मिश्रण था। उनमें भाषण की निर्भीकता, कर्तव्य की निष्ठा एवं ईमानदारी, हृदय की स्पष्टता और मन की शुद्धता थी। वह नवीन समाज व्यवस्था, नवीन भारत के पक्षधर थे। डॉ. अम्बेडकर भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के मौलिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारकों में प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं। उनका व्यक्तित्व ठोस एवं बहु-चर्चित रहा। वह भविष्य द्रष्टा भी थे। उन्होंने मानव से सम्बन्धित सभी विषयों पर न केवल चिन्तन किया, बल्कि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की। उनके ग्रन्थों में मनुष्य और समाज, धर्म एवं राज्य, अर्थ और राजनीति के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण तथा समीक्षा मिलती है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख यहां प्रस्तुत है :

कास्ट्स इन इंडिया (1917), स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एण्ड देअर रेमेडीज (1918), दन प्रॉब्लम ऑफ द रूपी (1923), द इवॉल्यूशन ऑफ प्राविंसियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इंडिया (1925), एनिहिलेशन ऑफ कास्ट (1937), फेडरेशन वर्सेज फ्रीडम (1939), मि. गांधी एण्ड द इम्पैन्सीपेशन ऑफ द अण्टचेबिल्स (1943), रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना (1943), थॉट्स ऑन पाकिस्तान (1940), व्हॉट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अण्टचेबिल्स (1945), हूवर दू शूद्राज? (1946), स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटिज (1947), और द बुद्ध एण्ड हिज धम्म (1957)। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र सरकार ने अंग्रेजी में एक से तेरह खंडों तक ‘डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर : रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज’ ग्रन्थमाला (1979-1994) प्रकाशित की है। उनमें डॉ. अम्बेडकर के दुर्लभ भाषण, लेख, अप्रकाशित ग्रन्थ, पत्र-व्यवहार आदि सम्मिलित हैं, जो उनके मानववादी चिन्तन तथा सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, आर्थिक और धार्मिक विचारों को अभिव्यक्त करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व में वैज्ञानिक मस्तिष्क और हृदय में मानवादी विचार थे।²⁷ वह वैज्ञानिक एवं मानववादी मूल्यों के प्रबल समर्थक थे। उनके सामाजिक चिन्तन में एक ओर वर्णवाद, जाति-प्रथा, अस्पृश्यता, असमानता और अन्याय के प्रति विद्रोह मिलता है, तो दूसरी ओर समाज की पुनर्रचना के लिए सकारात्मक तत्त्व भी सन्निहत हैं। उनके सामाजिक विचार कुछ बातों का निषेध करते हैं, तो कुछ सृजनात्मक पक्षों का समर्थन भी करते हैं, ताकि नवीन व्यवस्था की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सके। डॉ. अम्बेडकर भारतीय समाज, विशेषकर हिन्दू समाज व्यवस्था में, केवल कुछ सुधारों तक सीमित रहना नहीं

चाहते थे, बल्कि वह उसमें मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन के पक्ष में थे।²⁸

अपने क्रान्तिकारी सामाजिक चिन्तन में डॉ. अम्बेडकर ने स्त्री-सशक्तीकरण के लिए सर्वप्रथम वर्ण-व्यवस्था और उससे फलित विषमताओं एवं बुराइयों का विरोध किया।²⁹ यह व्यवस्था भले ही गुण-कर्म, श्रम-विषमताओं एवं बुराइयों का विरोध किया। यह व्यवस्था भले ही गुण-कर्म, श्रम-विभाजन, मानव-स्वभाव आदि पर आधारित कही गई हो, लेकिन उन्होंने स्पष्टतः कहा, “मेरे लिए यह चातुर्वर्ण्य जिसमें पुराने नाम जारी रखे गये हैं, धिनौनी वस्तु है, जिससे मेरा पूरा व्यक्तिगत विद्रोह करता है.....यह चातुर्वर्ण्य सामाजिक संगठन प्रणाली के रूप में अव्यावहारिक, घातक और अत्यन्त असफल रहा है।³⁰ डॉ. अम्बेडकर ने गीता के उस कथन को स्वीकार नहीं किया जिसमें यह कहा गया है कि “चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।” अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है।³¹ इस प्रकार उस सृष्टि रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अनिवाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान। इसी को वर्ण-व्यवस्था का मूलाधार माना गया जिसका उन्होंने सशक्त खण्डन किया।

वर्ण-व्यवस्था का मूलाधार सांख्य-दर्शन का त्रिगुण सिद्धान्त है। प्रत्येक व्यक्ति में तीन गुणों-सात्विक, रजस तथा तमस-का सम्मिश्रण होता है। इन्हीं के कारण व्यक्ति का स्वभाव संचालित होता है। इन गुणों में स्वाभाविक स्पर्धा एवं परिवर्तनशीलता होती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक इनके आधार पर व्यक्ति में गुणात्मक परिवर्तन होते रहते हैं। कभी एक गुण का बाहुल्य है, तो कभी दूसरे का। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा कि गुणों की स्पर्धा एवं परिवर्तनशीलता की स्थिति में व्यक्ति का स्वभाव स्थायी किस प्रकार रह पायेगा। यदि व्यक्ति की स्थिति बदलती रहती है, तो मनुष्यों को स्थायी वर्णों में बांटना उनकी प्रकृति के विरुद्ध होगा। यह कैसे सम्भव होगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार में जीवन पर्यन्त एकसा बना रहे। अतः डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में, सांख्य-दर्शन अथवा गीता यह सिद्ध नहीं कर सकती कि परिवर्तनशील प्रकृति से निर्मित आदमी सदैव ब्राह्मण या क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही बना रहेगा। इसी कारण उन्होंने चातुर्वर्ण्य को अप्राकृतिक और अव्यावहारिक बतलाया।³²

डॉ. अम्बेडकर ने यह भी नहीं माना कि वर्ण-व्यवस्था का आधार श्रम-विभाजन है, क्योंकि इसमें न केवल कृत्रिम श्रम-विभाजन मिलता है, अपितु श्रमिकों का भी स्थायी विभाजन हो जाता है। इसके अन्तर्गत श्रम तथा व्यवसाय के अनुसार हिन्दुओं में भेद-भाव, ऊंच-नीच की भावनाएं पैदा हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने कहा, वर्ण-व्यवस्था में श्रम-विभाजन व्यक्ति की स्वेच्छा एवं स्वाभाविक गुणों पर आधारित नहीं है। श्रम-विभाजन का व्यक्ति की क्षमता तथा योग्यता देखे बिना कोई मूल्य नहीं है। साथ ही, वर्ण-व्यवस्था में व्यवसाय का निर्धारण कर्म एवं क्षमता के आधार पर नहीं होता, बल्कि जन्म के आधार पर होता है, जो व्यावसायिक तथा औद्योगिक प्रगति और कार्य-कुशलता के लिए हानिकारक है।³³ डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण-व्यवस्था का खण्डन करते हुए यह कहा कि वर्ण-व्यवस्था में श्रम-विभाजन व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं पसन्द पर आधारित नहीं है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की भावनाओं एवं प्राथमिकताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका मूलाधार व्यक्ति की योग्यता नहीं है, बल्कि उसके पूर्व जन्म के कर्म माने गये हैं। यह जन्माधारित है और अपने पूर्वजों के धन्धों के अनुसरण पर ही बल देता है। अतः उस

श्रम-विभाजन और उसके अन्तर्गत निर्धारित कार्यों के करने में कोई क्षमता और कुशलता नहीं आ सकती, जिसमें न मनुष्य का मन लगता है और न ही उसकी बुद्धि ही चाहती है।³⁴

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, वर्ण-व्यवस्था आर्थिक संस्था के रूप में भी असफल रही। उसने व्यक्ति की स्वेच्छा, कार्य-कुशलता और व्यावसायिक स्वतंत्रता का हनन किया है। उन्होंने यह भी नहीं माना कि वर्ण-व्यवस्था जाति की पवित्रता एवं स्वच्छता अथवा उच्च वर्गों की रक्त शुद्धता को बनाये रखने का एक ढंग है। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि संसार में कोई भी शुद्ध जाति नहीं है। सभी जातियों (रेसिज) की उत्पत्ति विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण से हुई है।³⁵ भारत में मुश्किल से ऐसी कोई जाति या वर्ण मिलेगा, जिसमें विदेशी अंश समय-समय पर आता रहा है।³⁶ यहां की विभिन्न जातियों का मिश्रण होता रहा है। यहां तक कि हिन्दू समाज के अन्तर्गत जातियों में ब्राह्मण से लेकर चण्डाल आदि तक में परस्पर रक्त-संचार हुआ। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में, वर्ण-व्यवस्था न तो एक वंश को दूसरे वंश से पृथक् रखती है और न यह किसी वंश के रक्त की शुद्धता बनाये रखती है। यह तो एक ही वंश के व्यक्तियों को विभिन्न वर्गों अथवा वर्णों में बांट कर उन्हें ऊंच-नीच की भावना के आधार पर एक दूसरे से पृथक् रखती है।³⁷

कहा जाता है कि हिन्दू वर्ण-व्यवस्था प्लेटो की उस समाज व्यवस्था से मेल खाती है, जिसके अन्तर्गत उसने सभी व्यक्तियों को तीन वर्गों-बौद्धिक, शासक एवं मजदूर-में वर्गीकृत किया था। इस वर्गीकरण का आधार भी प्लेटो ने मनुष्य के स्वाभाविक गुणों को माना और तदनुसार काम करने के कर्तव्य-क्षेत्र निर्धारित कर दिये।³⁸ डॉ. अम्बेडकर ने प्लेटो की समाज व्यवस्था को उसी प्रकार अस्वाभाविक बतलाया जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था को। उन्होंने कहा कि प्लेटो ने मनुष्य एवं उसकी शक्तियों को एक बनावटी आधार प्रदान किया। कदाचित् प्लेटो को व्यक्ति की विलक्षणता का पता नहीं था। व्यक्ति स्वयं ही एक वर्ग होता है। मनुष्य में अनेक प्रवृत्तियां, क्रियाएं एवं प्रक्रियाएं होती रहती हैं। अतः डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, दोनों वर्ण-व्यवस्था और प्लेटो की योजना में कृत्रिम विभाजन किया गया है। उनका विभाजन प्रकृति के विपरीत है। अतः उनकी सफलता की आशा बिल्कुल निरर्थक होगा।³⁹

डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्टतः कहा कि वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन एवं सामाजिक न्याय के लिए कोई स्थान नहीं है। वर्ण-व्यवस्था ने ही जातिवाद को जन्म दिया, जो सामाजिक एकता एवं सुदृढ़ता के विपरीत पड़ता है।⁴⁰ वर्ण-व्यवस्था में आधुनिक भारतीय समाज के लिए कोई नवीन संदेश नहीं है। वह निरर्थक एवं हानिकारक सिद्ध हो चुकी है। अच्छे सामाजिक सम्बन्धों की जड़ें इसमें नहीं हैं। इस वर्ण-व्यवस्था ने चार वर्णों के लोगों के बीच एक स्तरीय, उतार-चढ़ाव की असमानता प्रतिष्ठित कर रखी है, जिसके अनुसार, ब्राह्मण सबसे उच्च है, उससे नीचे क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य तथा निम्नतम स्तर पर शूद्र है। इसके अन्तर्गत यदि ऊपर की ओर जाओ तो सम्मान-आदर है और नीचे की ओर देखो तो घृणा-अनादर है।⁴¹ डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, वर्ण-व्यवस्था अथवा जाति-प्रथा ने “जन-चेतना को नष्ट कर दिया है। उसने सार्वजनिक धर्मार्थ की भावना को भी नष्ट कर दिया है। जाति प्रथा के कारण किसी भी विषय पर सार्वजनिक सहमति का होना असंभव हो गया है।⁴² जाति-प्रथा अथवा वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में, डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन का सार निम्नलिखित है⁴² -

1. “जाति-प्रथा ने हिन्दुओं को बरबाद किया है।

2. “हिन्दू समाज को चातुर्वर्ण्य के आधार पर पुनर्गठित करना असंभव है। क्योंकि वर्ण-व्यवस्था रिसते हुए एक बर्तन की तरह है या उस आदमी की तरह है, जो नाक की नोक पर दौड़ रहा है। यह अपने गुणों के कारण अपने को कायम रखने में अक्षम है तथा इसमें जाति-व्यवस्था के रूप में विकृत हो जाने की प्रवृत्ति अन्तर्निहित है, जबकि वर्ण का उल्लंघन करने पर कानूनी रोक नहीं लगती।
3. “चातुर्वर्ण्य के आधार पर हिन्दू समाज को पुनर्गठित करना हानिकारक है, क्योंकि वर्ण-व्यवस्था ज्ञान प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर लोगों को निम्नकोटि का बनाती है और अस्त्र धारण करने से वंचित कर, उन्हें दुर्बल बनाती है।
4. “हिन्दू समाज को ऐसे धर्म के आधार पर पुनर्गठित करना चाहिए, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त को मान्यता दी जाए।
5. “उक्त लक्ष्य को पाने के लिए, जाति और वर्ण के पीछे धर्मिक पवित्रता की भावना को नष्ट किया जाना चाहिए।
6. “जाति और वर्ण की पवित्रता तभी नष्ट हो सकती है, जब शास्त्रों की दिव्य-सत्ता को अलग कर दिया जाए।

जहां तक जाति-व्यवस्था के उन्मूलन का प्रश्न है, डॉ. अम्बेडकर ने यह पाया कि अनेक समाज सुधारकों, विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने बहुत से सुझाव दिये हैं जैसे उप-जातियों को नष्ट रके जातियों की संख्या कम करना, फिर अपनी-अपनी उन बड़ी जातियों में मिल जाना जिनके साथ उनके रहन-सहन, खान-पान एवं शादी-विवाह की समानताएं विद्यमान हैं।⁴³ कुछ का कहना है कि अन्तर्जातीय भोजों द्वारा विभिन्न प्रकार की जातियों को साथ-साथ बैठकर प्रेमपूर्वक भोजन करने से परस्पर सौहार्द्र में वृद्धि होगी। कई विद्वानों ने अन्तर्जातीय विवाहों को जाति-प्रथा के उन्मूलन का सही आधार माना, क्योंकि रक्त-सम्बन्धों से ही स्वाभाविक एकता और पारिवारिक भागीदारी संभव हो सकती है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने इन सब उपायों पर विचार करने के बाद, यह कहा कि ये सब तरीके अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुए। इसका कारण हिन्दुओं के दैवीय एवं पवित्र विश्वास तथा धारणाएं हैं, जो उन्हें उप-जातियों को तोड़ने, अन्तर्जातीय भोज एवं अन्तर्जातीय विवाह करने से रोकती हैं। वर्ण-व्यवस्था को अकाट्य, ईश्वरीय डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा कि “धार्मिक शास्त्रों के प्रति पवित्रता की भावना नष्ट की जाये, क्योंकि हिन्दुओं के कर्म एवं व्यवहार उनकी धार्मिक धारणाओं के ही परिणाम हैं। शास्त्र मनुष्य को अमुक व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। हिन्दू अपने व्यवहार को उस समय तक नहीं बदल सकते, जब तक शास्त्रों के प्रति पवित्रता के भाव का अन्त नहीं किया जायेगा, क्योंकि उका व्यवहार उनके धार्मिक ग्रंथों पर ही आधारित हैं।⁴⁴ उन्होंने यह भी बल देकर कहा कि “प्रत्येक पुरुष और स्त्री को शास्त्रों के बंधन से मुक्त कराइए, शास्त्रों द्वारा प्रतिष्ठापित हानिकार धारणाओं से उनके मस्तिष्क का पिंड छुड़ाइए, फिर देखिए, वह आपके कहे बिना अपने आप अन्तर्जातीय खान-पान तथा अन्तर्जातीय विवाह का आयोजन करेगा/करेगी।⁴⁵

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिन्तन का यह विवेचन अभी तक वर्ण-व्यवस्था की कमजोरियों और उत्पन्न जाति-प्रथा के कुप्रभावों तक सीमित रहा।⁴⁶ वर्ण और जाति पर आधारित समाज उन व्यवहारों को जन्म देता है जो व्यक्ति की क्षमता, योग्यता तथा विलक्षणता को अवरूद्ध करता है। डॉ. अम्बेडकर जैसे मानववादी चिन्तक ने वर्ण एवं जाति से सम्बन्धित समाज व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। उनके सामाजिक चिन्तन का यह

निषेधात्मक पक्ष है। सकारात्मक दृष्टि से, उन्होंने क्या प्रतिपादित किया? “यदि आप मुझ से पूछते हैं तो मेरा आदर्श समाज वह होगा जो स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव पर आधारित हो”, ऐसा उनका स्पष्ट उत्तर था।⁴⁷ ये सदा गूंजने एवं अमर रहने वाले शब्द उन्हें बहुत प्रिय थे। डॉ. अम्बेडकर ने इन मधुर शब्दों-स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व का अनुकरण फ्रांस की क्रांति से नहीं किया, वरन् बुद्ध की शिक्षाओं से ग्रहण किया। उन्होंने कहा, “विधेयात्मक दृष्टि से, मेरा समाज-दर्शन तीन शब्दों में निहित है- स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व। लेकिन किसी को ऐसा नहीं कहना चाहिए कि मैंने अपने दर्शन को फ्रांस की क्रांति में लिया है। मेरे दर्शन की जड़े धर्म में हैं, न कि राजनीति-विज्ञान में। मैंने पने महान् गुरु बुद्ध की शिक्षाओं से इनका अनुकरण किया है।⁴⁸

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिन्तन के मूल तत्त्व स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व, जनतंत्र आदि हैं जिनमें मानवीय गौरव की ध्वनि गूंजती है। ये बौद्धिक प्रेरणा और मानव सेवा के स्रोत हैं। इन्हीं के आधार पर उन्होंने भारत में एक नवीन समाज व्यवस्था की बात कही, जो वर्ण, जाति तथा अस्पृश्यता से भिन्न मानववादी मूल्यों को श्रेष्ठ मानती है। स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व और जनतंत्र से सम्बन्धित डॉ. अम्बेडकर के विचार इस प्रकार हैं:

स्वतंत्रता-“स्वतंत्र भ्रमण, जीवन और सम्पत्ति के अर्थ में” भारत में स्वतंत्रता आवश्यक है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि सभी पुरुषों एवं स्त्रियों को स्वतंत्र भ्रमण तथा आवागमन की सुविधा होनी चाहिए। साथ ही उन्होंने निजी सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन किया। जीव और स्वास्थ्य की सुरक्षा उसी समयस भलीभांति संभव हो सकती है, जब आदमी को निजी सम्पत्ति को रखने और प्रयोग करने का अधिकार हो। उनका यह भी मानना था कि स्वतंत्रता एवं स्वस्थ जीवन उसी समय सुलभ होगा, जब व्यक्ति को अपने मन पसन्द धन्धे करने की स्वतंत्रता हो। न केवल इतना ही, वैयक्तिक स्वतंत्रता सामाजिक आर्थिक तंत्र की कार्य-कुशलता को बढ़ाने में भी सहायक होती है। इसका अर्थ है कि डॉ. अम्बेडकर के नये समाज में, कुछ सीमा तक स्वतंत्र आर्थिक क्रियाओं का स्थान भी होगा। इस प्रकार, जैसा कि वह सोचते थे, यदि व्यक्तियों की शक्तियों को प्रभावशाली तथा सक्षम ढंग से उपयोग में लाया जाए तो निश्चय ही स्वतंत्रता का अधिकार लाभदायक सिद्ध होगा।⁴⁹ अपने नये समाज में, डॉ. अम्बेडकर ने राजनीतिक स्वतंत्रता-दल बनाने, चुनाव लड़ने, मताधिकार का प्रयोग करने और विभिन्न रूपों में संगठित होने, प्रचार तथा अभिव्यक्ति करने का प्रबल समर्थन किया। वह प्रायः सभी तरह की स्वतंत्रताओं को चाहते थे, ताकि व्यक्ति और समाज दोनों का चहुंमुखी विकास हो सके।

एक आदर्श समाज संगठन के लिए डॉ. अम्बेडकर धार्मिक स्वतंत्रता को भी महत्वपूर्ण स्थान देते थे। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म-धारण एवं धर्म-प्रचार की स्वतंत्रता दी जानी आवश्यक है। सभी नागरिकों को धार्मिक संस्थाएं निर्मित करने का अधिकार भी होना चाहिए। किसी व्यक्ति या समुदाय के साथ धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। सुखी वैयक्तिक जीवन और सामाजिक एकता के लिए डॉ. अम्बेडकर धर्म को अति आवश्यक मानते थे, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से, वह राज्य के धर्म-निरपेक्ष स्वरूप का ही समर्थन करते थे। धर्म-निरपेक्ष राज्य को किसी धर्म-विशेष पर बल नहीं देना चाहिए। राज्य की दृष्टि में, सभी धर्मावलम्बी समान होने चाहिए।⁵⁰ इस प्रकार यह स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की समृद्धि, संगठन और शक्ति के लिए सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं के पक्ष में थे।

समानता- डॉ. अम्बेडकर समता के सिद्धान्त के वैचारिक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों में महत्व देते थे। उन्होंने यह माना कि सब मनुष्य समान हैं। स्त्री-पुरुष दोनों को अपने संपूर्ण विकास को पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वे वैचारिक समता को महत्वपूर्ण समझते थे। समता का आदर्श, बिल्कुल काल्पनिक हो सकता है, फिर भी व्यावहारिक रूप में समता की भावना को प्रत्येक व्यक्ति के जीन का अंग होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, मनुष्य की भौतिक एवं मानसिक शक्ति तीन बातों पर निर्भर होती है- (क) शारीरिक वंश परम्परा (ख) सामाजिक गठन जैसे माता-पिता का प्यार, शिक्षा, वैज्ञानिक ज्ञान एवं वे सभी वस्तुएं जो एक असभ्य अवस्था से सभ्यता की ओर ले जाती हैं, और (ग) व्यक्ति के स्वयं के प्रयत्न। इन सब बातों में लोग निस्संदेह असमान होते हैं। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने यहां एक प्रश्न किया “क्या सभी मनुष्यों के साथ असमानता का व्यवहार करना चाहिए क्योंकि वे असमान हैं?” उन्होंने स्पष्ट किया कि “जहां तक व्यक्तिगत प्रयत्नों का सम्बन्ध है, उनको भिन्न अथवा असमान माना जा सकता है, किन्तु लोगों को अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं शक्ति को प्रदर्शित करने का अवसर तो दिया जाना चाहिए, ताकि वे अपने को प्रगतिशील बना लें और समाज में कुछ योगदान कर सकें।”⁵¹

यदि व्यक्तियों को असमान ही समझ कर व्यवहार किया जाए, तो उनकी क्या दशा होगी? डॉ. अम्बेडकर कहते थे कि यदि ऐसा ही ठीक समझा जाए, तो जिन व्यक्तियों के पक्ष में जन्म, धन, शिक्षा, परिवार, नाम एवं व्यावसायिक सम्बन्ध हैं, वे ही लोग मानव दौड़ में प्रथम आयेंगे। उन्हीं को सुअवसर प्राप्त होंगे। लेकिन इन आधारों पर व्यक्तियों का चुनाव करना योग्यतानुसार नहीं होगा। यह एक कृत्रिम चुनाव होगा, जो विशेष प्रतिष्ठा के आधार पर सम्पन्न किया जायेगा। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि से चुनाव हमेशा योग्यता के आधार पर ही होना चाहिए, अन्यथा सामाजिक प्रजातंत्र एवं मानववाद के प्रति घोर अन्याय होगा। अतः यदि वैयक्तिक प्रयत्नों में हम व्यक्तियों को असमान समझें, तो कम-से-कम सामाजिक सुविधाओं के क्षेत्र में उन्हें समान समझना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए। जहां तक संभव हो, मनुष्यों को एक दूसरे के साथ समता का व्यवहार करना चाहिए।⁵² डॉ. अम्बेडकर ने यह भी कहा कि वे लोग, जो बिना सुविधाओं के आगे नहीं बढ़ सकते, उन्हें आवश्यक रूप से सुविधाएं दी जानी चाहिए। ऐसा कार्य न्याय तथा निष्पक्षता से किया जाए, तो बहुत अच्छा होगा। उन्होंने अवसरों की एकता पर बल नहीं दिया, अपितु प्राथमिकताओं की समता को न्यायोचित स्थान दिया। यदि कोई समाज अपने सदस्यों को प्रगतिशील, उत्तम और उत्तरदायी बनाना चाहती है, तो यह समता को आधार मानकर ही संभव हो सकता है, इसलिए नहीं कि सब लोग समान हैं, बल्कि इसलिए कि उनका न्यायसंगत विभाजन करना असम्भव है।⁵³

भ्रातृत्व- परम्परावादी दृष्टिकोण के अनुसार, भ्रातृत्व का अर्थ ‘दान’ या ‘दया’ है।⁵⁴ इसमें स्त्रियों के प्रति भी भाईचारा या बहना की भावना निहित है। ईसाई धर्म का आदर्श कि “अपने पड़ोसियों को प्रेम करो” अथवा “प्राणी-मात्र पर दया करो” मानव भ्रातृत्व की ओर संकेत करता, पर यह तभी संभव होगा, जब आदमी ईश्वर में विश्वास करे। डॉ. अम्बेडकर ने भ्रातृत्व के इन अर्थों को नहीं माना और कहा कि भ्रातृत्व का आदर्श मुख्यतः सामाजिक है, न कि ईश्वरवादी। उन्हीं के शब्दों में, “आदर्श समाज प्रगतिशील होना चाहिए। उसमें ऐसी भरपूर सरणियां होनी चाहिए कि वह समाज के एक हिस्से में हुए परिवर्तन की सूचना अन्य हिस्सों को दे दें। आदर्श समाज में अनेक प्रकार के हित होने चाहिए, जिन पर लोग सोच-समझकर

विचार-विमर्श करें और उनके बारे में एक दूसरे को बताएं और सब उसमें हिस्सा लें। समाज में विभिन्न लोगों के बीच सम्पर्क के ऐसे बहुविध और निर्विवाद बिन्दु होने चाहिए, जहां साहचर्य या संगठन के अन्य रूपों में भी संवाद हो सके। दूसरे शब्दों में, समाज के भीतर संपर्क का सर्वत्र प्रसार होना चाहिए। इसी को भ्रातृत्व कहा जाता है और यह प्रजातंत्र का दूसरा नाम है।⁵⁵

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. यंग इंडिया, दिसम्बर 31, 1931
2. जाटव, डॉ. डी.आर., गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, क्षमता साहित्य सदन, जयपुर (राजस्थान), पृ. 10
3. यंग इंडिया, अक्टूबर 10, 1928
4. हरिजन, अक्टूबर 20, 1940
5. पारसनाथ द्विवेदी, भारतीय दर्शन (मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, 1973) पृ. 362-363
6. वही, पृ. 364-365
7. जाटव, डॉ. डी.आर., गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 11
8. गाँधी, वर्ण-व्यवस्था, नवजीवन, अहमदाबाद, 1954, पृ. 3
9. हरिजन, जुलाई 18, 1936 (देखें 'वर्ण-व्यवस्था' नामक गाँधीजी की पुस्तक जिसमें उनकी मूल गुजराती रचनाएं संगृहीत हैं)।
10. हरिजन, जुलाई 18, 1936
11. यंग इंडिया, दिसम्बर 29, 1927
12. आर.ए., सोशलिस्ट थॉट इन मॉडर्न इंडिया मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1974, पृ. 46
13. वही, पृ. 46, 48
14. गाँधी, सर्वोदय नवजीवन, अहमदाबाद, 1958, पृ. 57
15. यंग इंडिया, नवम्बर, 12 1927, हरिजन, सितम्बर 28, 1934
16. यंग इंडिया, अक्टूबर 20, 1927
17. मोहनदास करमचंद गाँधी, सर्वोदय, नवजीवन, अहमदाबाद, 1957 पृ. 7
18. वही, पृ. 8
19. वही, पृ. 12
20. वही, पृ. 27
21. जाटव, डॉ. डी.आर., गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 14
22. गाँधी, सर्वोदय, पूर्वोक्त, पृ. 43-44
23. वही, पृ. 56-57
24. जाटव, डॉ. डी.आर., गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 15
25. वही, पृ. 64-65
26. जाटव, डॉ. डी.आर., गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 16
27. वही, पृ. 69
28. जाटव, डी.आर. डॉ. अम्बेडकर-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993
29. धनंजय कीर, डॉ. अम्बेडकर-लाइफ एण्ड मिशन, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1990।
30. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 1, (भारत सरकार, नई दिल्ली, 1993) पृ. 81
31. श्रीमद्भगवद्गीता
32. बी.आर.अम्बेडकर बुद्ध एण्ड द फ्यूचर ऑफ हिज रिलिजन, (लेख, ख 1950), पैराप
33. बी.आर.अम्बेडकर एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, (अम्बेडकर स्कूल ऑफ थॉट, अमृतसर, 1944) पृ. 19-20
34. वही, पृ. 20-21

35. वही, पृ. 21-22
36. एस.राधाकृष्ण, द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ (ऐलिन एण्ड अनविन, लंदन, 1949) पृ. 99
37. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर. एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ. 23, 24 व 25
38. जाटव, डॉ. डी.आर. गाँधी लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 71
39. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर. एतिहिनेशन ऑफ काण्ट, पूर्वोक्त, पृ. 43-44
40. वही, परिशिष्ट 2, पृ. 21
41. बी.आर.अम्बेडकर, हू ववर द शूद्राज?, (थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1947) पृ. 8
42. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 1, पृ. 77
43. जाटव, डॉ. डी.आर. गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 71-72
44. एनिहिलेशन ऑफ कास्ट पृ. 59
45. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 1 पृ. 92
46. जाटव, डॉ. डी.आर. गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 73
47. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर., एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ. 38
48. बी.आर.अम्बेडकर दिनांक 3 अक्टूबर, 1954 को ऑल इंडिया रेडियो द्वारा प्रसारित 'माई पर्सनल फिलॉसफी' व्याख्यानमाला में उनकी वार्ता से।
49. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर. एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ. 38-39
50. अम्बेडकर, बी.आर. स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटिज, थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1947 पृ. 11-12
51. अम्बेडकर, बी.आर., एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ. 39
52. वही, पृ. 39-40
53. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर. वहाँट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अण्टचेबिल्स, थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1946, पृ. 137
54. जाटव, डॉ. डी.आर. गाँधी, लोहिया और अम्बेडकर, पूर्वोक्त, पृ. 75
55. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर., एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ. 40

रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

● राजकुमार वर्मा
●● अखिलेश शुक्ल

सारांश- भारत ग्रामों का देश है। यहाँ की जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत हिस्सा ग्रामों में रहता है। महात्मा गांधी का विचार था कि असली भारत या भारत की आत्मा गाँवों में रहती है। महात्मा गांधी के समूचे चिंतन एवं दर्शन का केन्द्र गाँव ही रहे हैं। आज भी भारतीय गाँव एक ओर अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी, रूढ़िवादिता से ग्रस्त है तो दूसरी ओर इन गाँवों में मूलभूत आवश्यक सुविधाएँ तथा चिकित्सा, संचार, विद्युत, पेयजल एवं शिक्षा का अभाव है। आज भी महती आवश्यकता है, कि विकास की समूची संरचना गाँव को केन्द्र मानकर की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में विकास की समस्त योजनाएँ ग्रामों से केन्द्र की ओर बनना अति आवश्यक है। पंचायत राज प्रजातंत्र और विकास में गाँवों की सहभागिता और सक्रियता को सर्वाधिक ताकतवर माना गया है। एकदम गाँव से जुड़े जनप्रतिनिधि जब अपने क्षेत्र की विकास योजनाओं और कार्यक्रमों में प्रभावशाली भूमिका निभा सकेंगे। प्रस्तुत शोध पत्र में रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द- पंचायतीराज व्यवस्था, जनप्रतिनिधि, भूमिका, सामाजिक प्रस्थिति

शोध क्षेत्र रीवा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा माना जाता रहा है। इस अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि पंचायती राज व्यवस्था में शोध क्षेत्र के जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति कैसी है। कोई भी शोध कार्य सही अर्थों में तभी प्रतिबिम्बित होता है, जब शोधार्थी द्वारा उस समस्या की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन किया जाय। शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन में उपयोग किये गए शोध उपकरणों द्वारा प्राप्त जानकारी एवं तथ्यों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध किया गया है तथा विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

शोध विधियाँ एवं शोध उपकरण- किसी भी शोध कार्य को पूर्ण करने के लिये विभिन्न प्रकार की शोध विधियों का उपयोग किया जाता है। ये विधियाँ मुख्यतः दो बातों पर निर्भर होती हैं, पहला शोध कार्य की प्रगति व उसके उद्देश्यों की प्राप्ति एवं दूसरा शोध कार्य में शोध कार्य की अवधि।

शोध विधियाँ- सम्बंधित शोध अध्ययन हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया गया है-

(अ) सर्वेक्षण विधि- सामाजिक अनुसंधानों में सर्वेक्षण विधि का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। सर्वेक्षण विधि के द्वारा गुणात्मक एवं संख्यात्मक दोनों ही प्रकार की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अपने अनुसंधान कार्य में शोधार्थी ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। (ब) अवलोकन विधि- रीवा जिले में पंचायती राज व्यवस्था में

- अतिथि विद्वान, समाजशास्त्र, शासकीय स्नातक महाविद्यालय, करैरा, जिला शिवपुरी (म.प्र.)
- प्राध्यापक, समाजशास्त्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश

जनप्रतिनिधियों की सामाजिक स्थिति का अवलोकन करना शोधार्थी के लिये आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी था। रीवा जिले में पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत तीन स्तरीय पंचायतों का गठन किया गया है, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में जन प्रतिनिधियों की भूमिका, ग्रामीण नेतृत्व की वास्तविक स्थिति, जन प्रतिनिधियों को शासन द्वारा मिल रहे प्रोत्साहन एवं जनप्रतिनिधियों की प्रस्थिति का वास्तविक मूल्यांकन अवलोकन के द्वारा ही संभव है।

(स) अभिलेख अध्ययन विधि- शोध कार्य की तथ्यात्मक जानकारी हेतु अभिलेख अध्ययन विधि एक महत्वपूर्ण विधि है। अभिलेख अध्ययन से तात्पर्य, शोध समस्या से सम्बंधित उन समस्त अभिलेखों, पुस्तकों ज्ञान कोषों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं, शोध-पत्रों, प्रकाशित या अप्रकाशित शोध प्रबन्धों से है, जिनके अध्ययन से शोधार्थी को अपने शोध समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं शोध कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता प्राप्त होती है।

न्यादर्श - शोधार्थी ने विषय के अंतर्गत रीवा जिले के सभी 9 विकासखण्डों एवं सभी 11 नगर पंचायतों को न्यादर्श में चयनित किया है। तथा न्यादर्श में चयनित प्रत्येक विकासखण्ड से 10-10 ग्राम पंचायत के सरपंचों कुल मिलाकर 90 सरपंचों, प्रत्येक विकासखण्ड से 10-10 जनपद पंचायत सदस्यों, अध्यक्षों कुल मिलाकर 90 जनपद सदस्यों, अध्यक्षों, प्रत्येक विकासखण्ड से 20-20 नागरिकों कुल मिलाकर 180 नागरिकों, प्रत्येक विकासखण्ड से 5-5 कर्मचारियों एवं अधिकारियों कुल मिलाकर 45 कर्मचारियों एवं अधिकारियों तथा प्रत्येक नगर पंचायत से 10-10 नगर पंचायत सदस्यों, अध्यक्षों कुल मिलाकर 110 नगर पंचायत सदस्यों, अध्यक्षों को विस्तृत शोध सर्वेक्षण हेतु न्यादर्श में चयनित किया है। शोधार्थी ने सभी न्यादर्शों का चयन दैव-निर्दर्शन विधि द्वारा किया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या- शोध क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भूमिका के अध्ययन हेतु शोधार्थी ने कुछ शोध उपकरणों की सहायता ली, जिसके द्वारा एकत्रित तथ्यों का सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा वस्तुस्थिति की जानकारी, प्राप्त की गयी। शोधार्थी ने अपने शोध अध्ययन में कुछ शोध उपकरणों का उपयोग किया है, वे इस प्रकार हैं-

तालिका क्रमांक-01

पंचायती राज व्यवस्था में रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की
सामाजिक प्रस्थिति का अध्ययन
(ग्राम पंचायत के सरपंचों के साक्षात्कार पत्रक के आधार पर)

क्र.	विकासखण्ड का नाम	न्यादर्श में चयनित ग्राम पंचायत के सरपंचों की संख्या	रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति					
			ठीक है		ठीक नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	10	05	50.00	05	50.00	00	00.00
2.	रायपुर कचुलियान	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
3.	गंगेव	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
4.	सिरमौर	10	04	40.00	06	60.00	00	00.00
5.	मऊगंज	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
6.	नईगढ़ी	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
7.	हनुमना	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
8.	त्यांथर	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
9.	जवा	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
	योग	90	32	35.36	51	56.67	07	07.77

उपरोक्त तालिका क्रमांक-01 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड में न्यादर्श में चयनित 10-10 ग्राम पंचायत के सरपंचों कुल मिलाकर 90 सरपंचों से शोध क्षेत्र में

जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति सम्बन्धी जानकारी का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक-01 के आंकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श में चयनित कुल 90 सरपंचों में से 32 सरपंच यह मानते हैं, कि रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। तथा 51 सरपंचों के अनुसार जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। जबकि 7 सरपंचों ने कहा कि उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है। इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि शोध क्षेत्र के 35.36 प्रतिशत सरपंच यह मानते हैं, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है जबकि 56.67 प्रतिशत सरपंचों के अनुसार जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है, साथ ही 7.77 प्रतिशत सरपंचों ने कहा कि उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है।

तालिका क्रमांक-02

पंचायती राज व्यवस्था में रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति का अध्ययन
(जनपद पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों के साक्षात्कार पत्रक के आधार पर)

क्र.	विकासखण्ड का नाम	न्यादर्श में चयनित जनपद पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों की संख्या	रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति					
			ठीक है		ठीक नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
2.	रायपुर कचुलियान	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
3.	गंगेव	10	03	30.00	07	70.00	00	00.00
4.	सिरमौर	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
5.	मऊगंज	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
6.	नईगढ़ी	10	02	20.00	07	70.00	01	10.00
7.	हुनुमाना	10	02	20.00	07	70.00	01	10.00
8.	त्यौधर	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
9.	जवा	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
	योग	90	28	31.11	54	60.00	08	08.89

उपरोक्त तालिका क्रमांक 02 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 10-10 जनपद पंचायत के सदस्यों/अध्यक्षों कुल मिलाकर 90 जनपद सदस्यों/अध्यक्षों से शोध क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति सम्बन्धी जानकारी का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 02 के आंकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श में चयनित कुल 90 जनपद सदस्यों/अध्यक्षों में से 28 जनपद सदस्यों/अध्यक्षों का यह मानना है, कि रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है जबकि 54 जनपद सदस्यों/अध्यक्षों का यह मानना है, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। तथा 08 जनपद सदस्यों/अध्यक्षों के अनुसार उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है। इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 31.11 प्रतिशत जनपद सदस्यों/अध्यक्षों का मानना है, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। जबकि 60.00 प्रतिशत जनपद सदस्यों/अध्यक्षों के अनुसार जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है तथा 08.89 प्रतिशत जनपद सदस्यों/अध्यक्षों ने कहा कि उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है।

तालिका क्रमांक-03
पंचायती राज व्यवस्था में रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति का
अध्ययन
(नगर पंचायत के सदस्यों/अध्यक्षों के साक्षात्कार पत्रक के आधार पर)

क्र.	नगर पंचायत का नाम	न्यादर्श में चयनित नगर पंचायत के सदस्यों/अध्यक्षों की संख्या	रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति					
			ठीक है		ठीक नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	गोविन्दगढ़	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
2.	गुड्ड	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
3.	बैकुण्ठपुर	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
4.	मनिगवा	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
5.	सिरमौर	10	04	40.00	04	40.00	02	20.00
6.	मऊगंज	10	03	30.00	06	60.00	01	10.00
7.	हनुमना	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
8.	सेमरिया	10	04	40.00	04	40.00	02	20.00
9.	नईगढ़ी	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
10.	त्योथर	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
11.	चाकघाट	10	04	40.00	05	50.00	01	10.00
	योग	110	41	37.27	56	50.90	13	11.83

उपरोक्त तालिका क्रमांक-03 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक नगर पंचायत से न्यादर्श में चयनित 10-10 नगर पंचायत के सदस्यों/अध्यक्षों कुल मिलाकर 110 नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों से शोध क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति सम्बंधी जानकारी का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 03 के आंकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श में चयनित कुल 110 नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों में से 41 नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों का यह मानना है, कि रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है, जबकि 56 नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों का मानना है, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। तथा 13 नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों का मानना है कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है। इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि शोध क्षेत्र के 37.27 प्रतिशत नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों का मानना है, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। जबकि 50.90 प्रतिशत नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों के अनुसार जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है तथा 11.83 प्रतिशत नगर पंचायत सदस्यों/अध्यक्षों ने कहा उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है।

तालिका क्रमांक-04
पंचायती राज व्यवस्था में रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक
प्रस्थिति का अध्ययन
(सामान्य नागरिकों के प्रश्नावली पत्रक के आधार पर)

क्र.	विकासखण्ड का नाम	न्यादर्श में चयनित नागरिकों की संख्या	रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति					
			ठीक है		ठीक नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	20	07	35.00	10	50.00	03	15.00
2.	रायपुर कचुलियान	20	06	30.00	11	55.00	03	15.00
3.	गंगेव	20	07	35.00	09	45.00	04	20.00
4.	सिरमौर	20	07	35.00	10	50.00	03	15.00
5.	मऊगंज	20	06	30.00	11	55.00	03	15.00
6.	नईगढ़ी	20	06	30.00	10	50.00	04	20.00
7.	हनुमना	20	07	35.00	11	55.00	02	10.00
8.	त्योथर	20	07	35.00	10	50.00	03	15.00
9.	जवा	20	06	30.00	11	55.00	03	15.00
	योग	180	59	32.78	93	51.67	28	15.55

उपरोक्त तालिका क्रमांक 04 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 20-20 नागरिकों से कुल मिलाकर 180 नागरिकों से शोध क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति सम्बन्धी जानकारी का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 04 के आंकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श में चयनित कुल 180 नागरिकों में से 59 नागरिक यह मानते हैं, कि रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। तथा 93 नागरिकों का मानना है, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। जबकि 28 नागरिकों ने कहा कि उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है। इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि शोध क्षेत्र के 32.78 प्रतिशत नागरिक मानते हैं, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। जबकि 51.67 प्रतिशत नागरिकों के अनुसार जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। तथा 15.55 प्रतिशत नागरिकों के अनुसार उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है। तालिका क्रमांक-05

पंचायती राज व्यवस्था में रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति का अध्ययन

(कर्मचारियों एवं अधिकारियों के प्रश्नावली पत्रक के आधार पर)

क्र.	विकासखण्ड का नाम	न्यादर्श में चयनित कर्मचारियों की संख्या	रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति					
			ठीक है		ठीक नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	5	02	40.00	03	60.00	00	00.00
2.	रायपुर कचुलियान	5	01	20.00	04	80.00	00	00.00
3.	गंगेव	5	02	40.00	02	40.00	01	20.00
4.	सिरमौर	5	03	60.00	02	40.00	00	00.00
5.	मऊगंज	5	02	40.00	03	60.00	00	00.00
6.	नईगढ़ी	5	02	40.00	02	40.00	01	20.00
7.	हनुमना	5	02	40.00	03	60.00	00	00.00
8.	त्यौथर	5	02	40.00	03	60.00	00	00.00
9.	जवा	5	02	40.00	02	40.00	01	20.00
	योग	45	18	40.00	24	53.33	03	06.67

उपरोक्त तालिका क्रमांक 05 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 5-5 कर्मचारियों एवं अधिकारियों से कुल मिलाकर 45 कर्मचारियों एवं अधिकारियों से शोध क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति सम्बन्धी जानकारी का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 05 के आंकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श में चयनित कुल 45 कर्मचारियों एवं अधिकारियों में से 18 कर्मचारी एवं अधिकारी यह मानते हैं, कि रीवा जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। तथा 24 कर्मचारियों एवं अधिकारियों का मानना है, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। जबकि 03 कर्मचारी एवं अधिकारी ऐसे भी थे जिन्होंने कहा कि उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है। इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि शोध क्षेत्र के 40.00 प्रतिशत कर्मचारी एवं अधिकारी मानते हैं, कि जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक है। जबकि 53.33 प्रतिशत कर्मचारियों एवं अधिकारियों के अनुसार जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है तथा 06.67 प्रतिशत कर्मचारियों एवं अधिकारियों ने कहा कि उन्हें इस सम्बन्ध में नहीं पता है।

उपरोक्त तालिकाओं के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि, शोध क्षेत्र के अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार जिले में जनप्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है, कि रीवा जिले में पंचायती राज व्यवस्था में जन प्रतिनिधियों की सामाजिक प्रस्थिति ठीक नहीं है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची-

- महिपाल (2002) - ग्रामीण पुननिर्माण में पंचायत की भूमिका, योजना, मासिक पत्रिका, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली जनवरी पृ.- 69-72।
- महिपाल (2009) - स्वास्थ्य रक्षा में पंचायतें : कमजोर तीमारदार, योजना, मासिक पत्रिका, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अक्टूबर, पृ. - 21-22।
- मजूमदार, ए.के. एवं सिंह भेंवर (1997) - हिस्टोरिकल एण्ड कान्सेट्चुल डेवलपमेण्ट ऑफ पंचायत राज, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- राव, ए. एन. (2000) - प्राचीन राजस्व प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
- राघव, अरूण कुमार (2002) - आरक्षण की नीति एवं राजनीति, प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका, मुद्रक एवं प्रकाशक महेन्द्र जैन। पृ.- 1427-1429।
- सेठी, के.एल. (1994) - मध्य प्रदेश पंचायत राज अधिनियम - 1994, विजय डीलक्स पब्लिशिंग कम्पनी, इंदौर।
- सिद्धीकी, एस.ए. (2004) - मध्यप्रदेश संपूर्ण अध्ययन, उपकार प्रकाशन, आगरा।
- श्रीवास्तव, काशी गोपाल (2000) - पंचायती राज की सफलता, योजना, मासिक पत्रिका, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, दिसम्बर, पृ. 32-34।
- एस. अखिलेश (2006-07) - रीवा दर्शन, द्वितीय संस्करण, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा।
- कुमार, प्रमीला (2003) - मध्यप्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन, चौदहवां संस्करण, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- कुमारप्पा, जे.सी. (1986) - गाँव आन्दोलन क्यों: सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।
- कोठारी, रजनी (1970) - पोलिटिक्स इन इण्डिया, लिटिल ब्राउन, बोस्टन।
- गुप्त, टी.पी. एवं उपाध्याय, सी.पी. (1995) - पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, किरण बुक कंपनी, इलाहाबाद।
- गांधी, मो. क. (1996) - स्वराज का अर्थ : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, कनाट प्लेस, नई दिल्ली।
- परमार, संदीप (1998) - ग्राम्य विकास एवं ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमान, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नारायण, जय प्रकाश (1987) - भारतीय राजव्यवस्था की पुनर्रचना: एक सुझाव, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी।
- रवि, राजेश, जैन एवं दिनेश (1997) - ग्राम स्वराज की राह पर झांकता कोल्लाला, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में विन्ध्य प्रदेश की भूमिका

• रश्मि सिंह चौहान

सारांश- सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन प्रमुख घटनाओं में से एक है। 9 अगस्त को ही महात्मा गाँधी सहित कांग्रेस के समस्त उच्चतम नेताओं को बंबई में गिरफ्तार कर लिया गया। नेताओं की गिरफ्तारी सुनते ही पूरे देश में आग भड़क उठी। अब अंग्रेजों की गुलामी से देश को छुटकारा दिलाने का एक ही रास्ता याद था करो या मरो। 1942 के उस देश व्यापी आन्दोलन में विन्ध्य प्रदेश पीछे न था। बुन्देलखण्ड राज्य के विभिन्न कार्यकर्ताओं ने आंदोलन किये, जुलूस निकाला लाठियाँ खाई, जेल गये। बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों छतरपुर, बिजावर, गरौली में कांग्रेस कमेटी की सभाये हुई। जिसमें उन गिरफ्तारी के विरोध में जनता द्वारा हड़ताल व जुलूस निकाला गया। क्षेत्र के उत्साही कार्यकर्ताओं विद्यार्थियों ने ब्रिटिश शासित प्रदेशों के आंदोलनों में भाग लिया, गोलियाँ भी खाई और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भागीदारी निभाई। इस आन्दोलन में भाग लेने वाले बघेलखण्ड के पद्मधर सिंह इलाहाबाद में शहीद हुए तथा शहडोल जिले के शंभुनाथ शुक्ल, सरस्वती प्रसाद पटेल, छोटेलाल पटेल, राष्ट्र सेवा में अग्रणी रहे। सतना के श्री शिवानन्द को नजरबंद किया गया। इस आन्दोलन में सैकड़ों कार्यकर्ताओं ने राज्यों के भीतर और बाहर आन्दोलन में भाग लिया।

मुख्य शब्द- भारत छोड़ो, आन्दोलन, गिरफ्तार, जुलूस, बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड

पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार 9 अगस्त 1942 की सुबह से सम्पूर्ण देश में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ होना था। मई से अगस्त 1942 तक दुर्निवार गति से अंतिम संघर्ष की ओर अग्रसर हो रहा था। गाँधी जी भारत को बंधनमुक्त करने के अंतिम प्रयास का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयत्न करते देख चुके थे। 26 अप्रैल 1942 को गाँधी जी ने हरिजन पत्र में पहली बार अंग्रेजो भारत छोड़ो का नारा दिया। 1942 में ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स योजना प्रस्तुत किया, जिसमें युद्ध के पश्चात् भारत को स्वतन्त्र करने वचन दिया गया, किन्तु इसके साथ ही पाकिस्तान की स्थापना की भी चेष्टा की। वार्ता भंग हो गई और क्रिप्स 12 अप्रैल को भारत से प्रस्थान कर गये। भारत के समस्त प्रमुख दलों ने क्रिप्स प्रस्ताव टुकरा दिये थे।

क्रिप्स के लौट जाने तथा प्रस्तावों के वापस ले लेने के पश्चात् शीघ्र ही कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की बैठक इलाहाबाद में हुई और उसने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। प्रस्ताव में कहा गया, वर्तमान संकट और क्रिप्स के साथ हुई चर्चा के अनुभव ने कांग्रेस के लिए किन्ही योजनाओं अथवा प्रस्तावों पर जिनमें आशिक रूप से भी अंग्रेजों का नियंत्रण एवं अधिकार भारत में रहता हो, विचार करना असंभव कर दिया है। भारत के हित की नहीं, किन्तु ब्रिटेन की रक्षा एवं विश्वशांति तथा स्वतंत्रता की भी माँग है कि ब्रिटेन को भारत पर अपने अधिकार का त्याग कर देना चाहिए।²

• अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय कैम्पस, रीवा (म.प्र.)

7 और 8 अगस्त को अखिल भारतीय काँग्रेस समिति के सदस्य बम्बई में एकत्र हुए। 7 अगस्त को पूरे दिन भर और देर रात्रि में भी समिति ने वर्धा में पारित किये प्रस्ताव पर विचार किया। मौलाना आजाद ने सभापतित्व किया और वर्धा के प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए कहा कि "भारत छोड़ो" नारे का अर्थ "भारतीयों के हाथों में संपूर्ण सत्ता हस्तांतरण से न्यूनाधिक कुछ भी नहीं है। गाँधी जी द्वारा प्रस्ताव में निहित भावना एवं उद्देश्य की स्पष्टीकरण किये जाने के उपरांत जवाहरलाल नेहरू ने उसे प्रस्तुत किया।

8 अगस्त सन् 1942 को "भारत छोड़ो" का ऐतिहासिक प्रस्ताव कांग्रेस महासमिति द्वारा बहुमत से पास हो गया, किन्तु वह तुरंत ही प्रभावशाली होने वाला नहीं था। अतएव गाँधी जी ने प्रस्ताव को कार्यान्वित करने पूर्व वायसराय से भेटकर समझौता करने का प्रयास किया। पर इसमें सफलता न मिली। वायसराय ने दमनात्मक कार्यवाही का निर्णय लिया।³

9 अगस्त को ही कांग्रेस के समस्त उच्चतम नेता, महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सरोजनी नायडू, कार्यकारिणी समिति के सदस्य तथा 20 अन्य नेता बंबई में गिरफ्तार कर लिये गये। नेताओं की गिरफ्तारी सुनते ही पूरे देश में आग भड़क उठी। इस समय लोगों के सामने हिंसा अहिंसा का प्रश्न नहीं था, एक ही धुन थी किसी तरह अंग्रेजों की गुलामी से देश को छुटकारा दिलाना है, और उन्हें एक ही रास्ता याद था करो या मरो। और इसी उद्देश्य के तहत व्यापक पैमाने पर लोगों ने रेल, तार सरकारी कार्यालयों व सरकारी इमारतों को तोड़ फोड़ डाला, उनमें आग लगा दी। उनमें तिरंगा ध्वज फहरा दिया। कई स्थानों पर हिंसा भी भड़क उठी। 1942 के इस देश व्यापी आन्दोलन में बुन्देलखण्ड राज्य के विभिन्न कार्यकर्ताओं ने ब्रिटिश प्रान्तों से भाग लिया और गिरफ्तारी दीजिनमें प्रेमनारायण तिवारी (समथर) लालाराम बाजपेयी (निवाड़ी), प्रेम नारायण खरे (टीकमगढ़), श्यामलाल साहू (घूघसी), नारायण दास खरे (टीकमगढ़), बच्चूलाल परसानिया, कालका प्रसाद (दतिया) ग्यासी लाल रूसिया (छतरपुर) रामकृष्ण वर्मा (दतिया), विश्वनाथ आजाद (हरपालपुर छतरपुर) प्रेमनारायण खरे को 7 दिन के पश्चात ही राज्य से निष्काषित कर दिया गया जब कि लक्ष्मी नारायण नायक व प्रेमनारायण तिवारी को एक-एक वर्ष की सजा हुई।⁴

1942 को मुखरी ग्राम में कांग्रेस कमेटी की एक सभा सम्पन्न हुई। जिसमें छतरपुर के अतिरिक्त अन्य रियासतों के कार्यकर्ता भी सम्मिलित हुये। जिसमें सर्व श्री चतुर्भुज पाठक, स्व. बाबू प्रेम नारायण खरे हरपालपुर, प्यासी लाल गुप्ता व महाराजपुर के श्री मदन गोपाल व प्यारे लाल चौरसिया। छतरपुर राज्य शासन द्वारा सभा को असफल बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया। श्री पाठक जी, प्रेमनारायण खरे और ग्यासी लाल गुप्ता को उस हिदायत के साथ राज्य सीमा से बाहर छोड़ दिया गया तथा प्रेमनारायण खरे चतुर्भुज पाठक, मदनगोपाल, ग्यासी लाल गुप्ता व प्यारेलाल चौरसिया को गिरफ्तार कर लिया गया। मदनगोपाल व प्यारे लाल चौरसिया को छतरपुर जेल भेज दिया गया।⁵ उन गिरफ्तारियों के विरोध में महाराजपुर जनता द्वारा हड़ताल व जुलूस निकाला। उस जुलूस पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज किया गया। जिसमें अनेक व्यक्ति घायल हुये। शासन उतने दमन से भी संतुष्ट न हो सका।

इसी समय भउरा (उ.प्र.) के लोगों के साथ तहसील लूटने की योजना बनाई गई। और महोबा (को लूटने की योजना बनाई गई) पं. रामसहाय तिवारी, ठाकुर हीरासिंह व अन्य साथियों ने उस योजना पर विचार किया। पर सरकार को उस षड्यंत्र का पहले ही पता लग

गया। जिसके कारण कई लोग जेल भेज दिये गये, और कई लोग पकड़े गये। रामसहाय तिवारी, हीरा सिंह, दीन दयाल तिवारी आदि के नाम वारेण्ट निकाले गये। पर गिरफ्तारी न हो सकी। स्व. गोकुल प्रसाद महाशय को भी गिरफ्तार कर लिया गया। दीन दयाल तिवारी को सरकार ने छह माह बाद भी गिरफ्तार कर लिया, जब वे महोबा के अस्पताल में अपना इलाज कराने गये थे।⁶

रियासत बिजावर में भी कांग्रेस की कई सभायें हुई, और रामकृष्ण पालिया कांग्रेस संगठन के सर्वोसर्वा बन गये। तथा उन्होंने जनता को उस आन्दोलन के कार्यक्रम व व्यापक से परिचित कराया गया। गरोली राज्य में सन् 1942 में श्री रामनारायण खरे पं. अयोध्या प्रसाद, ठाकुर मर्दन सिंह तथा प्रताप सिंह आदि कार्यकर्ताओं के सहयोग से कांग्रेस की सभायें हुई व राज्य में काफी जन जागृति आई। हरपालपुर के श्री विश्वनाथ आजाद ने भी उस समय झाँसी के आन्दोलन में भाग लिया। उन्हें 50 रुपये का जुर्माना तथा एक वर्ष की सजा हुई, जुर्माना न देने पर 4 महीने की अतिरिक्त सजा हुई। स्टेट लुगासी में भी महादेव प्रसाद तिवारी आदि ने उस आंदोलन के समय राज्य के जन जागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।⁷ छतरपुर नगर के ही श्री महेन्द्र कुमार मानव ने अपना राजनैतिक जीवन 1942 ई. में इलाहाबाद के छात्र आन्दोलन से प्रारम्भ किया। मानव जी ने रीवा राज्य के अमरपाटन में 1942 में आन्दोलन किया रीवा से उनका वारंट निकला अतः वहाँ से भागकर इलाहाबाद पहुँचे और 9 अक्टूबर 1942 को इलाहाबाद में गिरफ्तार कर लिये गये और होशंगाबाद जेल में बंद कर दिया और इसी के तहत उन्हें 10 माह की सजा हुई।

छतरपुर के जंग बहादुर ने इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इलाहाबाद विश्व विद्यालय के छात्र थे। 8 अगस्त 1942 को जब सभी राष्ट्रीय को गिरफ्तार कर दिया गया। तो 10 अगस्त 1942 को विश्व विद्यालय के छात्रों ने जुलूस निकाला, जुलूस जब कलेक्टर ऑफिस के सामने पहुँचा तो उस पर गोलियाँ चलाई गई, लाठियाँ चलाई गईं। जंग बहादुर सिंह को भी गोली लगी, उन्हे बड़ी मुश्किल से अस्पताल ले जाकर बचाया जा सका, इसी में रीवा के जागीरदार के पुत्र लालपदमधर सिंह शहीद हुये।

बघेलखण्ड देशी रियासत में महाराज रीवा को साधिकार रीवा वापसी एवं उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रश्न पर वर्षों से आन्दोलन चल ही रहा था, कि अगस्त की लपटें शीघ्र ही कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तार के समाचार से तेज होकर फैलने लगी। 9 अगस्त को रीवा में विशाल सार्वजनिक सभा संगठन संपन्न हुई जिसमें बहुत बड़ी तादात में इस क्षेत्र की इस आन्दोलन में कूद पड़ा। इस सभा में कई नेताओं ने भाषण दिया। इसके परिणाम स्वरूप रीवा के एडमिनिस्ट्रेटर ने एक विज्ञप्ति द्वारा आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। दूसरी विज्ञप्ति द्वारा बघेलखण्ड कांग्रेस कमेटी के रीवा कार्यालय को गैर कानूनी घोषित किया गया। 9 अगस्त को ही लाल मर्दन सिंह व राजमणि प्रसाद को गिरफ्तार किया गया और 10 अगस्त को बघेलखण्ड कांग्रेस कमेटी के वरिष्ठ नेता राजभानु सिंह तिवारी (रीवा) तथा अवध बिहारी लाल वकील, सतना को गिरफ्तार किया गया।⁸

रीवा में ग्यारह समिति बनायी गयी जिसने जेल का दरवाजा तोड़कर कैदियों को रिहा कराने की योजना बनायी। नागरिकों का एक जुलूस निकाला गया। जिसमें स्त्रियाँ भी थी, श्रीमती विष्णु कान्ता देवी के नेतृत्व में निकाला गया। उसे पुलिस द्वारा पीली कोठी के निकट रोक लिया गया परन्तु जनता का उग्र रूख देखकर पुलिस ने आगे जाने दिया ग्यारह बजे जेल के फाटक पर पहुँचने पर देखा गया कि पुलिस तोपखाने के साथ तैयार है। खून

खराबे के दूर से जुलूस एक आमसभा में परिवर्तित हो गया। परन्तु यहाँ पर बहुत सारे लोग गिरफ्तार कर लिये गये। यहाँ तेजभानसिंह भी पकड़े गए थे, जो जेल में ही मर गए। फिर भी आन्दोलन चलता रहा। सभी शैक्षणिक संस्थाओं में हड़ताल रही और बाजारे बन्द रही। इंटर कॉलेज के भवन पर फहराते यूनियन जैक को उतार दिया गया तथा उसके स्थान पर राष्ट्रीय तिरंगा झंडा फहराया गया। इस आंदोलन में रीवा के लाल पद्मसिंह ने इलाहाबाद में जुलूस का नेतृत्व करते समय गोली का शिकार हो गए।⁹ इस खबर से इस क्षेत्र के लोगों को बहुत धक्का लगा। विभिन्न जुलूसों और सार्वजनिक सभाओं के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध प्रकट किया गया। सम्पूर्ण शैक्षणिक संस्थाओं में विद्यार्थियों ने हड़ताल की घोषणा कर दी और मांग की गई कि उसे तत्काल देश को आजादी प्रदान करनी चाहिए और अंग्रेजों को चले जाना चाहिए। सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने में कोई कसर नहीं उठाई। गिरफ्तारियों का जोर बढ़ता गया। इस मास के अन्त तक इस क्षेत्र के अनेकानेक व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया।

गिरफ्तार हुए व्यक्तियों में श्रीमती कृष्णा कुमारी पत्नी लाल यादवेन्द्र सिंह, श्रीमती चम्पादेवी पत्नी लाल महावीर सिंह (बैकुण्ठपुर) लाल चन्द्र कान्त सिंह बघेल (रीवा के बाहर अध्ययनरत छात्र), लाल उदयवीर सिंह (रीवा के बाहर अध्ययनरत छात्र), बख्शी गया प्रसाद (हिज हाइनेस के पर्सनल सेक्रेटरी) लाल गोविन्द नारायण सिंह, मृत्युन्जय प्रसाद, लाल देवेन्द्र सिंह, तुलसीराई, मोहनलाल जैन, राजमणि (शहडोल) और बाबू रूपचन्द्र (शहडोल) के नाम उल्लेखनीय हैं। 7 व्यक्ति बुढ़ार में भी गिरफ्तार किये गये।¹⁰ अब तक इस क्षेत्र के लगभग सभी वरिष्ठ नेताओं को गिरफ्तार किया जा चुका था गिरफ्तारियों का यह 16 मई 1942 से चल रहा था। 98 इन नेताओं को जेलों में तरह-तरह की यातनाये दी गई।¹¹

इस तरह सितम्बर 1942 के आखिरी दिनों में इस क्षेत्र के आन्दोलन का नेतृत्व छात्रों और युवकों के हाथ आ जाने से आन्दोलन और तेज हो गया तथा ब्रिटिश प्रशासन के अधिकारी आन्दोलन को दमन के आधार पर कुचल देने का प्रयास तेज करने लगे। इस क्षेत्र के कई नगरों में प्रतिबंधात्मक धारा 144 लागू की गई किन्तु इस क्षेत्र के कई नगरों में प्रतिबंधात्मक धारा 144 लागू कर दी गई किन्तु इस धारा का उल्लंघन करके छात्रों ने एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला। रीवा में जुलूस को तितर-बितर करने के लिए अंग्रेज प्रशासक मेंजर उल्डिज के आदेश से लाठी चार्ज किया गया जिसमें बहुत से छात्र घायल हुए और अनेको छात्रों को चोटें लगी। दिनेश चन्द्र की जेल में ही मृत्यु हो गई। सरकार के भयानक दमन के कारण में बहुत उत्तेजना व्याप्त हो चुकी थी। अतः प्रशासक ने अपने एक आदेश से नगर की सभी शिक्षण संस्थाओं को बंद कर दिया।

शहडोल के शंभूनाथ शुक्ल जी को गिरफ्तार कर लिया गया जिसके कारण कांग्रेस का नेतृत्व सरस्वती प्रसाद पटेल (बुढ़ार) ने किया। सरस्वती पटेल के निर्देशानुसार 15 अगस्त 1942 ई. को छोटेलाल पटेल (सिगुड़ी, उमरिया) ने बुढ़ार मजिस्ट्रेट के न्यायालय की कुर्सी पर आसीन होकर भारत के स्वतंत्र होने की घोषणा कर दी। जिसके परिणामस्वरूप छोटेलाल पटेल और उनके अर्दली शिव प्रसाद सिंह को गिरफ्तार करके बुढ़ार जेल भेज दिया गया। 22 अगस्त 1942 ई. तक समस्त बघेलखण्ड क्षेत्र में लगभग समस्त नेताओं की गिरफ्तारी के कारण विद्यार्थी वर्ग ने 1942 के आन्दोलन में भाग लिया सूर्यबली सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन को गति प्राप्त हुआ। रीवा में खासतौर लाठी चार्ज हुआ। व्यापक पैमाने पर आन्दोलनकारियों की गिरफ्तारियाँ की गई। 19 सितम्बर 1942 को कुछ पत्रकारों, नागरिकों को रीवा से प्रकाशित

होने वाले समाचार पत्र "प्रकाश" के सम्पादक अर्जुन सिंह की भी गिरफ्तारी के कारण उत्तेजित छात्रों की भीड़ ने रीवा के रिकार्ड रूम में इसी समय आग लगा दी।¹²

विन्ध्य क्षेत्र में 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन मूलतः ब्रिटिश शासन की जनविरोधी नीतियों के विरुद्ध थी। इस आन्दोलन में विन्ध्य क्षेत्र की जनता ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गाँधी की वैचारिक क्रान्ति की लहर 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में स्पष्ट देखा जा सकता है। यहाँ के वीर सपूतों ने अपने तन-मन-धन का निःस्वार्थ भाव से बलिदान करके मातृभूमि को स्वतन्त्र कराया।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. श्यामलाल साहू, विन्ध्य प्रदेश के राज्यों का स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस निवाड़ी 1975, पृ. 174
2. द्वारका प्रसाद मिश्र, मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 478-479
3. द्वारका प्रसाद मिश्र, मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास
4. श्यामलाल साहू, विन्ध्य प्रदेश के राज्यों का स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस निवाड़ी 1975, पृ. 174
5. दशरथ जैन, विन्ध्याचल, स्वतंत्रता अंक, जनवरी 1954, पृ. 70
6. छतरपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृष्ठ 69
7. राष्ट्र गौरव स्मारिका 95, सं. दशरथ जैन, पृष्ठ 202
8. बाबूलाल शर्मा, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, पृ. 231, 232
9. मध्यप्रदेश संदेश, 15 अगस्त 1987, अ-192
10. प्रकाश रीवा सप्ताहिक पत्र, 23-8-42, 30-8-42 एवं 13-9-42
11. मध्यप्रदेश और गांधी जी (म.प्र. सूचना एवं प्रकाशन संचालनालय, 1969) पृ. 104
12. बाबूलाल शर्मा, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, पृ. 233-34

मध्यकालीन भारत में कृषि-तकनीकी

• सीमा कुमारी

प्रचीन काल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रधान व्यवसाय होने के कारण कृषि आय का सबसे बड़ा स्रोत, उद्योगधन्धों एवं व्यापार का आधार है। अर्थव्यवस्था की स्थिरता-अस्थिरता, गतिशीलता-निष्पावाहता और प्रगति का प्रमुख निर्धारक तत्व कृषि ही है। कृषि की प्रगति होने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ तथा विकास की कुंजी है।

मध्यकालीन भारत के शासकों ने कृषि की प्रगति के लिए विभिन्न प्रकार की कृषि-तकनीकी को लागू करने का प्रयास किया था। उनका यह विश्वास था कि कृषि की प्रगति होने से कृषि सम्बन्धी उत्पादन में वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में सुधार होगा। कृषि तकनीकी के अन्तर्गत किसानों द्वारा परती भूमि को कृषि कार्य करने योग्य बनाना, जल सेचय करना, फसल प्रबन्धन करना, प्रर्याप्त मात्रा में खाद देना, अनाज का भंडारण करना इत्यादि किया जाता था।

मुख्य शब्द- तकनीकी, अर्थव्यवस्था, तकाबी ऋण, फसल प्रबन्धन, पौधा संरक्षण, उर्वरा शक्ति

उन्नत कृषि तकनीकी के आभाव में वांछित उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन हो जाता है। परम्परागत तरीकों के स्थान पर नई तकनीकी के द्वारा खेती करने से प्रर्याप्त मात्रा में उपज होती है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। अवलोकित काल में भी शासकों तथा प्रशासकीय पदाधिकारियों द्वारा किसानों को प्रोत्साहित करके नई कृषि तकनीकी को लागू करने का प्रयास किया जाता था। कृषि की प्रगति होने से साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में बहुत अंशों में सुधार हुआ था जिसके फलस्वरूप साम्राज्य का केन्द्रीय खजाना आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हुआ था।¹

मध्यकालीन भारत में साम्राज्य के कृषि उत्पादन में वृद्धि करने हेतु निम्नलिखित तकनीकी अपनायी गयी थी -

परती भूमि को कृषिकार्य करने योग्य बनाना- मुस्लिम साम्राज्य के अन्तर्गत बहुत सी भूमि बंजर थी जिसपर खेती करना संभव नहीं था। कुछ भूमि वन-भूमि थी जो घास, बाँस एवं अन्य पेड़-पौधों से अच्छादित रहती थी। साम्राज्य की कुछ कृषियोग्य भूमि बेकार पड़ी रहती थी अर्थात् परती रहती थी। कुछ भूमि इसलिए परती छोड़ी जाती थी ताकि उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि हो सके। साम्राज्य में स्थायी चारागाह एवं गोचर भूमि पर भी कृषि कार्य नहीं होता था।² दिल्ली के शासकों ने भू-राजस्व वसूल करने वाले कर्मचारियों के माध्यम से किसानों को बंजर एवं परती भूमि को कृषि कार्य करने योग्य बनाने का आदेश दिया। फिरोज शाह तुगलक एवं अकबर ने बंजर एवं परती भूमि को कृषिकार्य करने योग्य बनाने वाले किसानों का भू-राजस्व माफ कर दिया। उन्होंने ऐसे किसानों को सरकारी खजाने से कर्ज दिया ताकि वे अपना परिश्रम करके तथा मजदूरों की मदद से परती भूमि को कृषिकार्य करने योग्य

• पूर्व शोध छात्रा, इतिहास विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

बनावे।³ शासकों द्वारा किसानों को प्रोत्साहन दिए जाने के बाद साम्राज्य की बेकार एवं परती भूमि पर कृषिकार्य होने लगा जिसके फलस्वरूप अनाज की पैदावार में वृद्धि हुई तथा कृषि की प्रगति हुई।

भूमि का संरक्षण (सोयायल कन्जरवेशन) करना – खेतों की पैदावार में वृद्धि करने के लिए कृषिकार्य करने योग्य भूमि का संरक्षण होना चाहिए। किसी भूमि पर लगातार खेती करते रहने से उसकी उर्वराशक्ति को कायम रखने के लिए तथा भूमि का कटाव रोकने के लिए किसानों द्वारा कुछ समय के लिए भूमि को बिना फसल उगाएँ खाली छोड़ दिया जाता था। खेतों में गोबर या देशी खाद देकर उसकी उर्वराशक्ति को बढ़ाया जाता था। भूमि कटाव को रोकने के लिए खेतों की मेड़बन्दी तथा समतलीकरण कर दिया जाता था। राजस्व विभाग के कर्मचारियों के निर्देशों का पालन करते हुए किसानों ने कृषिकार्य करने योग्य भूमि का संरक्षण करने का प्रयास किया था।⁴

जल संचयन करना – कृषि तकनीकी के अन्तर्गत भूमि में नमी की मात्रा बनाए रखने के लिए जल संचय किया जाता था। भूमि को इस अवस्था में रखा जाता था जिससे कि वह अधिक से अधिक जल अवशोषित कर सके तथा जल सतह पर बहकर बेकार न चला जाय। वर्षा के पूर्व खेत की गहरी जुताई की जाती थी ताकि भूमि में अधिक मात्रा में जल का अवशोषण हो सके। जुताई से भूमि की सतह ढीली हो जाती थी तथा अधिक पानी को शोषित कर लेती थी। मिट्टी की उपरी सतह को पुआल, भूसा आदि से ढँकने से भूमि से वाष्पीकरण की प्रक्रिया में कमी आती थी तथा मिट्टी की नमी कायम रहती थी।⁵ सुखे या कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जल संचय करने के लिए एक अन्य प्रक्रिया अपनायी जाती थी। इसमें भूमि की सतह को ऐसा बना दिया जाता था कि वर्षा का जल बहकर सिंचाई वाले क्षेत्र में आ जाय इस तरह पूरे क्षेत्रफल पर बरसा हुआ पानी बीच वाले निचले क्षेत्र में एकत्र हो जाता था। उस एकत्रित जल का प्रयोग निर्धारित क्षेत्रफल पर सिंचाई के लिए किया जाता था।⁶

तकाबी ऋण दिया जाना – कृषि की प्रगति के लिए अवलोकित काल में किसानों को तकाबी ऋण दिया जाता था। किसानों को बीज तथा खाद खरीदने, कुँए खुदवाने, कृषक मजदूरों की मजदूरी का भुगतान करने, कृषियंत्र खरीदने, चारा खरीदने आदि के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ती थी। ये ऋण कृषि उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं से संबंधित रहते थे अतः इन्हें उत्पादन ऋण भी कहा जाता था। इस तरह के ऋणों से किसानों की आय में वृद्धि होती थी। अतः इनकी अदायगी की चुकता करने में किसानों को कठिनाई नहीं होती थी। फसल तैयार हो जाने पर उसकी बिक्री करके किसान इस प्रकार के ऋण की अदायगी कर देते थे।⁷

किसानों को तकाबी ऋण प्रशासकीय पदाधिकारियों द्वारा दिया जाता था। विभिन्न शासकों खास कर के अकबर ने किसानों को तकाबी ऋण देने का आदेश भू-राजस्व वसूल करनेवाले कर्मचारियों को दिया था। ग्रामीण इलाकों में साहूकारों अथवा महाजनों द्वारा भी किसानों को ऋण दिया जाता था। ग्रामीण साहूकारों को दो श्रेणियाँ होती थी-साहूकार तथा व्यवसायिक साहूकार। व्यापारी तथा कमीशन एजेंट भी कुछ विशिष्ट फसलों जैसे-तम्बाकू, मूँगफली, गन्ना, कपास आदि के उत्पादन कार्यों के लिए किसानों को तकाबी ऋण दिया करते थे। तकाबी ऋण सामान्य तया फसल तैयार होने पर किसानों द्वारा वापस कर दिये जाते थे।⁸

फसल प्रबंधन करना- मध्यकालीन किसानों द्वारा अधिक उपज प्राप्त करने के लिए फसल

प्रबंधन भी किया जाता था। भूमि की उर्वराशक्ति को कायम रखने के लिए किसान फसलों की अदला-बदली (रोटेशन ऑफ क्राप्स) करते थे।⁹ खेती योग्य भूमि पर गहरी जड़ोवाली फसलों को उपजाने के बाद उस पर छीछली जड़ोवाली फसलों को उपजाते थे। कुछ क्षेत्रों में किसान मिश्रित फसलो को बोने का काम करते थे। यदि एक फसल किसी कारण से सफल नहीं हो पाती तो दूसरी फसल से पैदावार मिल जाती थी। भूमि की नमी को संरक्षण प्रदान करने के लिए भूमि का ढकाव करने वाली फसलों जैसे- मूँग, उडद, मूँगफली, सोयाबीन आदि उपजायी जाती थी। भूमि की सतह पर पानी का बेग कम होने पर मिट्टी कटने की शक्ति कम हो जाती थी तथा जल का मिट्टी में अवशोषण अधिक होता था। ऐसी स्थिति में कटाव रोकने वाली फसले, जैसे मूँग, उडद, मूँगफली, सोयाबीन आदि लगायी जाती थी।¹⁰ उन्नतशील बीजों का प्रयोग करना - कृषि तकनीकी में उन्नतशील बीजों का प्रयोग करना भी था। फसलों का अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए गुणवत्ता युक्त बीजों का प्रयोग किसान करते थे। अच्छे किस्म के बीजों का प्रयोग करने से लगभग बीस प्रतिशत उत्पादन को बढ़ाया जा सकता था। मुस्लिमकाल में कृषि फार्मों को स्थापित किया गया था। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने कृषि फार्म को स्थापित करके किसानों को उत्पादन में वृद्धि करने का प्रयास किया था।¹¹ कृषि फार्मों में विभिन्न प्रकार की फसलों को उपजाया जाता था। अच्छी गुणवत्तावाले बीजों का उत्पादन करके उसके वितरण की व्यवस्था की जाती थी। किसानों को तकाबी ऋण दिया जाता था ताकि वे अच्छे किस्म के बीजों को खरीदकर कृषिकार्य करे तथा साम्राज्य के कृषि संबंधि उत्पादन में वृद्धि करें। शासकों ने राजस्व विभाग के कर्मचारियों को यह आदेश दिया था कि वे किसानों के बीच अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों को वितरण करावें। देहाती इलाकों के किसान रबी फसल के उत्तम किस्म के बीजों को सुरक्षित रखने के लिए भूसों के ढेर में छिपाकर रखते थे तथा फसल की बुआई का समय आने पर बीजों को भूसों से निकाल कर खेतों में बुआई करते थे।¹²

प्रयाप्त मात्रा में खाद देना- कृषि संबंधि उत्पादन में वृद्धि हेतु खाद की भूमिका महत्वपूर्ण रहती थी। उस समय रासायनिक खाद की कमी रहती थी। भारतीय किसान उन रासायनिक खाद के बदले गोबर तथा कम्पोस्ट की खाद खेतों में डालते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रयाप्त मात्रा में गोबर की खाद का प्रयोग करने से कृषि उत्पादन तीन गुणा तक बढ़ाया जाना संभव हो सका।¹³ किसान कुछ फसलो का अनाज संग्रह करने के बाद उनके डन्ठल का खेतों में ही आग लगा कर जला देते थे। फसलो का जला हुआ डन्ठल भी खेत में खाद का काम करता था। खेतों में पड़ी हुई घास-पतवार को भी जला कर खाद बनाया जाता था। भारत के कुछ क्षेत्रों में किसान घास-पतवार तथा गोबर की खाद के अलावे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने वाले पौधों को खेतों में लगा कर खाद की कमी को पूरा करते थे। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के समय खाद बनाने वाले पौधों के बीज को खेत में छीट देते थे। करीब तीन सप्ताह के बाद खेत की जुताई करके इन पौधों को खेत की पानी में सड़ने के लिए छोड़ देते थे। पानी में सड़कर ये पौधे जैव उर्वरक का कार्य करते थे तथा पौधों को पोषण उपलब्ध कराते थे।¹⁴

पौधा संरक्षण करना- कृषि तकनीकी के अंतर्गत पौधा संरक्षण (प्लान्ट प्रोटेक्शन) भी आता था जिसके संबंध में किसान अवगत थे। पौधा संरक्षण संबंधित कार्य कलाप में कृषि के लिए समग्र फसल उत्पादन कार्यक्रम सम्मिलित था अर्थात् खेतों में लगी फसलों को कीटों, कृमियों, रोगों, खरपतवारों आदि के कारण होने वाली क्षति से बचाना था। मध्यकाल

में प्रति वर्ष कीड़ो-मकोड़ो तथा चूहो द्वारा विभिन्न फसलों को हानि पहुँचायी जाती थी। किसान फसलों को हानि से बचाने के लिए खेतों में आवश्यकतानुसार चूना, पोटास, नीम का पत्ती तथा अन्य कृमिनाशियों का उपयोग करते थे। वे जैव उर्वरक को बड़े पैमाने पर उत्पादित कर इन्हें चावल, कपास, गन्ना, सब्जियों और तिलहन के फसलों को कृमियों एवं कीटों से बचाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।

मध्यकालीन भारत के शासकों ने भी किसानों की लहलहाती फसलों की रक्षा करने के लिए सैनिकों तथा सेनानायकों को चेतावनी दी थी कि वे किसानों की फसलों को बर्बाद न करें।¹⁵ जब कभी भी सैनिक युद्ध करने के लिए निकलते थे तो खेत में खड़ी फसलों की रक्षा करते हुए जाते थे। समसामयिक ग्रन्थों में इस संबंध में उल्लेख मिलता है कि समकालीन शासक तथा अभिजात वर्ग के सदस्य किसानों के हितों की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे।¹⁶ यदि कोई कर्मचारी किसानों को परेशान करने का प्रयास करता था तो शासकों द्वारा दंडित किया जाता था। दुर्भिक्ष के समय किसानों को तकाबी ऋण दिया जाता था ताकि उन्हें दुर्भिक्ष की कठिनाईयों से राहत मिल सकें।

अनाज का भंडारण करना- कृषि तकनीकी के अन्तर्गत अनाज का भंडारण (स्टोरेज ऑफ क्राप्स) करना भी होता था। भंडारण व्यवस्था से तात्पर्य कृषि उत्पाद को सही ढंग से संग्रह करना तथा संग्रह किये हुए अनाज को उचित समय पर बिक्री हेतु बाजारों में पहुँचाना माना जाता था। सामान्यतः किसान धनाभाव के कारण फसल की कटाई के पुरन्त बाद बिक्री के लिए अनाज बाजार में लाते थे जिसके फलस्वरूप उन्हें उत्पादित वस्तुओं की उचित कीमत नहीं प्राप्त होती थी। भंडारण व्यवस्था होने से किसानों को उत्पादित की गयी वस्तुओं को शीघ्र बेचने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी तथा किसानों को उनकी उपज का उचित तथा लाभकारी मूल्य प्राप्त हो जाता था।¹⁷

मध्यकालीन भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में किसान उत्पादित की गयी सामग्रियों का भंडारण करते थे। वे नाशवान वस्तुओं जैसे आलू, प्याज, फलों और सब्जियों को अपने घरों में फैलाकर बालू पर रखते थे। बालू पर रखने से इन खाद्य पदार्थों को उचित मात्रा में ठंडक मिलती थी जिससे इन सामग्रियों को सड़ने से बचाया जा सकता था। विभिन्न प्रकार के अनाज जैसे गेहूँ, चना, मसूर, खेसारी आदि को बर्बाद होने से बचाने के लिए तथा इन्हें उचित मात्रा में गर्मी प्रदान करने के लिए भूसा के ढेर में छिपाकर रखा जाता था तथा उचित समय आनेपर अनाज को भूसा के ढेर से निकाल कर बेचने के लिए बाजारों में पहुँचाया जाता था।¹⁸

सन्दर्भग्रन्थ सूची-

1. यूसूफ हुसैन, ग्लिम्सेज ऑफ मेडिभल इन्डियन कल्चर, बम्बई, 1962, पृ.- 150
2. एच. के. नकवी, अर्बनाईजेशन एण्ड अर्बन सेन्टर्स अन्डर दी ग्रेट मुगल्स, कलकत्ता, 1978, पृ.- 23
3. बबर, तुजुके बाबरी, पृ.- 481
4. बी. एस. निर्जर, पंजाब अन्डर दी ग्रेट मुगल्स, दिल्ली, 1968, पृ.- 146
5. एच. के. नकवी, पूर्वोद्धृत, पृ.- 23
6. जे. एन. सरकार, इन्डिया ऑफ औरंगजेब, कलकत्ता, 1901, पृ.- 104
7. एच. एस. श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, नई दिल्ली, 1978, पृ.- 156
8. एच. एस. श्रीवास्तव, हिस्ट्री ऑफ इंडियन फेमिनिस्, पृ.- 17-18

9. इरफान हबीब, एंग्रेट्रियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, बम्बई, 1963 पृ.- 11,12
10. जे. एन. सरकार, मेडिभल बिहार इकोनोमी, कलकत्ता, 1978, पृ.- 05
11. डब्लू. एच. मोरलैंड, अकबर की मृत्यु के समय का भारत, पृ.- 49
12. अबुल फजल, आइने-अकबरी, पृ.- 110
13. ए.एल. श्रीवास्तव, अकबर दी ग्रेट, पृ.-120
14. वही, पृ.- 122
15. ट्रेभल्स ऑफ ट्रेभनियर, पृ.-118
16. बाबर, बाबरनामा (अनु.) भाग- 2, पृ.- 486
17. वही, पृ.- 486
18. एच. एस. श्रीवास्तव, पूर्वोद्धृत, पृ.- 17-18

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना: क्रियान्वयन, समस्याएँ एवं सुझाव

• पपली राम

सारांश- गरीबी दूर करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अनेक लोक कल्याणकारी योजनाएँ चलाई जा रही हैं। ग्रामीण विकास मंत्रालय की पहली प्राथमिकता ग्रामीण क्षेत्र का विकास और ग्रामीण भारत से गरीबी तथा भूखमरी हटाना है। इसी लक्ष्य की ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार मनरेगा योजना लाई जो ग्रामीण लोगों के लिए मील का पत्थर साबित हो रही है। इसमें रोजगार की गारन्टी, बेरोजगारी भत्ता, महिलाओं को प्राथमिकता, न्यूनतम मजदूरी की गारन्टी, पारदर्शिता व पंचायतो की अहम भूमिका है। मनरेगा उन कुशल शारीरिक कार्य करने वालों को वर्ष में कम से कम 100 दिवस का रोजगार देने की गारन्टी देता है। ग्राम सभा की सिफारिश पर ग्राम पंचायत कार्यों का चयन करती है। 7 सितम्बर, 2005 को स्वीकृत इस योजना को 2008-09 तक देश के सभी जिलों में लागू कर दिया गया। यह मांग आधारित स्कीम है, जिसका केन्द्र बिन्दू जल संरक्षण, सूखाग्रस्त क्षेत्रों का उद्धार, भूमि विकास, बाढ़ नियंत्रण, संरक्षण और सभी मौसमों में अच्छी सड़कों हेतु सड़क सम्बद्धता पर ध्यान देना है। मार्च 2019 तक मनरेगा के तहत 255 करोड़ व्यक्ति कार्य दिवस पैदा किये गये तथा मार्च 2020 में 18 करोड़ 19 लाख पर्सन डे काम हुआ था। राजस्थान में 8 जून, 2020 तक 50.20 लाख लोगों को मनरेगा के तहत काम दिया गया। जो पिछले साल की तुलना में 17 लाख से ज्यादा है। जबकी राज्य के अलवर जिले में मनरेगा के तहत नियोजित श्रमिकों की संख्या 78 हजार 242 तक पहुँच गई। कोरोना काल में मनरेगा बेरोजगार हुए लोगों के लिए वरदान साबित हो रहा है। वही मनरेगा में बेरोजगारों के सामने कुछ समस्याएँ भी आई हैं। जैसे उचित चिकित्सा का अभाव, मजदूरी का समय पर भुगतान नहीं होना, घटिया निर्माण सामग्री, स्वीकृत जगह से अन्य जगह कार्य कराना, कमीशन खोरी, भाई-भतीजावाद आदि। योजना में डाटा ऑन लाईन होने चाहिए। उपस्थिति फिंगर प्रिन्ट द्वारा होनी चाहिए, न्यूनतम मजदूरी दर 600 रुपये प्रतिदिन की जायें। कार्य के तहत स्कूल भवन निर्माण, चारदीवारी, श्मशान एवं कब्रिस्तान सुधार कार्य, सामुदायिक भवन निर्माण आदि कार्य को भी सम्मिलित किया जाये तथा वर्ष में 100 दिन से बढ़ाकर 200 दिन कर दिया जायें।

मुख्य शब्द- गरीबी, पंचायतीराज, योजनाएँ, ग्रामीण विकास, मनरेगा, रोजगार की गारन्टी, पारदर्शिता, महिलाएँ, मस्टरोल।

गरीबी किसी भी देश के लिए अभिशाप है, क्योंकि यह देश के विकास को प्रभावित करती रहती है। यह कारण है कि सरकार ही नहीं बल्कि सभी गरीबी को दूर करने के उपाय ढूँढते हैं। गरीबी हर देश की समस्या है जो एक विश्वव्यापी बन गई है। जिसके कारण एवं निवारण के उपाय हर देश में अलग-अलग देखने को मिलते हैं, भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं है। केन्द्र और राज्य सरकार सदैव इस बात के लिए प्रयासरत रही हैं कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति खुशहाली का जीवन जिये तथा उसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती

• राजनीति विज्ञान विभाग, पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, इंडियन कौन्सिल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च, नई दिल्ली

रहे और कोई भी व्यक्ति भूखा न सोए। देश के प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, पानी, शिक्षा, चिकित्सा, विद्युत और आवास आदि की सुविधाएँ उपलब्ध हो, इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए केन्द्र और राज्य सरकारों ने समय-समय पर अनेक कल्याणकारी योजनाएँ लागू की हैं। केन्द्र और राज्य की सरकारों ने आरम्भ से ही ग्रामीण विकास की दिशा में अनेक ग्रामीण विकास योजनाएँ व गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की संरचना एवं सृजन कर इनका क्रियान्वयन किया है इन ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लगभग सभी राज्यों में पंचायतीराज संस्थाओं की विशेष भूमिका रही है।¹ ग्रामीणों का पलायन रोकने के लिए और उन्हें गाँव में ही रोजगार मुहैया कराने के लिए केन्द्र सरकार की और से विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं। यूपीए सरकार ने इस दिशा में दो कदम आगे बढ़ते हुए हर व्यक्ति को रोजगार मुहैया कराने की चुनौती स्वीकार की। चूँकि ग्रामीण विकास मंत्रालय की पहली प्राथमिकता ग्रामीण क्षेत्र का विकास और ग्रामीण भारत से गरीबी तथा भुखमरी हटाना है। ग्रामीण क्षेत्रों में गाँव और शहर के अन्तराल को पाटने, खाद्य सुरक्षा प्रदान करने और जनता को मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए सामाजिक और आर्थिक आधार पर लोगों को सुदृढ़ करना जरूरी है। इसलिए मनरेगा जैसी योजना सरकार की एक नई पहल है।²

भारतीय संविधान के भाग 3 में नागरिकों के मूल अधिकारों तथा भाग 4 में राज के नीति के निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक सुरक्षा का प्रावधान भी किया गया है। अनुच्छेद 41 में काम, शिक्षा, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी एवं निःशक्तता आदि अवस्थाओं में लोक सहायता का उल्लेख किया गया है। सरकार का यह लक्ष्य रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले। वह बेरोजगार नहीं रहें तथा उसकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो।

खडकसिंह बनाम स्टेट ऑफ उत्तरप्रदेश (ए.आई.आर. 1993.एस.सी, 1295) के मामले में उच्चतम न्यायलय द्वारा कहा गया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार से तात्पर्य केवल पशुवत जीवन जीने से नहीं है। इसका अर्थ है मानव गरिमामय एवं सम्मानजनक जीवन यापन करे। यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार मिले और उसकी बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हो। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने समय-समय पर अनेक योजनाएँ लागू की, जिनमें महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) भी इसी दिशा में एक मील का पत्थर साबित हो रहा है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना- राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम काम की गारंटी को कानूनी आधार प्रदान करता है। भारत सरकार द्वारा 5 सितम्बर, 2005 को काम की कानूनी गारंटी प्रदान करने वाला यह राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम पारित किया गया।³ अक्टूबर 2009 में महात्मा गाँधी की 140वीं जयन्ती पर प्रधानमंत्री द्वारा नरेगा का नया नामकरण किया गया अब नरेगा को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के नाम पर महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) कर दिया गया है।⁴ और यही इस योजना का अर्थ है, जिसके माध्यम से यह गारन्टी प्रभाव में आ जाती है। यह अधिनियम एक राष्ट्रीय अधिनियम और योजना राज्य विषयक है।⁵ महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की अनेक विशेषताएँ हैं जिन्हें निम्न प्रकार समझाया जा सकता है।

रोजगार की गारंटी के लिए प्रत्येक परिवार के अकुशल शारीरिक मजदूरों के लिए सहमत वयस्क सदस्य को प्रत्येक वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिनों के रोजगार की

गारन्टी देता है। इस प्रकार एक परिवार एक वर्ष में कम से कम 100 दिनों का काम प्राप्त करने का हकदार होगा।

1. बेरोजगारी भत्ता- यदि पात्र आवेदक को काम की मांग के 15 दिनों के भीतर रोजगार नहीं मिलता है तो उसे निर्धारित शर्तों के अनुसार बेरोजगारी भत्ता दिया जायेगा। यदि वह व्यक्ति या उसके स्थान पर उसके परिवार का अन्य व्यक्ति आवंटित कार्य के लिए उपस्थित नहीं होता है तो वह आगे से बेरोजगारी भत्ते का हकदार नहीं होगा।
2. कार्यों का चयन- मनरेगा के अर्न्तगत अपने ही गाँव के कार्यों का चयन करने का अधिकार ग्रामवासियों को दिया गया है। कार्यों का चयन प्राथमिकता के तौर पर ग्रामवासियों द्वारा दिया जायेगा न कि कर्मचारियों द्वारा मुख्य रूप से ग्राम सभा कार्यों के चयन एवं वार्षिक योजना तैयार किये जाने हेतु अधिकृत है। ग्राम सभा द्वारा ही सामाजिक अंकेक्षण किया जायेगा। ग्राम सभा को ही योजना की प्रगति एवं कार्यों की गुणवत्ता के पर्यवेक्षण हेतु सशक्त किया गया है।⁶
3. महिलाओं को प्राथमिकता- इस योजना में रोजगार प्रदान करने में महिलाओं को प्राथमिकता देने का प्रावधान है, ताकि रोजगार प्राप्त करने वालों में कम से कम एक तिहाई भाग महिलाओं को होना चाहिए।
4. पारदर्शिता- इस योजना की एक और विशेषता पारदर्शिता है। इसके लिए भुगतान सार्वजनिक रूप से किये जाने तथा कार्य लोगों की जानकारी में किये जाने की व्यवस्था है।
5. न्यूनतम मजदूरी की गारन्टी- राज्य कृषि श्रमिकों के लिए लागू न्यूनतम मजदूरी प्रदान करेगा तथा मजदूरी का भुगतान कार्य पूर्ण होने के 2 सप्ताह के भीतर किया जायेगा। कार्य कर्मकार के निवास स्थान से 5 किमी की परिधि के भीतर दिया जायेगा। यदि उसके बाहर रोजगार दिया जाता है तो 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी। प्रत्येक कार्यस्थल पर पीने का पानी छाया, विश्राम स्थल और प्राथमिक चिकित्सा पेटी उपलब्ध कराई जायेगी। यदि कार्य स्थल पर लाये जाने वाले बच्चों की संख्या 5 से अधिक है तो किसी व्यक्ति को बच्चों की देखभाल करने की जिम्मेदारी दी जायेगी और ऐसे व्यक्ति को अन्य श्रमिकों की तरह किये गये कार्यों का भुगतान किया जायेगा। कार्यस्थल पर रोजगार के दौरान शारीरिक क्षति होने पर श्रमिक को राज्य सरकार द्वारा मुफ्त इलाज की सुविधा दी जायेगी।
6. पंचायतों की भूमिका- इस योजना में पंचायतों की भूमिका निर्णायक मानी गई है अर्थात् सभी स्तरों पर पंचायतें योजना के नियोजन एवं क्रियान्वयन में निर्णायक भूमिका निभायेगी। इस प्रकार इस योजना के बहुआयामी उद्देश्य एवं विशेषताएँ हैं। यह योजना निःसंदेह संविधान की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की संकल्पना को साकार करने की दिशा में एक सशक्त कदम है।⁷

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना के उद्देश्य- मनरेगा का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के उन कुशल शारीरिक कार्य करने के इच्छुक वयस्क सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिवस का रोजगार प्रदान करके देश के ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों को आजीविका प्रदान करता है। इसके अलावा निर्धन जीविका संसाधन के आधार को सुदृढ़ करना, सामाजिक समावेशन को अतिसक्रिय रूप से सुनिश्चित करना और पंचायती राज संस्थाओं को

सुदृढता प्रदान करना। ऐसे कार्य करना, जिनके माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन सुदृढ हो, जो कि सूखा वनों की कटाई और मिट्टी के कटाव जैसे आविर्भाव कारकों को दूर करते हैं और सतत विकास को प्रोत्साहन देते हैं। प्रजातंत्र को ग्राम स्तर से ही मजबूत करना तथा शासन में पारदर्शिता एवं जवाब देही सुनिश्चित करना। इस योजना के लागू हो जाने पर सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना व काम के बदले अनाज कार्यक्रम को इस योजना में मिला दिया गया है। एक केन्द्रीय रोजगार गारंटी परिषद इस योजना के विभिन्न कार्यों की देखभाल के लिए बनाई गई और इस प्रकार की परिषदें राज्य सरकारें भी बनायेंगी तथा जिलों में पंचायत समिति का गठन करके इस योजना की देखरेख, संचालन व क्रियान्वयन में भाग लेगी।

ग्राम सभा की सिफारिश पर ग्राम पंचायत कार्यों का चयन करेगी, जिन पर लोगों को काम दिया जायेगा। केन्द्रीय सरकार एक राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कोष बनायेगी और इसी प्रकार राज्य सरकारें भी ऐसा कोष स्थापित करेगी, ताकि गारंटी योजना को क्रियान्वित किया जा सके। यह योजना स्व-चुनाव विधि पर आधारित की गई है और न्यूनतम मजदूरी पर काम करने को तैयार व्यक्ति ही इसमें भाग लेने के लिए आगे आयेगे तथा उन्हें रोजगार देय होगा।⁸ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का क्रियान्वयन- 7 सितम्बर, 2005 को स्वीकृत ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के अनुरूप राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (नरेगा) 2 फरवरी, 2006 में देश के 200 पिछले जिलों में आरम्भ की गई तथा इसे पांच वर्षों में देश के सभी जिलों में विस्तारित करने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में जिलों में चल रही सम्पूर्ण ग्रामीण योजना और काम के बदले अनाज योजनाओं को महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण गारंटी योजना में समाहित कर लिया गया। 2 फरवरी, 2006 को नरेगा के अन्तर्गत अधिसूचित 200 अत्यधिक पिछड़े जिलों के अन्तर्गत अधिसूचित वित्तीय वर्ष 2006-07 में 130 और जिलों को अधिसूचित किया गया। 28 सितम्बर, 2007 को शेष 266 जिलों को भी अधिसूचित किया गया, जिनमें यह योजना 1 अप्रैल, 2008 से लागू की गई थी।⁹ अतः 2007-08 से मनरेगा का विस्तार करते हुए इसे 330 जिलों में लागू कर दिया गया तथा वर्ष 2008-09 में इसे देश के सभी ग्रामीण जिलों में लागू कर दिया गया। वर्तमान में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का क्रियान्वयन देश के सभी जिलों में किया जा रहा है। मनरेगा एक मांग आधारित स्कीम है जिसका केन्द्र बिन्दु जल संरक्षण, सूखाग्रस्त क्षेत्रों को उद्धार, भूमि विकास, बाढ़ नियंत्रण संरक्षण और सभी मौसमों में अच्छी सड़कों हेतु सड़क सम्बद्धता पर ध्यान देना है।¹⁰

सन 2006-07 के प्रथम चरण के जिलों में इस योजना के क्रियान्वयन से 2.10 करोड़ ग्रामीण परिवारों के लिए रोजगार की कुल संख्या में से 60 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के लोग थे तथा 40 प्रतिशत महिलाएं थीं। स्थायी परिस्थितियों के निर्माण के संकेन्द्रण के साथ आठ लाख कार्यों को लिया गया जिसमें 54 प्रतिशत कार्य जल संरक्षण और जल संग्रहण से सम्बन्धित थे। 2007-08 में 2.61 करोड़ ग्रामीण परिवारों ने रोजगार की मांग की थी, जिनमें से 2.57 करोड़ परिवारों को रोजगार प्रदान किया गया। बजट में 2007-08 के लिए 12000 करोड़ रुपये निर्धारित किये गये थे और इसमें से 30 जनवरी, 2008 तक 10501.02 करोड़ रुपये जारी किये गये।¹¹ मनरेगा हेतु वर्ष 2008-09 में 4.5 करोड़ घरों के 216.32 करोड़ लोगों को रोजगार दिया गया। वर्ष 2009-10 के दौरान 160 करोड़ मानव दिवस के तुल्य रोजगार दिया गया। इसी प्रकार वर्ष 2009-10 एवं 2010-11 के लिए क्रमशः 39100 करोड़ रुपये एवं 40000 करोड़ बजट आवंटित किया गया। वर्ष 2011-12 में भी इस कार्यक्रम के लिए 40000 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की गयी। वर्ष 2012-13 के लिए मनरेगा हेतु 33000 करोड़ रुपये आवंटित किया। इस के अलावा वर्ष 2012-13 का प्रारम्भिक शेष 10,009 करोड़ रुपये भी उपलब्ध था। अतः वर्ष 2012-13 में मनरेगा कार्यक्रम के लिए कुल राशि 43009 करोड़ रुपये

उपलब्ध रही। वर्ष 2014-15 में 31 दिसम्बर, 2014 तक 3.60 करोड़ परिवारों को मनरेगा के अर्न्तगत रोजगार प्रदान किया गया और रोजगार के 121.25 करोड़ श्रम दिवस सृजित किये गये। इस कार्यक्रम में वंचित तबकों अनुसूचित जाति, जनजाति के 40 प्रतिशत एवं 65 प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी रही।¹² वर्ष 2014-15 में 95.14 लाख कार्य किये गये। इसमें से 31 प्रतिशत जलसंरक्षण के लिए, 14 प्रतिशत अनुसूचित जाति, जनजाति, बीपीएल तथा आईएवाई लाभार्थियों की मालिकना भूमि पर सिंचाई सुविधा का प्रावधान, 14 प्रतिशत ग्रामीण सम्पर्क तथा 6 प्रतिशत भूमि विकास के लिए थी।

केन्द्रीय सरकार ने मनरेगा में एक अधिसूचना जारी कर अकुशल हस्त कर्मकारों के लिए राज्यवार मजदूरी की दर इस प्रकार रखी है। भारत में महिलाओं की भागीदारी 2016-17 में 56 प्रतिशत और 2017-18 में 54 प्रतिशत रही, जो योजना की एक तिहाई भागीदारी की वैधानिक अनिवार्यता से ज्यादा है। प्रबन्धन सूचना प्रणाली के अनुसार मौजूदा वित्त वर्ष 2017-18 में रोजगार प्राप्त करने वाले 07.45 करोड़ व्यक्तियों में 3.81 करोड़ महिलाएं थी। अधिकारिक आंकड़ों के अनुसार 2018-19 में 2017-18 की तुलना में काम की मांग में 10 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई। इसके साथ ही वर्ष 2018-19 में वर्ष 2010-11 के बाद से मनरेगा के तहत व्यक्ति कार्य दिवस की सबसे अधिक संख्या दर्ज की गई।¹³ मार्च, 2019 तक मनरेगा के तहत 255 करोड़ व्यक्ति कार्य दिवस पैदा किये गये। वर्ष 2017-18 में 233 करोड़ व्यक्ति कार्य दिवस पैदा हुआ था।¹⁴ 3 मई, 2020 तक 14.62 लाख पर्सन डे काम जेनरेट ओर हुआ। 2.33 करोड़ व्यक्तियों मनरेगा के तहत काम मांगने पर 3 मई 2020 तक काम दिया गया मार्च 2020 में 18 करोड़ 19 लाख पर्सन डे काम हुआ था जो कोरोना के चलते अप्रैल-मई 2020 में 13 करोड़ 60 लाख पर्सन डे रह गया। अप्रैल 2020 तक 8.17 जॉब कार्ड धारक मनरेगा में काम सक्रिय रहे।¹⁵

लॉकडाउन की घोषणा होने के बाद कई राज्यों के मजदूरों ने शहरों से गांव की तरफ पलायन किया तो बेरोजगार हुए इन मजदूरों ने मनरेगा को रोजगार का प्रमुख विकल्प माना। देश की प्रमुख शोध संस्था सेन्टर फॉर द स्टडी आफ डेवलपिंग सोसाइटीज के लोकनीति कार्यक्रम के परामर्श से पूरे देश के सर्वे में सामने आया कि छत्तीसगढ़ राज्य में मनरेगा के तहत सबसे ज्यादा रोजगार दिया गया। यहा 70 फीसदी ग्रामीणों को रोजगार दिया गया जबकि उत्तराखण्ड में 65 प्रतिशत, राजस्थान में 59 प्रतिशत, अरुणाचल प्रदेश में 29 प्रतिशत, त्रिपुरा में 27 प्रतिशत, हरियाणा में 25 प्रतिशत को रोजगार मिला वहीं सबसे कम रोजगार देने वाले राज्यों में गुजरात 02 प्रतिशत, झारखण्ड 09 प्रतिशत, पंजाब 07 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश 07 प्रतिशत तथा मध्यप्रदेश में 19 प्रतिशत व्यक्तियों को काम दिया गया। यह सर्वे देश के 20 राज्यों व केन्द्रशासित राज्यों के 179 जिलों में 30 मई से 16 जुलाई, 2020 के बीच किया गया।¹⁶

केन्द्रीय सरकार ने मनरेगा में 1 अप्रैल, 2020 को एक अधिसूचना जारी कर अकुशल हस्त कर्मकारों के लिए राज्य वार मजदूरी की दर इस प्रकार रखी है -आन्ध्रप्रदेश-237 रुपये, अरुणाचल प्रदेश-205, असम-213, बिहार-194, छत्तीसगढ़-190, गोवा-280, हरियाण-224, हिमाचल प्रदेश गैर अनुसूचित क्षेत्र 198 व जनजाति क्षेत्र-248, लददाख 204, जम्मू-कश्मीर-204, झारखण्ड- 194, कर्नाटक-225, केरल-291, मध्यप्रदेश -190, मणिपुर-238, मेघालय - 203, मिजोरम-225, नागालैण्ड 205, ओडिशा 207, पंजाब 263, राजस्थान 220, सिक्किम 205, सिक्किम तीन ग्राम पंचायत ज्ञानथांग, लाचुंग और लाचेन में 308, तमिलनाडु में 256 रुपये, तेलंगाणा में 237, त्रिपुरा में 205 उत्तरप्रदेश में 201, उत्तराखण्ड में 201, पश्चिम बंगाल में 204, अण्डमान निकोबार में अण्डमान जिला 267 निकोबार जिला 282, दादर और नागर हवेली 258, दमन और दीप 227, लक्ष्यदीप 266 पाडुचेरी में 256 रुपये है।¹⁷

राजस्थान में मनरेगा का क्रियान्वयन- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, 2005 (2005 का अधिनियम सं0 42) की धारा-4 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राजस्थान सरकार ने 13 अक्टूबर, 2005 को ग्रामीण परिवारों को रोजगार गारंटी देने हेतु एक अधिसूचना जारी की, जिसका नाम राजस्थान ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, 2006 है। प्रथम चरण में यह राज्य के 6 जिलों बासवाड़ा, डूंगरपुर, झालावाड़, करोली, उदयपुर तथा सिरोही में वर्ष 2006-07 में लागू किया गया। बाद में वर्ष 2007-08 में इस योजना को दो अन्य जिलों में लागू किया गया। वितीय वर्ष 2008-09 में 1 अप्रैल 2008 से राजस्थान के सभी 33 जिलों में इस रोजगार गारंटी योजना को लागू कर दिया है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के कार्यों का सुचारू रूप से संचालन के लिए राजस्थान में एक परिषद का गठन किया है।¹⁸ राजस्थान राज्य रोजगार गारंटी परिषद के नाम से गठित इस संस्था को सोसाइटी एक्ट के तहत पंजीकृत कराया गया है। केन्द्र सरकार इन कार्यों के लिए राशि सीधे इस परिषद को भेजती है और यहाँ से राशि जिला परिषदों को भेजी जाती है। इस परिषद के अध्यक्ष ग्रामीण विकास और पंचायती राज मंत्री होते हैं।

इसके तहत पहली बार राजस्थान में कानून के जरिये रोजगार का अधिकार दिया गया है, मनरेगा में सहायता राशि का अनुपात केन्द्र का 90 प्रतिशत एवं राज्य सरकार का 10 प्रतिशत है। वर्ष 2007-08, 2008-09 तथा 2009-10 में मनरेगा के क्रियान्वयन में राजस्थान पूरे देश में प्रथम स्थान पर तथा राज्य का डूंगरपुर जिला देश में पहले स्थान पर रहा है।¹⁹ वर्ष 2017-18 के दौरान, दिसम्बर 2017 तक 3974.30 करोड़ रुपये व्यय कर 1818.19 लाख मानव रोजगार दिवसों का सृजन कर 39.58 लाख परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया। 0.34 लाख परिवारों को 100 दिवसों का रोजगार प्रदान किया गया। 2018-19 के दौरान 2942.38 लाख मानव दिवस रोजगार सृजित कर 3886.00 करोड़ रुपये का भुगतान मजदूरी के रूप में किया गया है। वही वर्ष 2019-20 के दौरान दिसम्बर 2019 तक कुल 5735.66 करोड़ रुपये व्यय कर 2661.92 लाख परिवारों को रोजगार दिवसों का सृजन कर 51.62 लाख परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया तथा 3.08 लाख परिवारों को पूर्ण 100 दिवसों का रोजगार प्रदान किया गया।²¹

राजस्थान में कोरोना काल दौरान दूसरे राज्यों से काम छोड़कर आये श्रमिकों के लिए मनरेगा योजना संजीवनी बनकर आई है। करीब 13 लाख प्रवासी श्रमिकों को मनरेगा में रोजगार मिला है। राज्य में योजना के तहत श्रमिक नियोजन प्रतिदिन 50 लाख से अधिक हो गया है, जो देश में सबसे ज्यादा है। लॉकडाउन के कारण जहां अप्रैल, 2020 में केवल 62 हजार श्रमिक नियोजित थे, उसकी संख्या बढ़कर 8 जून, 2020 को 50.20 लाख पहुँच गई है।

दूसरे राज्यों में रोजगार छोड़कर आये करीब 13 लाख प्रवासी श्रमिकों को मनरेगा योजना के तहत काम मिला है। भीलवाड़ा जिले में सर्वाधिक 4.11 लाख से अधिक श्रमिक नियोजित है। इसी प्रकार डूंगरपुर जिले में 3.55 लाख, बासवाड़ा जिले में 3.50 लाख तथा अजमेर जिले में 2.67 लाख से अधिक श्रमिकों को योजना के तहत रोजगार मिला है। प्रदेश में 8 जून, 2020 तक 50.20 लाख लोग मनरेगा योजना में काम कर रहे हैं। जो बीते वर्ष 2019 की तुलना में 17 लाख से ज्यादा है। बीते साल 2019 में प्रदेश में 32 लाख 98 हजार 638 मनरेगाकर्मि कार्यरत थे। यह संख्या प्रवासी श्रमिकों को रोजगार मिलने के बाद बढ़ी है। ज्यादातर मजदूर श्रमिक जो वापस लौटकर मनरेगा में काम कर रहे हैं, उनके जॉब कार्ड

पहले से बने हुए हैं। लेकिन जिनके जॉब कार्ड नहीं बने थे। उनके लिए भी काम जारी है और अब तक प्रदेश में एक लाख 7 हजार नये जॉब कार्ड बने हैं, जिनमें से 5 हजार जॉब कार्ड तो पिछले मई, 2020 में ही जारी हुए हैं।²²

अलवर जिला कलेक्टर इन्द्रजीत सिंह ने बताया कि राजगढ़ ब्लॉक की 30 ग्राम पंचायतों में 13970 श्रमिक रामगढ़ ब्लॉक की 46 ग्राम पंचायतों में 6922 श्रमिक, कठूमर ब्लॉक की 41 ग्राम पंचायतों में 6824 श्रमिक, किशनगढ़ ब्लॉक की 34 ग्राम पंचायतों में 6927 श्रमिक, थानागाजी ब्लॉक की 35 ग्राम पंचायतों में 6633 श्रमिक, बानसूर ब्लॉक की 39 ग्राम पंचायतों में 5710 श्रमिक, रैणी ब्लॉक की 23 ग्राम पंचायतों में 5372 उमरैण ब्लॉक की 41 ग्राम पंचायतों में 5557 श्रमिक, मुण्डावर की 40 ग्राम पंचायतों में 3858 श्रमिक, लक्ष्मणगढ़ की 42 ग्राम पंचायतों में 5272 श्रमिक, कोटकासिम ब्लॉक की 24 ग्राम पंचायतों 3756 श्रमिक, ब्लॉक नीमराना की 33 ग्राम पंचायतों में 2188 श्रमिक, तिजारा ब्लॉक की 43 ग्राम पंचायतों में 3836 श्रमिक तथा बहरोड ब्लॉक की 28 ग्राम पंचायतों में 1417 श्रमिक कार्यरत रहे हैं।²³ 15 मई, 2020 तक राजस्थान के अलवर जिले में मनरेगा योजना के तहत समस्त ब्लॉकों की 581 ग्राम पंचायतों में 47193 श्रमिकों को रोजगार दिया गया²⁴ जबकि 17 मई 2020 को संख्या बढ़कर 52294 श्रमिक हो गई²⁵ तथा 22 मई 2020 को 61968 श्रमिकों को मनरेगा के तहत रोजगार उपलब्ध कराया गया।²⁶ मनरेगा योजना के तहत कराये जा रहे कार्यों में समस्त ब्लॉकों में 15 जून 2020 को 77511 श्रमिकों को रोजगार प्रदान किया गया।²⁷ लॉकडाउन के पश्चात जिले में मनरेगा के तहत कराये जा रहे कार्यों पर जून, 2020 तक नियोजित श्रमिकों की संख्या 78 हजार 242 तक पहुंच गई है। जिले में कोरोना काल के दौरान बेरोजगार हुए लोगों को मनरेगा योजना वरदान साबित हो रही है। जिससे लगातार श्रमिकों की संख्या बढ़ रही है।

मनरेगा योजना की समस्याएँ- इसमें साधनों के दुरुपयोग की शिकायते सामने आई हैं और भ्रष्टाचार के मामलों की रिपोर्ट हुई है। इसे लम्बे समय तक चलाने के लिए भारी मात्रा में संसाधनों की आवश्यकता होगी। जिसका सम्भवतः अभाव पाया जाता है। खेतों में फसल बुवाई, निराई तथा कटाई के समय श्रमिकों का अभाव नजर आने लगा है और आस पास के कारखानों में काम करने लिए श्रमिकों की कमी महसूस होने लगी है। अप्रैल, 2020 से जून, 2020 के दौरान लॉकडाउन के समय जरूर श्रमिकों की संख्या में असीमित वृद्धि दर्ज की गई। मनरेगा के कार्यों में श्रम की ट्रेनिंग व दक्षता के विकास की कोई व्यवस्था नहीं है इसलिए इसे नियोजित विकास में प्रत्यक्षता से नहीं जोड़ा जा सकता है, जिससे इसका दीर्घकालीन प्रभाव स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। उचित चिकित्सा व्यवस्था का अभाव भी देखने को मिल रहा है। 16 जुलाई, 2020 को ग्राम पंचायत के तिगावा गाँव जिला अलवर के एक व्यक्ति की मनरेगा के तहत चल रहे ग्रेवल सड़क निर्माण के दौरान कार्य करते समय मृत्यु हो गई। ऐसी ही कई स्थानों पर श्रमिकों का स्वास्थ्य अचानक खराब होने की खबरे आती रही है।

मनरेगा में मजदूरों की मजदूरी का भुगतान समय पर नहीं किया जा रहा है। नरेगा संघर्ष मोर्चा ने ही सरकार से वित्त वर्ष 2018-19 के लिए मनरेगा के तहत मजदूरी की दरों में भी संशोधन की मांग की है तथा मजदूरी 600 रुपये निर्धारित करने की मांग की है। क्योंकि सांतवे वेतन आयोग ने न्यूनतम मासिक वेतन 18000 रुपये देने की सिफारिश की थी। राजस्थान में भी इस योजना में अनेक कमियां देखने को मिली हैं कम मजदूरी दर, मस्टरोल

में गलत नाम चढ़ाना, श्रमिकों की जगह मशीनों से काम करना, फर्जी उपस्थिति दिखाकर भुगतान उठा लेना, घटिया निर्माण सामग्री का उपयोग, कार्य स्थल पर समुचित सुविधाओं का अभाव, मेटों की मनमानी एवं उनके द्वारा मजदूरों के साथ भेदभाव, अधिकारियों द्वारा गबन एवं कमीशनखोरी, स्वीकृत जगह से अन्य जगह कार्य कराना, बिना काम कराये भुगतान उठाना, भाई-भतिजावाद अपनाना आदि कमियां मनरेगा योजना में देखने को मिलती रहती है। शहर के नजदीक ग्रामीण क्षेत्र में कर्मकारों की कमी भी देखने को मिली है जो भी इस योजना में एक बड़ी समस्या है। क्योंकि कम्पनियों में मजदूरी दर अधिक तथा मनरेगा में मजदूरी दर बहुत कम है।

मनरेगा योजना से सम्बन्धित कुछ सुझाव-

1. मजदूरों का सारा डाटा आनलाइन होना चाहिए तथा उनकी उपस्थिति फिंगर प्रिन्ट द्वारा की जाये ताकि भ्रष्टाचार की सम्भावना ना रहे।
2. स्थानीय स्तर पर पौधारोपण किया जाये नदियों एवं नालों पर स्टॉप डैम बनाए जाये। ग्राम में निस्तार तालाब आदि का निर्माण कराना चाहिए, जिससे कि पानी का संचय किया जा सके, सिंचाई स्रोतों में बढ़ोतरी होगी, लोगों को रोजगार के साधन उपलब्ध होंगे तथा स्थायी परिसम्पत्ति के निर्माण से लोगों की आजीविका में सत्ता आयेगी। शासकीय कार्यों का मूल्यांकन समय से होना चाहिए ताकि कार्यों की वास्तविक स्थिति का पता चल सके।
3. मनरेगा कार्यक्रम में स्थानीय लोगों को अधिक से अधिक भागीदार बनाये जाये।
4. मनरेगा कार्यों का सामाजिक अंकेक्षण एवं निगरानी सतर्क रूप से चलनी चाहिए, जिससे पारदर्शिता एवं जवाबदेही में बढ़ोतरी हो सके।
5. अभी तक मनरेगा के अन्तर्गत मानव श्रम पर आधारित कच्चे कार्य यथा जोहड़, एनीकट खुदाई, ग्रेवल सड़क निर्माण, भूमि समतलीकरण आदि काम अधिक कराये जाते रहे हैं। इनकी गुणवत्ता एवं स्थायित्व दोनों ही निम्न स्तर के हैं क्योंकि वर्षा के कारण सड़क तथा एनीकट टूट जाते हैं। अतः अब इस योजना के माध्यम से स्कूल भवन, चारदीवारी, शमशान एवं कब्रिस्तान सुधार कार्य, सामुदायिक भवन आदि स्थायी परिसम्पत्तियों का भी निर्माण कराया जाना चाहिए ताकि समुदाय को इनका लाभ मिल सके।
6. बढ़ती बेरोजगारी को देखते हुए मनरेगा के अन्तर्गत वर्ष में 100 दिन की सीमा को बढ़ाकर 200 दिन किया जाये तथा इस योजना को विस्तार शहरी गरीबों तक भी किया जाना चाहिए।
7. इन्दिरा आवास योजना, टांका निर्माण व अनुसूचित जाति एवं जनजाति के मकान निर्माण सम्बन्धी कार्य मनरेगा में शामिल किये जाने चाहिए।
8. मनरेगा सम्बन्धी शिकायतों का तुरन्त निस्तारण हो तथा जन सामान्य में इस योजना के सम्बन्ध में फैली गलत धारणाओं को दूर किया जाये।
9. मनरेगा योजना में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही तय की जाये तथा लापरवाही के मामलों में सजा का प्रावधान हो।
10. मनरेगा कर्मकारों के लिए कार्य स्थल पर उचित परिवहन चल चिकित्सा व्यवस्था होनी चाहिए ताकि गम्भीर परस्थिति आने पर प्राथमिक इलाज तुरन्त मिल सके।

11. मनरेगा योजना में श्रमिकों को मिलने वाला प्रतिदिन की मजदूरी बढ़ाकर 600 रुपये की जाये क्योंकि 7वे वेतन आयोग ने न्यूनतम मासिक वेतन 18000 रुपये प्रतिमाह निर्धारित किया है।

अतः मनरेगा योजना के तहत कर्मकारों को स्थानीय स्तर पर रोजगार की उपलब्धता के साथ-साथ स्थायी परिसम्पत्ति निर्माण का भी लाभ मिलेगा परिणाम स्वरूप लोगों की सतत आजीविका सुनिश्चित की जा सकेगी और प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर ढंग से प्रबन्धन हो सकेगा। आज ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं के निराकरण में विकासात्मक एवं चेतनामूलक गतिविधियों की आवश्यकता है, जिससे ग्रामीण लोग न केवल आत्मनिर्भर बनेंगे बल्कि अपने जीवन स्तर को भी उपर उठा सकेंगे। यह मनरेगा जैसी योजनाओं को सफल क्रियान्वयन से ही सम्भव हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. ग्रामीण विकास समीक्षा, शोध पत्रिका, अंक 26, खण्ड-2, जुलाई दिसम्बर 1999, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद, प्र-1
<https://m/hindi.indiawaterportal.org>
3. बावेल, बंसतीलाल, 'पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाएं, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011 पृ. 144
4. रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइसेज हाफ ईयरली, अंक 13, वर्ष 07, दिसम्बर 2001, पृ. 257
5. त्यागी, सुरेन्द्र, 'पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, वन्दना पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2011 पृ. 226
6. आर्थिक समीक्षा, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, आयोजन विभाग, राजस्थान, जयपुर, 2017-18, पृ. 135
7. बावेल, बंसतीलाल, उपयुक्त, पृ. 145
8. त्यागी, सुरेन्द्र, उपयुक्त, पृ. 227
9. सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह, ग्रामीण विकास: सिद्धान्त नीतियां एवं प्रबन्ध, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011 पृ. 264
10. स्वामी, एच. आर व गुप्ता, वी.पी. ग्रामीण विकास एवं सहकारिता आर.बी.डी. पब्लिशिंग हाउस जयपुर पृ. 148
- 11- <https://www.indiabudget.nic.in>
12. भारत 2016, पृ. 707
13. <https://www.gaocannction.com>
14. <https://www.mthewirehindi.com>
15. <https://www.bbc.com>hindi>
16. राजस्थान पत्रिका, 17 अगस्त, 2020
17. भारत का राजपत्र भाग-पृष्ठ-3 उपखण्ड (पृ) नई दिल्ली 2020
18. ग्रामीण विकास समीक्षा, शोध पत्रिका अंक 45, संख्या-2 जुलाई-दिसम्बर 2009, राष्ट्रीय, ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद 2009, पृ. 4
- 19- <https://m/hindi.indiawaterportal.org>
20. आर्थिक समीक्षा, उपयुक्त 2018-19 पृ. 139
21. आर्थिक समीक्षा, उपयुक्त 2019-20 पृ. 41
22. <https://m.patrika.com>
23. <https://m.patrika.com>

24. राजस्थान पत्रिका, 16 मई, 2020
25. उपयुक्त, 18 मई, 2020
26. उपयुक्त, 23 मई, 2020
27. उपयुक्त, 16 जून, 2020

ग्रामीण विकास में प्रधानमंत्री सड़क योजना का अवदान- एक अध्ययन (इलाहाबाद जनपद के फूलपुर तहसील के बहादुरपुर विकास खण्ड के सन्दर्भ में)

• सिद्धार्थ मिश्र

•• विनोद शंकर सिंह

सारांश-प्रस्तुत शोध का उद्देश्य प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत बनाई गई सड़कों की गुणवत्ता की जानकारी प्राप्त करना है। इस अध्ययन के लिए इलाहाबाद जिले के फूलपुर तहसील के बहादुरपुर विकासखण्ड को लिया गया है। इस विकास खण्ड की कुल आबादी 319930 है। इनमें से 168119 पुरुष हैं, जबकि महिलाओं की संख्या 151811 है। 0-6 वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों की संख्या 47458 है। इस अध्ययन के लिए न्यादर्श के रूप में बहादुरपुर विकासखण्ड के 400 इत्तरदाताओं का चयन किया गया है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया है कि बहादुरपुर विकास खण्ड में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के द्वारा बनाई गई सड़कों की गुणवत्ता काफी सीमा तक अच्छी है, लेकिन फिर भी इसमें सुधार की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द- गुणवत्ता, विकासखण्ड, आबादी, इत्तरदाता

भूमिका- भारत की 1.3 बिलियन आबादी की 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, देश की आर्थिक वृद्धि और विकास काफी हद तक ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर आधारित होता है। विकास के मुख्य घटकों से ग्रामीण आबादी को पहुँच उपलब्ध कराने में उचित ग्रामीण संपर्कता का अभाव एक बड़ी समस्या है, क्योंकि ग्रामीण सड़कों न केवल ग्रामीणों को भौतिक सड़क संपर्क उपलब्ध कराती है, बल्कि आर्थिक विकास, स्वास्थ्य परिचर्या, शिक्षा और विकास के अन्य घटकों से पहुँच बढ़ाकर अपार संभावनाएँ भी उपलब्ध कराती है। अतः ग्रामीण संपर्कता ग्रामीण क्षेत्रों को मुख्य धारा की आर्थिक वृद्धि और विकास में एकीकृत करने तथा स्थायी रूप से गरीबी उन्मूलन की सुनिश्चितता का एक अहम कारक है।¹

अध्ययन की आवश्यकता- भारत सरकार ग्रामीणों के लिए कई प्रकार की योजनाएँ चला रही है। जिसका उद्देश्य होता है कि ग्रामीण विकास और ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाना। किन्तु भारत सरकार की अनेक योजनाएँ ग्रामीणों तक ठीक ढंग से नहीं पहुँच पाती हैं। आधे से अधिक योजनाओं को लक्ष्य प्राप्ति के पहले से ही बंद कर दिया जाता है और शेष बची योजनाएँ दलगत राजनीति एवं स्वार्थ के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाती हैं। आखिर ऐसा क्यों है? क्या ग्रामीण योजनाएँ जनता तक पहुँच नहीं पाती हैं या सरकार केवल ग्रामीण योजनाओं को सिर्फ कागजों पर ही पूरा कर पाता है। इन्हीं सब ज्वलन्त प्रश्नों को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत शोध विषय के अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई।²

● शोध छात्र, समाजकार्य, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, म.गॉ.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

●● एसोसिएट प्रोफेसर, समाजकार्य, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, म.गॉ.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

अध्ययन की कठिनाइयाँ-

1. शोध का विषय सर्वेक्षणात्मक व ग्रामीण से सम्बद्ध होना भी एक कठिनाई है।
2. सरकारी दफ्तरों व ग्रामीण जन-जीवन तथा इनकी मूलभूत आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करने में काफी आर्थिक व्यय करना पड़ा।

उद्देश्य-प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत निर्मित की गई सड़कों की गुणात्मक जानकारी प्राप्त करना।

उपकल्पना-शोध अध्ययन के लिए निर्धारित उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति एवं परीक्षण के लिए कुछ उपकल्पनाओं का निर्माण किया है, जो निम्नवत हैं-

1. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना से गाँवों का विकास हुआ है।
2. यह योजना संपूर्ण क्षेत्रों के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।
3. योजना से अनेक ग्रामीण लाभान्वित हुए हैं।³

अध्ययन का क्षेत्र- प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के रूप में इलाहाबाद जनपद के फूलपुर तहसील के बहादुरपुर विकासखण्ड का चयन किया गया है। उत्तरप्रदेश के शहरी क्षेत्र में स्थित यह इलाहाबाद जिले के 20 ब्लकों में से एक है। प्रशासन रजिस्टर के अनुसार बहादुरपुर का खण्ड क्रमांक 464 है। इस ब्लॉक में 201 गांव हैं और इस ब्लॉक में कुल 51830 घर हैं। बहादुरपुर ब्लॉक की कुल आबादी 319930 है। इनमें से 168119 पुरुष हैं, जबकि महिलाओं की संख्या 151811 है। 0-6 वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों की संख्या 47458 है।⁴ इस विकासखण्ड में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना से लाभान्वित लगभग 12 गांव हैं।⁵

तथ्य संकलन के स्रोत -वर्तमान अध्ययन के निमित्त तथ्य संकलन के लिए दो प्रकार के स्रोतों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से संबन्धित तथ्यों को संकलित करने के लिए 'साक्षात्कार अनुसूची' का प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से उत्तरदाताओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत जीवन से संबन्धित प्रश्नों के उत्तर ज्ञात किये गये हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात्कार अनुसूची से ही प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत कार्यक्रमों का ग्रामवासियों को कौन-2 से लाभ प्राप्त हुए हैं। इन्हीं से संबन्धित प्रश्नों को क्रमबद्ध करके उत्तर भी उत्तरदाताओं से पूछा गया। अध्ययन के निमित्त द्वितीयक स्रोत के रूप में विभिन्न पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और जर्नल का उपयोग किया गया है। साथ ही लोक निर्माण विभाग, इलाहाबाद से प्राप्त आँकड़ों तथा प्रतिवेदनों का उपयोग किया गया है।⁶ तथ्यों का विश्लेषण उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण नीचे तालिकाओं में किया जा रहा है।

सारणी-01

पीएमजीएसवाई सड़क की गुणवत्ता के बारे में उत्तरदाताओं की राय

क्रमांक	प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
1	श्रेष्ठ	92	23.00
2	बेहतर	102	25.50
3	अच्छा	135	33.75
4	खराब	71	17.75
5	योग	400	100.0

उपरोक्त सारणी में अंकित आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि अध्ययन के न्यादर्श में चयनित 400 उत्तरदाताओं में से 135 उत्तरदाताओं ने अच्छी गुणवत्ता की श्रेणी में रखा है, 102 उत्तरदाताओं ने बेहतर गुणवत्ता की श्रेणी में रखा है, 92 उत्तरदाताओं ने श्रेष्ठ गुणवत्ता की श्रेणी में रखा है जबकि 71 उत्तरदाताओं ने माना है कि सड़क की गुणवत्ता खराब है।⁷

सारणी-02

चयनित उत्तरदाताओं की श्रेणी

क्रमांक	उत्तरदाताओं की श्रेणी	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	किसान	128	32.0
2	व्यापारी	103	25.75
3	कृषि मजदूरी	57	14.25
4	नौकरी पेशा	70	17.50
5	गृहणी	19	4.75
6	विद्यार्थी	23	5.75
7	योग	400	100.0

उपरोक्त सारणी में अंकित आँकड़ों से यह पता चलता है कि अध्ययन के न्यादर्श में चयनित 400 उत्तरदाताओं में से 128 (32.00 प्रतिशत) उत्तरदाता किसान हैं, 103 (25.75%) उत्तरदाता व्यापारी वर्ग से आते हैं, 70 (17.50 प्रतिशत) उत्तरदाता नौकरी पेशा हैं, 23 (5.75 प्रतिशत) उत्तरदाता विद्यार्थी हैं, जबकि 19 (4.75 प्रतिशत) उत्तरदाता गृहणी हैं।⁸

सारणी-03

उत्तरदाताओं के निवास से पीएमजीएसवाई सड़क की दूरी

क्रमांक	दूरी	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	0-0.5 किमी	107	26.75
2	0.5-1 किमी	102	25.50
3	1-2 किमी	85	21.25
4	2-3 किमी	57	14.25
5	3 किमी से अधिक	49	12.25
6	कुल	400	100.0

उपरोक्त सारणी के माध्यम से पीएमजीएसवाई सड़क से उत्तरदाताओं के निवास की दूरी पता चलती है। 107 (26.75 प्रतिशत) उत्तरदाता ऐसे हैं, जिनके निवास से पीएमजीएसवाई सड़क की दूरी 0-0.5 कि.मी. के अन्दर है। 102 (25.50 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के निवास से इस सड़क की दूरी 0.5-1 कि.मी. के अन्दर है, 85 (21.25 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के निवास से इस सड़क की दूरी 1-2 कि.मी. के अन्दर है, 57 (14.25 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के निवास से इस सड़क की दूरी 2-3 कि.मी. के अन्दर है, जबकि 49 (12.25 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के निवास से इस सड़क की दूरी 3 कि.मी. से अधिक है।⁹

निष्कर्ष-उपरोक्त अध्ययन से पता चलता है कि बहादुरपुर विकासखण्ड में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के द्वारा निर्मित की गयी सड़कों की गुणवत्ता अच्छी है। इस

सड़क से उत्तरदाताओं के निवास की दूरी भी बहुत अधिक नहीं है और प्रत्येक श्रेणी के लोग जैसे किसान, व्यापारी, मजदूरवर्ग, नौकरी पेशे वाले लोग, गृहणी इत्यादि इस सड़क का उपयोग करते हैं।

सुझाव – प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के द्वारा बनी सड़कों की गुणवत्ता काफी सीमा तक अच्छी है, फिर भी उसकी गुणवत्ता को और बढ़ाये जाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट 2019-20, पृ. .89
2. सिंह, रोहन प्रताप, 2014 'डॉ. अम्बेडकर ग्राम विकास योजनान्तर्गत क्रियान्वित कार्यक्रमों का मूल्यांकन' शोध प्रबन्ध, पृ. -42,43
3. वही पृ. -46
4. www.ikivillage.in
5. लो.नि.वि., इलाहाबाद
6. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष
7. साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी
8. व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित
9. व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

प्राचीन भारतीय इतिहास में दूत के अध्ययन के स्रोत : एक अवलोकन

• संतोष कुमार 'सुमन'

सारांश- प्राचीन भारतीय इतिहास में दूतों के अध्ययन के स्रोत के रूप में विभिन्न धार्मिक ग्रंथों, अभिलेख तथा विदेशी इतिहासकार एवं विदेशी भ्रमणकारी के लेख महत्वपूर्ण हैं। धार्मिक ग्रंथों के अंतर्गत ऋग्वेद, अथर्ववेद, महाभारत, रामायण आदि का अध्ययन, अभिलेखों में शहबाजगढ़ी अभिलेख तथा गरुड़ स्तम्भ लेख का अध्ययन महत्वपूर्ण है। स्रोतों के अध्ययन से दूत के विभिन्न कार्यों, अधिकारों, उनकी योग्यता, उनके वेतन तथा विशेषाधिकारों का पता चलता है। ऋग्वेद में अग्नि को देवदूत, यजमानों का दूत और मानवों का दूत आदि कहा गया है। अथर्ववेद में दूत का प्रयोग संदेशवाहक के अर्थ में किया गया है। कालान्तर में दूत का प्रयोग शांति और युद्ध-काल में राजाओं द्वारा अपने प्रतिनिधित्व करने के लिये कूटनीतिक प्रतिनिधि नियुक्त किया जाने लगा। समय-समय पर दूतों को कुछ विशेष अधिकार भी प्रदान किये जाते थे। प्रस्तुत शोध आलेख प्राचीन भारतीय इतिहास में दूत के अध्ययन के स्रोत पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द- दूत, संदेशवाहक, प्रतिनिधित्व, सूचनाएँ, शासन-व्यवस्था, स्रोत आदि

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है, जो ऋषियों द्वारा संकलित किया गया है। ऋग्वेद में कुल 10 मंडल और 1028 सूक्त हैं। इन सूक्तों से दूत की प्राचीनता, योग्यता और कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक युग के बाद क्रमशः बदलती हुई परिस्थितियों के साथ भारतीय राजनीति का क्षेत्र भी विकसित हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में आचार्यों और गुरुओं ने राजाओं के लिए विभिन्न धार्मिक नियमों के प्रतिपादन के साथ ही यदा-कदा शासन व्यवस्था का भी उल्लेख किया है। बाल्मीकिकृत रामायण में धर्म के साथ ही विभिन्न संवादों के माध्यम से शासन-व्यवस्था पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। वैदिक-कालीन ग्रंथों की अपेक्षा रामायण में शासन-पद्धति और अंतर्राज्यीय संबंधों के विकास के विषय में अधिक सूचनाएँ उपलब्ध हैं। शासन व्यवस्था के उल्लेख के साथ ही दूत की योग्यताओं, कार्यों, विशेषाधिकारों की चर्चा भी की गई है। इस दृष्टिकोण से बाल, अयोध्या, किषकन्धा, सुन्दर और युद्ध कांड उल्लेखनीय हैं। इन सबों अध्यायों या कांडों में दूत पर प्रकाश डाला गया है। ऐसा माना जाता है कि रामायण के बाद महाभारत की रचना हुई। महाभारत में भी धर्म के साथ ही शासन व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसमें सर्वप्रथम शासन-व्यवस्था संबंधी आवश्यक निर्देशों को सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में अंतर्राज्यीय संबंधों के परिप्रेक्ष्य में दूतों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अन्य प्रसंगों से भी दूत के कार्यों, विशेषाधिकारों, योग्यता आदि का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इन दृष्टिकोण से वन, उद्योग, शांति और आदि पर्व महत्वपूर्ण हैं।

इससे यह जानकारी प्राप्त होती है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में किसी न किसी

• शोधार्थी, इतिहास विभाग, बी. एन.एम.यू., मधेपुरा (बिहार)

रूप में दूत की अवधारणा विद्यमान थी। साथ ही अथर्ववेद में भी दूत के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र को राजशास्त्र पर लिखा गया प्रथम महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि इसकी रचना मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में हुई होगी।¹ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शासन-व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों और कूटनीति के संदर्भ में कौटिल्य ने दूत के विषय में विस्तार से लिखा है। दूत की योग्यताओं, कार्यों, विशेषाधिकारों, निर्देशों और वेतन आदि के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

मौर्य सम्राट अशोक के शहबागगढ़ी अभिलेख से विदेशों को भेजे गये दूतों का विवरण प्राप्त होता है। यह अभिलेख पत्थर के विशाल टुकड़े पर खुदा हुआ है, इससे अशोक द्वारा 'बौद्ध धम्म' प्रचार हेतु विदेशों में भेजे गये दूतों के विषय में सूचनायें प्राप्त होती हैं।² विदिशा के निकट बेसनगर से प्राप्त गरुड़ स्तम्भ लेख दूत के विषय में महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है। इस अभिलेख में काशीपुत्र भागभद्र का उल्लेख प्राप्त होता है। हेलियोडोरस ने गरुड़ स्तम्भ की स्थापना की थी।³ इस स्तम्भ लेख से स्पष्ट होता है कि भागभद्र के शासन-काल में तक्षशिला के यूनानी शासक अंतलिंकित ने अपने दूत हेलियोडोरस को विदिशा भेजा था।

मौर्य युग के पश्चात् सम्भवतः मनुस्मृति की रचना हुई। मनुस्मृति को धर्मशास्त्र की कोटि में रखा गया है। इस ग्रंथ में राजशास्त्र संबंधी विषयों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। दूत के अध्ययन के लिए इसका 'राजधर्म अध्याय' महत्वपूर्ण है, जिसके अध्याय सात से दूतों के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में भी दूतों के संबंध में कुछ सूचनायें प्राप्त होती हैं।

हिन्दू राजशास्त्र के ग्रंथ 'कामन्दकीय नीतिसार' से भी दूत के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रंथ को गुप्त काल की रचना माना जाता है।⁴ गुप्तकाल में ही कालिदास ने 'कुन्तलेश्वरदौत्यम्' की रचना की।⁵ इस ग्रंथ से यह पता चलता है कि किस प्रकार दूत अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दूसरे राज्य के दरवार में बड़े शान्त भाव से अपमानजनक परिस्थितियों को सहन कर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करता था।

दूत के विषय में जानकारी प्रदान करनेवाले राजशास्त्रीय ग्रंथों में 'शुक्र नीतिसार' भी उल्लेखनीय है। शुक्र-नीतिसार की रचना सातवीं-आठवीं शताब्दी ई. के लगभग हो चुकी थी।⁶ इसके द्वितीय अध्याय में दूतों के संबंध में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। दसवीं शताब्दी ई. के लगभग सोमदेवसूरी ने 'नीतिवाक्यामृतम्' की रचना की।⁷ शुक्रनीतिसार के बाद यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें दूतों के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें दूतों की योग्यता, परिस्थिति, कार्यों तथा निर्देशों के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। दूतों के संबंध में 'अग्निपुराण' में उल्लेखित विवरण भी महत्वपूर्ण है। इसमें दूतों के संबंध में परंपरागत तथ्यों को दर्शाया गया है। इस ग्रंथ का अध्याय 241 दूतों के विषय में ही लिखा गया है। बारहवीं शताब्दी में चालुक्य सम्राट सोमेश्वर तृतीय ने 'मानसोल्लास' की रचना की। ऐसा माना जाता है कि उसने अपने राज्य के सभी वर्गों के कल्याण के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ से पता चलता है कि उसके लिखने का समय 1129-30 ई0 रहा होगा।⁸ इस ग्रंथ से शासन-पद्धति के साथ ही दूत की योग्यताओं, कार्य और महत्व की जानकारी प्राप्त होती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में दूतों के अध्ययन में विदेशी साक्ष्यों का महत्वपूर्ण स्थान है, विशेष रूप से दूतों के आवागमन के विषय में विदेशी लेखकों और उनकी कृतियों से विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्न युगों में भारत आनेवाले विदेशी यात्रियों, पर्यटकों और दूतों ने भारत संबंधी अपना विवरण लिखा है। इसके अतिरिक्त रोम, चीन, श्रीलंका तथा अन्य देशों के लेखकों ने भी अपने देश का इतिहास लिखते समय भारत को भेजे गये दूत या भारत से आये हुए दूत और उनके द्वारा दिये गये उपहारों का उल्लेख किया है। इस प्रकार दूतों के विषय में विदेशी कृतियाँ निश्चित सूचनायें प्रदान करती हैं।

मेगास्थनीज को सेल्यूकस निकेडोर ने भारतीय सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त किया था।⁹ उसने अपने प्रवास काल में भारत के आन्तरिक भागों का भ्रमण किया और भारत के विषय में विस्तृत विवरण लिखा, जो 'इण्डिका' के नाम से विख्यात है। इण्डिका, मेगास्थनीज की ऐसी कृति है जिससे तत्कालीन भारत के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्लिनी और स्ट्रेबो जैसे यूनानी लेखक जो भारतीय नरेशों के यहाँ अतिथि रूप में ठहरे थे, इनके विवरण से भी मेगास्थनीज के चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में दूत के रूप में नियुक्त करने का साक्ष्य प्राप्त होता है। मिस्र के शासक टालोमी फिलेडेलफस द्वारा डायोनिसियस को बिन्दुसार के दरबार में दूत के रूप में नियुक्त किया गया था।¹⁰ मौर्य सम्राट अशोक द्वारा श्रीलंका में भी दूत भेजे जाने का तथा श्रीलंका के शासक देवानामपियतिस्स द्वारा सम्राट अशोक से मैत्री संबंधों की स्थापना हेतु भी दूत भेजे जाने का उल्लेख मिलता है।

निष्कर्ष – इस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास में दूतों के अध्ययन के लिए विभिन्न धार्मिक ग्रंथों यथा- ऋग्वेद, अथर्ववेद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि तथा विभिन्न अभिलेख जैसे- शहबाजगढ़ी से प्राप्त अभिलेख, गरुड़ स्तम्भ लेख आदि महत्वपूर्ण हैं। साथ ही विदेशी लेखकों के विवरणों, अतिथियों, विदेशी भ्रमणकारी के साक्ष्य दूत के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन सभी स्रोतों के अध्ययन से दूत के कार्यों, उनकी नियुक्ति, योग्यता, वेतन, अधिकारों, विशेषाधिकारों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

01. प्राचीन राज्यशास्त्र के प्रणेता, डॉ. श्यामलाल पाण्डेय, पृ.-16
02. प्राचीन भारत का इतिहास, रामशरण शर्मा, पृ.- 139
03. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, वाल्यूम 51, भाग-01, पृ.-422
04. प्राचीन राज्यशास्त्र के प्रणेता, डॉ. श्यामलाल पाण्डेय, पृ.-16
05. गुप्त सम्राट और उनका काल, डॉ. उदय नारायण राय, पृ.- 188
06. प्राचीन राज्यशास्त्र के प्रणेता, डॉ. श्यामलाल पाण्डेय, पृ.-17
07. नीति वाक्यामृतम में राजनीति, एम.एल. शर्मा, पृ.- 15-24
08. दकन का प्राचीन इतिहास, डॉ. जी. याजदानी, पृ.- 419-420
09. प्राचीन भारत का इतिहास, रामशरण शर्मा, पृ.- 135
10. अशोक, वी.ए. स्मिथ, पृ.-63

स्वाधीनता आंदोलन में अनुग्रह नारायण सिंह की भूमिका

• प्रीति कुमारी

सारांश- प्रस्तुत शोध आलेख में ब्रिटिश शासन के ऐतिहासिक अन्याय के खिलाफ गांधी जी के जनसम्पर्क योजना के अन्तर्गत अनुग्रह नारायण सिंह एवं अन्य कांग्रेसी नेताओं ने अप्रैल से जून 1942 ई० तक बिहार प्रांत के भागलपुर जिला के अंतर्गत विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किया। इस शोध अध्ययन में भारत छोड़ो आंदोलन में भागलपुर में बाबू अनुग्रह नारायण सिंह के योगदानों पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द- आन्दोलन, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय, अहिंसा, संगठन, कांग्रेस, संघर्ष, ब्रिटिश शासन

ब्रिटिश शासन के ऐतिहासिक अन्याय से देश के चारों ओर असंतोष फैला हुआ था। ऐसा लग रहा था कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक जबरदस्त संघर्ष अनिवार्य है। इस समय महात्मा गांधी ने जनता के साथ सम्पर्क की योजना को व्यावहारिक रूप दिया। इस योजना के द्वारा अनुग्रह नारायण सिंह एवं बिहार के अन्य कांग्रेसी नेता गाँव के विभिन्न स्थानों पर जाकर लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करने लगे। इस सम्पर्क स्थापना कार्य में किसानों एवं मजदूरों के साथ सम्पर्क स्थापित करने पर काफी महत्व दिया गया। इसका उद्देश्य साधारण लोगों को होनेवाले संघर्ष के विषय में विस्तार से जानकारी देना था।¹ इसका एक और उद्देश्य यह था कि जिला स्तर पर सभी कांग्रेस नेताओं को किस तरह से आंदोलन को संगठित करना है, इसके बारे में उचित निर्देश देना था।

बिहार में भारत छोड़ो आन्दोलन की प्रेरणा एवं निर्देशन प्रान्तीय कांग्रेस नेताओं से मिली, परन्तु प्रान्तीय कांग्रेस सदस्यों में भी इस आन्दोलन के सिद्धान्त एवं साधन को लेकर काफी मतभेद था।² राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह एवं श्रीकृष्ण सिंह गाँधीवादी मार्ग के समर्थक थे और वे लोग चाहते थे कि हर तरह से सत्याग्रह के पथ पर चलकर आन्दोलन को हिंसात्मक क्रियाकलापों से मुक्त रखा जाय। वहीं दूसरी ओर जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में प्रान्तीय कांग्रेस में एक और दल बना, जिसका उद्देश्य हिंसात्मक क्रांति के द्वारा स्वतंत्रता को प्राप्त करना था। जय प्रकाश नारायण चाहते थे कि रूढ़िवादी एवं वकीलों द्वारा निर्देशित स्वतंत्रता आन्दोलन में कुछ मार्क्सियर सक्रियता लाये जाए।³ यह दल महात्मा गांधी के बताये रास्ते पर चलने में विश्वास नहीं करता था, गुप्त रूप से तोड़-फोड़ तथा हिंसा की नीति का पक्षपाती थी।⁴

गांधी जी के इस जनसम्पर्क योजना के अन्तर्गत राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह एवं अन्य कांग्रेसी नेताओं ने अप्रैल से जून 1942 ई. तक प्रांत के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किया। इन लोगों को आने वाले संघर्ष के उद्देश्य एवं तरीकों की जानकारी दी गई और हर तरह से इनको महात्मा गांधी के निर्देशित सत्याग्रह पथ पर चलने के लिए अनुरोध किया।⁵ क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद देश वास्तव में संकटपूर्ण स्थिति से घिरा हुआ था,

• विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार) 812007

जिससे जनता धीरे-धीरे क्रांति की ओर बढ़ रही थी। महात्मा गांधी की भाषण और लेखों में कुछ काल से व्याकुलता एवं सांकेतिक प्रतिरोध के स्थान पर संघर्ष के संकेत भरे होते थे। इनका जनक्रांति के लिए मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार करने में बहुत योगदान था।⁶ इधर अनुग्रह बाबू के साथ अन्य नेताओं ने बिहार के सभी जिलों की जनता को संघर्ष के लिए तैयार करने तथा उन्हें वास्तविक परिस्थिति से अवगत कराने के लिए सम्पर्क अभियान और भी तेज कर दिया। अपने भाषणों के माध्यम से इन्होंने अहिंसात्मक संघर्ष पर ही विशेष जोर दिया। राजेन्द्र प्रसाद ने 6 मई 1942 ई. को अनुग्रह बाबू को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा कि जवाहर लाल नेहरू ने एक प्रस्ताव तैयार किया जो सर्वसम्मति से पारित हुआ लेकिन इस प्रस्ताव में बहुत से उन बिन्दुओं को शामिल नहीं किया गया जिसे महात्मा गांधी चाहते थे।⁷

इसी प्रकार मुंगेर जिला के तारापुर में 18-19 जुलाई के अनुग्रह नारायण सिंह की अध्यक्षता में एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया गया, जिसमें आचार्य कृपलानी, राजेन्द्र प्रसाद, श्री कृष्ण सिंह और कृष्ण बल्लभ बाबू जैसे महत्वपूर्ण नेता भी शामिल हुए। 14 जुलाई 1942 ई० को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक वर्धा में हुई, जिसमें एक प्रस्ताव पारित कर ब्रिटिश सरकार से यह मांग की गई कि वह भारतीयों को सत्ता सौंप कर भारत छोड़ दे।⁸ इसी प्रकार अंजुमन इस्लामिया हाल में एक सभा का आयोजन पटना के छात्रों द्वारा किया गया। इस सभा का सम्बोधित करते हुए अपने भाषण के दौरान अनुग्रह बाबू ने पटना के इन छात्रों को ब्रिटिश हुकुमत के खिलाफ “आसन्न संघर्ष” के लिए हर समय तैयार रहने का आदेश दिया।⁹

8 अगस्त 1942 ई० को बम्बई में ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी का ऐतिहासिक बैठक हुआ। यहाँ “भारत छोड़ो” प्रस्ताव को पारित किया गया, जिसके जरिये 1942 ई० की आंदोलन की चिंगारी सारे देश में फैल गयी। प्रस्ताव में अहिंसा के आधार पर सारे देश में जनता का संघर्ष शुरू करने के लिए कहा गया। महात्मा गांधी ने इस आन्दोलन को निहत्था और खुला आन्दोलन बताया।¹⁰ किन्तु इस बार गांधी जी ने “करो या मरो” का नारा दिया।

समाचार पत्रों पर कड़ा नियंत्रण लगा दिया गया। इतनी कड़ाई के साथ समाचार-पत्रों पर नियंत्रण लगा दिया गया था कि ‘इंडियन नेशन’ एवं ‘सर्च लाईट’ पटना के जो मुख्य समाचार पत्र थे, उनके जरिये भी कोई समाचार नहीं मिलता था। राजेन्द्र प्रसाद तथा अनुग्रह बाबू को जेल में नये सत्याग्रहियों के द्वारा ही बाहर की स्थिति की जानकारी मिलती थी।¹¹ 10 अगस्त से छात्रों का एक दल एवं अन्य कार्यकर्ता कुछ रेलगाड़ियों पर कब्जा करके चालकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने को बाध्य करते एवं ग्रामीण इलाकों के लोगों को क्रांति के संदेश और विभिन्न कार्यक्रमों से अवगत कराते। ऐसी गाड़ियों को स्वराजी गाड़ी कह जाता था। इसका जनता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता एवं मुफस्सिल में आन्दोलन के प्रसार में गति आती।¹²

धीरे-धीरे अहिंसात्मक आंदोलन योग्य नेताओं के अभाव में हिंसात्मक रूप अख्तियार करता जा रहा था, क्योंकि 8 अगस्त की रात ही गाँधी जी सहित सारे महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर नजरबन्द कर दिया गया, जिसमें यह आन्दोलन नेतृत्व विहीन हो गया। इसी बीच 10 अगस्त 1942 को पटना में सचिवालय गोलीकांड हुआ, जिसमें सात छात्रों की मृत्यु हो गई तथा 30 व्यक्ति बुरी तरह से घायल हो गये। इस घटना ने एक चिंगारी का काम किया और विद्रोह की आग धीरे-धीरे सारे प्रान्त में फैल गयी। सारा शहर उस

रात जगा हुआ था। कई इन्कलाबी जुलूस आजादी के नारे लगाते हुए सारी रात शहर के विभिन्न सड़कों पर घूमते रहे। “इन्कलाब जिन्दाबाद” के नारे जेल की ऊँची दीवारों को पार कर जेल में बन्दी अनुग्रह नारायण सिंह एवं अन्य नेताओं के पास पहुँची परन्तु अदम्य उत्सुकता रहते हुए भी ये लोग जुलूस को नहीं देख पाये। वास्तव में जेल के बाहर की दुनिया इनके नजर के बाहर थी। ये केवल सितारों से भरे आकाश को देख रहे थे, जो उस दिन अत्यधिक मौन था।¹³

पटना के जिलाधीश जनता के इस उग्र रूप को देख कर जबरदस्ती अनुग्रह नारायण सिंह को तथा इनके अन्य साथी को भारतीय पुलिस के अधीन अमेरिकी सिपाहियों के पहरे में हजारीबाग जेल भेज दिया गया। डी. एल. नन्द केयोलियार ने पटना जिला युद्ध समिति के सचिव पद से इस्तीफा दे दिया। सरकारी नीति के विरोध में कई अन्य लोगों ने भी अपना पद त्याग दिया।¹⁴ बिहार सरकार आम जनता में हत्याकांड की प्रतिक्रिया एवं हिंसात्मक क्रियाकलापों में लिप्त होने के लिए कांग्रेसी नेताओं के प्रोत्साहन से काफी चिन्तित थी एवं घबड़ा उठी। जिस तरह से बिहार में आन्दोलन फैलने लगा वह अनुग्रह नारायण सिंह के सिद्धान्त एवं आदर्श के विपरीत था। अनुग्रह बाबू जेल में इन हिंसात्मक गतिविधियों को जानकर काफी हताश हो गये। जिलाधिकारी आर्थर सरकार की ओर से जेल में राजेन्द्र प्रसाद एवं अनुग्रह बाबू से मिलने गये और उन्हें एक “शांति की अपील” करने के लिए कहा, जिसके माध्यम से लोगों को हिंसा से दूर रखा जा सकता है। लेकिन हिंसा के प्रति कड़ा विरोध दर्शाते हुए इन लोगों ने भी अपील जारी करने से इंकार कर दिया क्योंकि इस अपील से आम जनता में ऐसी धारणा बन सकती थी कि इन नेताओं ने ब्रिटिश शासन का पक्ष ले लिया है और अब इनकी वकालत कर रहे हैं।¹⁵

इन बातों को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि यह आन्दोलन अत्यंत महत्वपूर्ण एवं बिहार में इसकी जमीन तैयार करने में अनुग्रह बाबू की असामान्य भूमिका रही। जेल के अंदर भी इन्होंने धैर्य एवं मानसिक संतुलन बनाये रखा तथा जिलाधिकारी आर्थर के अनुरोध को भी ठुकरा दिया। इतनी बड़ी संख्या में जन सहयोग प्राप्त करने का श्रेय कई प्रान्तीय कांग्रेस नेताओं को जाता है, जिसमें विशेष रूप से अनुग्रह नारायण सिंह का नाम उल्लेखनीय है। इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें सभी वर्ग के लोग शामिल हुए। यह इनकी लोकप्रियता का परिचायक थी। राजेन्द्र प्रसाद का स्नेह एवं विश्वास अनुग्रह बाबू को पूर्ण रूप से प्राप्त था, इसलिए राजेन्द्र प्रसाद अधिकांश दायित्व अनुग्रह बाबू पर ही सौंपते थे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, साहित्य-संसार, पटना, 1947, पृ.सं.-513
2. दिलीप कुमार सिंह, 1942 मुवमेंट इन बिहार, पटना विश्वविद्यालय, पीएच. डी. थीसिस, 1987, पृ.सं.-50-51 (अप्रकाशित)
3. सुमन्त नियोगी, 1942 मुवमेंट इन बिहार, पटना, 1963 पृ.सं.-423
4. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्मरण, पटना, 1950, पृ.सं.-392
5. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, साहित्य-संसार, पटना, 1947, पृ.सं.-530-33.
6. जवाहर लाल नेहरू, द डिस्कवरी ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1961, पृ.सं.-396-99
7. राजेन्द्र प्रसाद का पत्र अनुग्रह नारायण सिंह के नाम, साहित्य-संसार, पटना, 1947, पृ.सं.-520.
8. शंकर दयाल सिंह, भारत छोड़ो आंदोलन, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1985, पृ.सं.-43.

9. पूर्वोक्त, पृ.सं.-424.
10. दिलीप कुमार सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.-44.
11. अनुग्रह नारायण सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.-389.
12. बलदेव नारायण, अगस्त क्रांति, पटना, 1947, पृ.सं.-42-47.
13. कामेश्वर शर्मा, कमल, श्री बाबू का जेल जीवन, पटना, 1970, पृ.सं.-377.
14. के.के. दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, पटना 1959, पृ.सं.-53.
15. अनुग्रह नारायण सिंह, पुर्वोद्धृत, पृ.सं.-389.

बंगाल में राष्ट्रीय जागरण की विभिन्न प्रवृत्तियाँ : एक शोधपूर्ण अध्ययन

• विश्वनाथ

सारांश- प्रस्तुत शोधपत्र में 1905 से 1908 ई० के मध्य बंगाल में किस प्रकार बंगाली बुद्धिजीवियों ने 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब भारतीय क्षितिज पर आधुनिकता की किरण फूट रही थी, तब बंगाल विभाजन के बाद उन्होंने रचनात्मक स्वदेशी प्रवृत्तियों के द्वारा स्वावलंबन का मार्ग प्रशस्त किया। बंगाल के राजनीतिक जीवन में तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं।

मुख्य शब्द- प्रवृत्ति, बंगाली, राष्ट्रीय, बुद्धिजीवी, संगठन, स्वदेशी

प्रथम विश्वयुद्ध भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक युग विभाजक था। मित्र शक्तियों ने यह घोषणा की थी कि वे संसार में लोकतंत्र के संरक्षण के लिए तथा आत्म-निर्धारण के लिए युद्ध लड़ रहे हैं और इससे भारतीय राष्ट्रवादियों की आशाएँ बंधी थीं। दूसरी ओर सरकार ने युद्ध के लिए भर्ती और जबरी चंदे लेने में बल का प्रयोग किया था, जिससे लोग अप्रसन्न थे। इस क्रिया और प्रतिक्रिया से एक ऐसा घटना-क्रम चला जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को एक नई दिशा मिली।¹

19वीं शताब्दी में बंगाली प्रज्ञा का पुनर्जन्म हुआ। बंगाली बुद्धिजीवियों ने देश के भूतकाल का ध्यान से अध्ययन किया और देखा कि बहुत सी समकालीन प्रथाएँ तर्कसंगत नहीं थीं, अतएव वे त्याज्य थीं, परंतु कुछ प्रथाएँ न केवल आवश्यक थीं अपितु उनका अन्तरभूत महत्व भी था और उनका समस्त मानव जाति के लिए उपयोग था। इस प्रकार बंगाली बुद्धिजीवियों के लिए पाश्चात्य तथा पूर्वी मिश्रित मार्ग प्रशस्त हुआ। इस प्रवृत्ति में राजा राम मोहन राय जो एक महान तथा नवीन धाराओं के चलाने वाले थे-मधुसूदन दत्त, बंकिम चन्द्र चटर्जी, शरत चन्द्र चटर्जी तथा सबसे महत्वपूर्ण कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा अरविंद घोष में भी मिलती है। परंतु बहुत से विदेशी भी भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं से प्रभावित हुए और उन्होंने अंग्रेजी में पुस्तकें लिखीं जिनसे उनकी लेखन प्रतिभा का परिचय मिलता है। इसमें सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर, एडविन आर्नाल्ड तथा एन्थनी होप के नाम प्रमुख हैं।²

जुलाई 1905 तक विभाजन की योजना का विरोध मुख्य रूप से पारंपरिक नरमदलीय उपायों का गहन प्रयोग करके ही किया जाता रहा- अखबारों में लिखकर, सभाएं करके और प्रार्थनापत्र देकर और मार्च 1904 एवं जनवरी 1905 में कलकत्ता के टाउनहाल में बड़ी सभाएं करके, जिनमें जिला स्तर के अनेक प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था। इन उपायों के स्पष्ट रूप से और पूर्णतः असफल हो जाने पर नए उपायों की खोज की गई- अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार और रवीन्द्रनाथ एवं रमेंद्रसुंदर त्रिवेदी की राखीबंधन और आराधना की कल्पनाशील अभ्यर्थनाएं। विभाजन के दिन भाईचारे के प्रतीक के रूप में

• विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

रंग-बिरंगे राखियों का आदान-प्रदान हुआ और शोक के प्रतीक के रूप में चूल्हा नहीं जलाया गया। धरना देने वाले विद्यार्थियों को डराने के लिए अंग्रेजी सरकार ने कार्लाइल सर्कुलर जैसे कदम उठाए। इसमें धमकी दी गई थी कि राष्ट्रवादी शिक्षा संस्थाओं को अनुदानों, छात्रवृत्तियों एवं विश्वविद्यालय की संबद्धता से वंचित कर दिया जायेगा। इसके परिणामस्वरूप सरकारी शिक्षा संस्थाओं के बहिष्कार एवं राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना का आंदोलन उठ खड़ा हुआ। 9 नवंबर को सुबोध मालिक ने एक लाख रुपए की बड़ी राशि का दान देकर इस आंदोलन को बड़ा प्रोत्साहन दिया। जब सरकार द्वारा दमन के और कदम उठाए गए तो तनाव बढ़ गया और शीघ्र ही बंगाल में आंदोलन के भीतर आंतरिक मतभेद उत्पन्न होने लगे। कुछ लोग बहिष्कार को नए उपायों की पूरी श्रृंखला का आरंभिक बिंदु मानने लगे और विभाजन के निराकरण को एक अत्यंत तुच्छ और संकीर्ण राजनीतिक लक्ष्य माना जाने लगा जो स्वराज अथवा पूर्ण स्वाधीनता के संघर्ष की दिशा में जाने का साधन मात्र था। सुरेंद्रनाथ जैसे लोगों के लिए बहिष्कार मैनचेस्टर के कोष को प्रभावित करके विभाजन को रद्द कराने का अंतिम और हताशपूर्ण प्रयास था। सुस्थापित नरमदलीय नेता 16 नवंबर 1905 को शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार समाप्त करवाने में सफल हुए। इस बीच माले वायसराय के पद पर नियुक्त हुए और भारत-सचिव के रूप में उनकी उदारता की जो ख्याति मिली थी, उसका लाभ उठाकर ये नेता पुनः एक बार भिखमंगी नीति के सुरक्षित किनारे खोजने लगे।

प्रवृत्तियाँ- सिद्धांत के स्तर पर सुस्थापित नरमदलीय परंपरा के अतिरिक्त 1905 और 1908 के बीच बंगाल के राजनीतिक जीवन में तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। इनमें से पहली को रचनात्मक स्वदेशी प्रवृत्ति कहा जा सकता है, जिसके अन्तर्गत निरर्थक और अपमानजनक भिखमंगी नीतियों को त्यागकर स्वदेशी उद्योगों, राष्ट्रीय विद्यालयों और ग्राम-सुधार एवं संगठन के माध्यम से स्वावलंबन की बात कही जाती थी। इसकी अभिव्यक्ति हुई प्रफुल्लखंड राय अथवा नीलरतन सरकार के व्यापारिक उद्यमों में, सतीशचंद्र मुखर्जी की ज्ञान पत्रिका एवं उनकी डॉन सोसाइटी में जिसने राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और सर्वोपरि रवींद्रनाथ जिन्होंने अपने स्वदेशी समाज वाले भाषण में पारंपरिक हिन्दू समाज अथवा समुदाय के पुनरुत्थान के माध्यम से ग्रामों में रचनात्मक कार्य की रूपरेखा दी थी। बारीसाल में स्थित अश्विनी कुमार दत्त की बांधव समिति ने अपनी प्रथम वार्षिक रिपोर्ट में 89 न्यायिक समितियों के माध्यम से 523 ग्रामीण विवादों का निपटारा करने का दावा किया था। इस सबसे बाद के गांधीवादी स्वदेशी कार्यक्रम, राष्ट्रीय विद्यालयों एवं रचनात्मक ग्रामीण कार्य का स्पष्ट पूर्वाभास मिलता है। जिसे रवींद्रनाथ आत्मशक्ति कहते थे, उसके ऐसे धीमे एवं प्रदर्शनरहित विकास की योजना बंगाल के उत्साही शिक्षित युवजन को अधिक आकर्षित नहीं कर सकी। राजनीतिक उग्रवाद ने इन्हें अधिक आकर्षित किया।³ 1900 के पश्चात् बिपिन पाल की न्यू इंडिया, अरविंद घोष की वंदेमातरम, ब्रह्मबांधव उपाध्याय की संध्या और युगांतर जैसी पत्रिकाएं स्वराज के लिए संघर्ष करने का आह्वान करने लगी थीं। व्यवहार में जैसा कि बाद की घटनाओं ने दर्शाया, अनेक उग्रवादी नेता काफी कुछ कम लेने पर ही सहमत हो गए थे – उदाहरण के लिए, जनवरी 1907 में तिलक सारी न मिलने पर आधी रोटी लेने पर राजी हो गए थे, यद्यपि इनका इरादा समय आने पर सारी पा लेने का ही था। अंतः मूलभूत मतभेद पद्धतियों को लेकर ही था और इस संबंध में प्रामाणिक वक्तव्य दिया अरविंद घोष ने अप्रैल 1907 में वंदेमातरम में छपने वाले लेखों की एक श्रृंखला में, जो बाद में डॉक्ट्रिन ऑफ पैसिव

रेसिस्टेंस शीर्षक से पुनर्मुद्रित हुई। इसमें शांतिपूर्ण आश्रमों और स्वदेशीवाद एवं स्वावलंबन के आदर्श को अपर्याप्त बताकर उसकी खिल्ली उड़ाई गई थी। उन्होंने एक ऐसे कार्यक्रम की परिकल्पना की जिसमें अंग्रेजी वस्तुओं, सरकारी शिक्षा, न्याय एवं कार्यकारी प्रशासन के संगठित एवं निमर्म बहिष्कार की बात कही गई थी। साथ ही, इसमें अन्यायपूर्ण कानूनों की सविनय अवज्ञा करने, राजभक्तों का सामाजिक बहिष्कार करने और अंग्रेजी दमन के सहन-सीमा से आगे बढ़ जाने पर सशस्त्र संघर्ष करने की योजना भी थी। 21 नवंबर 1906 की संध्या में भी ऐसी ही योजना की रूपरेखा दी गई थी, "यदि चौकीदार, सिपाही, डिप्टी, मुंसिफ और बाबू, सैनिक की तो बात ही क्या, सब अपनी-अपनी नौकरिया से इस्तिफा दे दें, तो देश में फिरंगियों का राज क्षण भर में समाप्त हो जाए। यहां भी हमें लगभग संपूर्ण गांधीवादी कार्यक्रम के दर्शन होते हैं, बस इसमें गांधीवाद की अहिंसा संबंधी हठधर्मिता का और महत्वपूर्ण बात यह है कि करें एवं लगानों की नाअदायगी के आह्वान का अभाव था। करें एवं लगान की अदायगी की बात को 1907 के लेखों में अरविंद ने स्पष्ट रूप से अस्वीकार किया था क्योंकि यह बात बंगाल के जमींदार समुदाय के विरुद्ध जाती जो उनकी दृष्टि में मूलतः देशभक्त था।⁴

व्यवहार में, बंगाल के उग्रवादियों ने शुद्ध शाब्दिक अथवा साहित्यिक हिंसा एवं कांग्रेस संगठन को कर आतंरिक झगड़ों में व्यर्थ ही काफी शक्ति गंवाई। हां, इतना अवश्य हुआ कि इन्होंने जिला स्तर पर संगठनों अथवा समितियों की प्रभावपूर्ण शृंखला बनाने और श्रमिक असंतोष को कुछ नया राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करने में योगदान किया। फिर भी, 1907 में ही जन-आंदोलन की योजना को इसके अपने भीतर से चुनौतियां मिलने लगी थीं और विशिष्ट जन की आतंकवादी कार्यवाही करने की मांग की जाने लगी थी और हरेक जिले में अंग्रेज अधिकारियों की संख्या ही कितनी है? दृढ़ निश्चय कर लो तो अंग्रेजी राज को एक दिन में ही समाप्त किया जा सकता है। यदि हम अकर्मण्य होकर बैठे रहे और उठ खड़े होने में तब तक झिझकते रहे, जब तक कि लोग हताश न हो जाएं, तो हम सदा यू ही बैठे रहेंगे और देशभक्तों, क्या बिना रक्तपात के देश आजाद हो जायेगा?

राजनीतिक पद्धतियों एवं लक्ष्यों पर होने वाली बहस की सीमाओं को भेदते हुए, सांस्कृतिक आदर्शों को लेकर आधुनिकतावादी एवं हिन्दू पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों के बीच भी एक विवाद चल रहा था। स्वदेशी का रुझान सामान्यतः राजनीति को धार्मिक पुनरुत्थानवाद से जोड़ने का रहा था। धार्मिक पुनरुत्थानवाद को बारंबार आंदोलनकारियों का हौसला बढ़ाने के लिए एवं जन-संपर्क के साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा। सुरेंद्रनाथ स्वदेशी प्रतिज्ञाओं की पद्धति को मंदिरों में प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे, राष्ट्रीय शिक्षा की योजनाओं में प्रायः प्रबल पुनरुत्थानवादी तत्व होता था और बहिष्कार को पारंपरिक जातिगत आज्ञाओं के द्वारा लागू करने का प्रयास किया जाता था। मई 1906 में उग्रवादी नेताओं ने प्रतिमा-पूजा के साथ शिवाजी उत्सव मानने पर बल दिया था, वंदेमातरम, संध्या और युगांतर जैसी पत्रिकाओं में आमूल परिवर्तनवादी राजनीति और आक्रामक हिंदुत्व अभिन्न रूप से गुंथे होते थे। तथापि प्रत्येक समूह में बहुमत-विरोधी सदस्य भी होते थे। संजीवनी और प्रवासी जैसी ब्रह्मसमाजी, पत्रिकाएं पोंगापंथ की आलोचना करती थी और उनकी स्पष्ट घोषणा थी कि जो देशभक्ति हमारे अतीत हो गौरवमंडित करती हो और उसे सुधार की आवश्यकता से परे समझती हो और जो आगे प्रगति करने की आवश्यकता को अस्वीकार करती हो, वह एक व्याधि है प्रवासी ज्येष्ठ।⁵ कृष्णकुमार मित्र की ऐंटी-सर्कुलर

सोसायटी ने अपने मुसलमान कार्यकर्ताओं और शुभचिंतकों की भावनाओं का आदर करते हुए शिवाजी उत्सव का बहिष्कार किया, और हेमचंद्र कानूनगो जैसे क्रांतिकारी आंतकवादियों ने भी बाद में तत्कालीन प्रचलित धार्मिकता की कड़ी आलोचना की। संभवतः सबसे रोचक था, रवींद्रनाथ का विकास जो कुछ वर्षों तक पर्याप्त पुनरुत्थानवादी प्रभाव में रहे, किन्तु 1907 के मध्य में सांप्रदायिक दंगों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने पुनरुत्थानवाद से अपना नाता ही तोड़ लिया। अपने गुरु के तनावों एवं अस्पष्टताओं को बड़े सजीव ढंग से उन्होंने अपने दो उपन्यासों गोरा और घरे बाइरे में चित्रित किया है।

गांधीवादी रचनात्मक कार्य एवं जन-सत्याग्रह के ये पूर्वाभास क्षणिक सिद्ध हुए और 1908 के अंत तक बंगाल की राजनिति पुनः नरमदलीय भिखमंगेपन एवं व्यक्तिक आतंकवाद के दो विरोधी ध्रुवों में सिमट गई, जो परस्पर-असंबद्ध न थे। उस काल से संबद्ध मुख्य ऐतिहासिक समस्या है-ऐसा क्यों हुआ, क्योंकि केवल ब्रिटिश दमन के बाह्य कारक के संदर्भ में ही इसका स्पष्टीकरण पर्याप्त नहीं है। राष्ट्रवादियों ने पुलिस की ज्यादतियों एवं स्वदेशी आंदोलन के शहीदों का बड़ा शोर मचाया, किन्तु 1909 तक सार्वजनिक आंदोलन के विरुद्ध चले मुकदमों की संख्या बंगाल में केवल 10 और नए प्रांत में 105 थी, और अभियुक्तों को दो सप्ताह से लेकर एक वर्ष तक की ही सजाएं दी गई थीं। इस काल में गोली चलाए जाने की केवल दो घटनाएं हुई थी लेकिन स्वदेशी आंदोलनकारियों पर नहीं- एक में जमालपुर के हड़ताली मजदूरों पर गोलियां चलाई गई थी और दूसरी में शेरपुर के मुसलमान दंगाइयों पर। अतः आवश्यकता इस बात की है कि 1905-06 के आंदोलन के मुख्य घटकों की शक्तियां एवं आंतरिक सीमाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए। ये घटक हैं, बहिष्कार और स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा, श्रमिक यूनियनें, समितियां और जन-संपर्क के तरीके।⁶

बहिष्कार एवं स्वदेशी- बंगाल में बहिष्कार और स्वदेशी का इतिहास एक ऐसे बुद्धिजीवी वर्ग के आंदोलन की सीमाओं को स्पष्ट रूप से दर्शाता है जिसकी आकांक्षाएं मोटे तौर पर बुर्जुआ थीं, किन्तु जिसे तब तक वास्तविक बुर्जुआ समर्थन प्राप्त नहीं था। बहिष्कार को आरंभ में अवश्य थोड़ी सफलता मिली-अगस्त 1905 की तुलना में सितंबर 1906 में कलकत्ता कस्टम कलक्टर के अनुसार सूती थानों के आयात में 22 प्रतिशत, सूत की लच्छी और सूत में 44 प्रतिशत, नमक में 11 प्रतिशत, सिगरेटों में 55 प्रतिशत और जूतों एवं बूटों में 48 प्रतिशत को कमी हुई थी। मैनचेस्टर के कपड़े की बिक्री में गिरावट आने का बहुत कुछ संबंध कलकत्ता के मारवाड़ी व्यापारियों और अंग्रेज उत्पादकों के बीच व्यापार की शर्तों को लेकर हुए विवाद से था। इसके परिणामस्वरूप अगले वर्ष अक्टूबर 1905 के लकी डे ठेकों में अप्रत्याशित गिरावट आई - 32,000 गांठों के स्थान पर केवल 2500 गांठें ही उठीं। लेकिन विवाद के निपट जाने पर मारवाड़ी पुनः विक्रय-अधिकर्ताओं का धंधा करने लगे, जबकि अन्य जिलों में साहा समुदाय के व्यापारी बहिष्कार का मुख्य शिकार बने क्योंकि देशभक्ति के पीछे वे अपना नफा छोड़ने को तैयार नहीं थे। बम्बई के मिल मालिकों ने अवसर का लाभ उठाकर कीमतें बढ़ा दीं, हालांकि बंगाल से ऐसा न करने की अनेक बार अपीलें की गईं। बंबई में तब तक मैनचेस्टर से आयात होने वाला महीन सूत और कपड़ा नहीं बनता था और इसी कारण बंबई वालों में बहिष्कार के प्रति अधिक उत्साह न था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिक गिरावट सिगरेट, जूते, इत्यादि वस्तुओं के आयात में ही आई थी जिनकी मांग, कस्टम कलक्टर के अनुसार, अधिकांशतः मध्यवर्गीय सज्जों, जैसे बाबुओं, वकीलों इत्यादि के बीच ही थी।⁷

स्वदेशी के रुझान ने निश्चय ही हथकरघा, रेशम की बुनाई और कुछ अन्य पारस्परिक दस्तकारियों में नवजीवन का संचार किया। इस बात पर 1908 में किए जाने वाले दो सरकारी सर्वेक्षणों में भी बल दिया गया है। इसी से संबद्ध एक लगभग गांधीवादी, बौद्धिक, प्रवृत्ति भी थी जो दस्तकारियों को बड़े उद्योगों से उत्पन्न बुराइयों से बचने के भारतीय या प्राच्य साधन के रूप में गौरवान्वित करती थी। उदाहरण के लिए 1900 में सतीशचन्द्र मुखर्जी ने एंगेल्स के हवाले से सिद्ध करना चाहा कि औद्योगिक क्रांति के परिणाम कितने भयंकर हो सकते हैं। वे चाहते थे कि बड़े उद्योग वहीं लगाए जाएं, जहां उनका लगाया जाना अपरिहार्य हो और जहां भी संभव हो लघु स्तर पर व्यक्तिगत परिवार-संगठन हों जो स्पष्ट रूप से जाति के आधार पर चलाएं। फिर भी, नरमदलीय अर्थशास्त्र से ऐसे सैद्धांतिक भेद आधुनिक उद्योगों को बढ़ावा देने के अनेक प्रयासों को रोक नहीं सके। मार्च 1904 में जोगेंद्रचंद्र घोष ने एक समिति की स्थापना की जिसका लक्ष्य था, विद्यार्थियों को तकनीकी प्रशिक्षण हेतु बाहर भेजने के लिए धनराशि जुटाना।⁸ अगस्त 1906 में दि बंगालक्ष्मी कॉटन मिल्स की स्थापना बड़ी धूमधाम से हुई। इसके लिए पहले से वर्तमान श्रीरामपुर संयंत्र से साज-सामान लाया गया था। चीनी मिट्टी के कारखाने, क्रोम टैनिंग, दिया सलाई उद्योग एवं सिगरेट बनाने के पर्याप्त सफल उद्यम भी आरंभ हुए। इन उद्योगों के संरक्षक एवं इनमें लगे हुए उद्यमियों में कुछ बड़े जमींदार भी थे, किंतु मुख्यतः ये व्यवसायी बुद्धिजीवी वर्ग से ही संबद्ध थे। अतः पूंजी की कमी एक बहुत बड़ी सीमा थी। जैसा कि कलकत्ता के एक अग्रणी व्यापारी ने कहा था और उसकी बात एक सरकारी रिपोर्ट में उद्धृत है, भारत के स्थापित व्यापारी समुदाय को लगता है कि औद्योगिक उद्यमों में पूंजी लगाकर धन कमाने की अपेक्षा आयातित वस्तुओं की एजेंसी चलाकर धन कमाना कहीं आसान है। कालीशंकर सुकुल ने, जो स्वदेशी परचे निकालते थे, 1906 में कहा था कि एक-दो मिलें खोलने से अच्छा है कि पहले एक सुदृढ़ वितरण प्रणाली की स्थापना पर ध्यान दिया जाए और धीरे-धीरे व्यापार के माध्यम से एक नए प्रकार के व्यापारी वर्ग का सृजन किया जाए क्योंकि पुराने व्यापारी वर्ग में तो देशभक्ति की भावना है ही नहीं। किंतु उनके विचारों का कोई कद्रदान नहीं मिला। इस प्रकार स्वदेशी आंदोलन बंगाल की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में कभी अंग्रेजों के शिकंजे के लिए गंभीर चुनौती नहीं बन सका।⁹

राष्ट्रीय शिक्षा- अन्य क्षेत्रों की भांति शिक्षा के क्षेत्र में भी बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के विभिन्न प्रकार के प्रयास लक्षित होते हैं, जिनमें तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल देने और देशी भाषा में शिक्षा देने की योजनाओं से लेकर टैगोर के शांति निकेतन एवं सतीश मुखर्जी की कुछ सीमा तक सर्वसंग्रहवादी डान सोसाइटी की योजनाएं सम्मिलित हैं, जो पारंपरिक एवं आधुनिक की सम्मिलित योजना द्वारा कुछेक चुने हुए युवकों को श्रेष्ठतर संस्कृति की शिक्षा देने की थी। किंतु राष्ट्रीय शिक्षा में नौकरियों के अवसर नगण्य थे, अतः यह विद्यार्थी समुदाय को आकर्षित करने में असफल रही। कुछ वर्षों पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा के नाम पर जो बचा वह था बंगाल नेशनल कॉलेज, एक बंगाल तकनीकी संस्थान, जिसे नरमपंथियों के साथ घनिष्ठ संबंधों वाले एक विद्रोही गुट ने स्थापित किया था और सबसे महत्वपूर्ण थे-पश्चिमी बंगाल एवं बिहार में एक दर्जन के लगभग और इससे कहीं अधिक संख्या में पूर्वी बंगाल के जिलों के राष्ट्रीय विद्यालय। बाद के घटनाक्रम ने, अर्थात् इन विद्यालयों का विस्तार गांवों तक करने एवं प्राथमिक शिक्षा पर अधिकार करने प्रत्यन ने थोड़े समय के लिए सरकार के कान खड़े कर दिए। इसमें मैमनसिंह, फरीदपुर और

बाकरगंज के विद्यालयों को भी सम्मिलित किया जाना था, जिनमें बड़ी संख्या में मुसलमान और निम्न जाति के नामशूद्र विद्यार्थी पढ़ते थे। फिर भी कलकत्ता स्थित राष्ट्रीय परिषद ने और जिला परिषद ने ग्राम विद्यालयों की अधिकांशतः अवहेलना ही की और जन-आधारित आंदोलनों की ही भांति इनका भी पतन हो गया। अंत में, पूर्वी बंगाल में गिने-चुने विद्यालय ही बच रहे, जो वस्तुतः क्रांतिकारियों के भर्ती-केंद्र थे, जिनमें सबसे विख्यात था ढाका के निकट सोनारंग राष्ट्रीय विद्यालय।¹⁰

श्रमिक असंतोष- 1903-08 में एक सरकारी सर्वेक्षण हुआ था, जिसका शीर्षक था एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बंगाल अंडर एंड्रयू फ्रेजर, इसमें औद्योगिक असंतोष के उन पांच वर्षों की अवधि को महत्वपूर्ण लक्षण बताया गया था और पेशेवर आंदोलनकारियों की भूमिका को एक नितान्त नवीन संवृत्ति कहा गया था। श्रवणों के नियंत्रण वाले उद्यमों में कीमतों में वृद्धि के साथ ही प्रायः नस्ली अपमानों के कारण होने वाली हड़तालों को राष्ट्रवादियों की ओर से समाचारपत्रों में पर्याप्त सहानुभूति मिलने लगी थी। राष्ट्रवादी कभी-कभी इन्हें वित्तीय सहायता, यहां तक ट्रेड यूनियन स्थापित करने में भी सहायता देते थे। अग्रणी श्रमिक नेताओं के रूप में चार व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से तीन तौ बैरिस्टर थे-अश्विनीकुमार बनर्जी, प्रभातकुसुम राय चौधरी, ऐथेनेसियस अपूर्वकार घोष और चौथे थे, प्रेमतोष बीस जो उत्तरी कलकत्ता में एक छोटे से छापाखाने के मालिक थे। सितंबर 1905 में हावड़ा में, जिसे वे अपमानजनक समझते थे, बहिर्गमन किया तो समस्त स्वदेशी-समर्थक जनता ने उनका स्वागत किया। अगले ही महीने कलकत्ता में ट्रामों की हड़ताल हुई जिसका समाधान घोष और बनर्जी के प्रयासों से हुआ।¹¹ 16 अक्टूबर की रिपोर्टों में बंद जैसी बात दिखाई पड़ती है - अधिकांश दफ्तर बंद थे, सड़कों पर गाड़ियां नहीं थी और कुछ पटसन कारखानों एवं रेलवे कार्यशालाओं में हड़ताल थी। शीघ्र ही पहला वास्तविक श्रमिक संघ बना। सरकारी छापाखानों में एक उग्र हड़ताल के बीच 21 अक्टूबर को प्रिंटर्स यूनियन की स्थापना हुई। जुलाई 1906 में ईस्ट इंडिया रेलवे के बाबूओं की हड़ताल के फलस्वरूप रेलवे में यूनियन की स्थापना हुई। आसनसोल, रानीगंज और जमालपुर में सभाओं के माध्यम से कुलियों को भी इसमें सम्मिलित करने के प्रयास किए गए। इन सभाओं को ए.सी. बनर्जी, ए.के. घोष और प्रेमतोष बोस के अतिरिक्त बिपिन पाल, श्यामसुंदर चक्रवर्ती और लियाकत हुसैन जैसे स्वदेशी नेताओं ने भी संबोधित किया। 27 अगस्त को जमालपुर कार्यशाला में मजदूरों ने एक भारी बखेड़ा खड़ा कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप गोलियां चलीं। किंतु यह हड़ताल विफल रही और इसके साथ ही यूनियन भी समाप्त हो गई। 1905 और 1908 के बीच पटसन कारखानों में प्रायः हड़तालें होती रहीं जिनसे विभिन्न समयों में 37 में से 18 कारखाने प्रभावित हुए। ए.सी. बनर्जी के निजी कागजात से ज्ञात होता है कि वे अगस्त 1906 में बजबज में इंडियन मिलैड्स यूनियन की स्थापना करने का प्रयास कर रहे थे। इन कागजात से वह बात भी प्रकट होती है जो आगे चलकर भारतीय श्रमिक आंदोलन में बारंबार आनेवाली समस्या बनने वाली थी - श्रमिकों के साथ संपर्क अहरिहार्य रूप से बाबूओं और सरदारों के माध्यम से ही होता था, हालांकि बजबज जूट मिल्स के 28 श्रमिकों द्वारा हस्ताक्षरित एक ज्ञापन दर्शाता है कि ऐसे लोग टुच्चे शोषक होते थे जो रिश्वत और पूजा-शुल्क वसूल किया करते थे।¹²

अपनी चरम सीमा के दिनों में श्रमिक आंदोलन इतना प्रबल हो गया था कि 27 अगस्त 1906 को एंग्लो-इंडियन समाचार पत्र पायनियर ने गर्जना की कि राजनीतिक

विभाजन के संबंध और इसके विरोध में जी भरकर आंदोलन करें, किंतु अब जबकि वे अज्ञानी श्रमिकों के मन में असंतोष का बीज बोकर पूरे प्रांत के कल्याण के लिए खतरा उत्पन्न करना चाहते हैं, समय आ गया है कि कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाली सरकार अपनी ताकत दिखाए। कुछेक उग्रवादी अखबारों में आम राजनीतिक हड़ताल की रूसी पद्धति की महान संभावनाओं पर भी विचार किया गया, आज रूस के मजदूर संसार को सिखा रहे हैं कि दमन के समय प्रभावशाली विरोध करने के तरीके क्या हैं- क्या भारतीय मजदूर उनसे शिक्षा नहीं लेगा? फिर भी कई अन्य बातों की भांति यह सब भी एक रोचक पूर्वाभास से अधिक सिद्ध नहीं हुआ। कोई वस्तुतः राजनीतिक हड़ताल नहीं हुई।¹³ बागानों और खदानों के मजदूरों पर कोई असर नहीं हुआ। स्वदेशी आंदोलन का संपर्क मुख्य रूप से बाबूओं और बहुत हुआ बंगाली जूट मिलों के मजदूरों तक ही था। 1908 की गर्मियों के बाद श्रमिक आंदोलन में राष्ट्रवादियों की रुचि अचानक कम हुई और फिर पूर्णतः समाप्त हो गई, और यह रुचि 1919-22 के पहले फिर से उत्पन्न नहीं हुई।

समितियाँ- समितियों अथवा राष्ट्रीय स्वयंसेवक आंदोलन का अचानक उदय स्वदेशी युग की बड़ी उपलब्धियों में एक है। पश्चदृष्टि के आधार पर इन संगठनों की तुलना प्रायः आरंभिक आतंकवादी सोसायटियों से की जाती है। वस्तुतः 1908 की ग्रीष्म ऋतु तक अधिकांश समितियाँ खुले संगठन हुआ करती थीं, जो विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में लगी रहती थीं, जैसे सदस्यों के शारीरिक एवं नैतिक प्रशिक्षण, अकाल, महामारी या धार्मिक उत्सवों के समय समाज-कार्य करने में, विभिन्न रूपों में स्वदेशी का संदेश फैलाने में, हस्तकलाओं, विद्यालयों, मध्यस्थ कचहरियों एवं ग्राम सभाओं का संगठन करने में अहिंसक आंदोलन की तकनीकों को प्रयुक्त करने जैसी गतिविधियों में। 1907 में पुलिस ने कलकत्ता में 19 समितियों के होने की रिपोर्ट दी थी। इनके अतिरिक्त इस आंदोलन की मुख्य शान्ति पूर्वी बंगाल में स्थित थी, इसके अन्तर्गत एक केन्द्रीय भूभाग था, जिसमें बाकारगंज, फरीदपुर, ढाका और मैमनसिंह के जिले आते थे। रंगपुर, टिपरा, सलिहट और हुगली नदी के पूर्व में स्थित पुराने प्रांत के कुछ हिस्सों में सशक्त संगठन बने थे और शिवसागर, गोपालपाड़ा एवं गारो पहाड़ियों को छोड़कर सभी जिलों में समितियाँ बनी थीं। 1907 की एक पुलिस रिपोर्ट में पूर्वी बंगाल में स्वयंसेवकों की अनुमानित संख्या 8,485 बताई गई थी।¹⁴ इस सूची में सर्वोपरि थे बाकारगंज और ढाका, जिनमें से प्रत्येक में 2600 से अधिक स्वयंसेवक थे। अन्यत्र की भांति, समिति आंदोलन में भी पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। कलकत्ता की ऐंटी-सर्कुलर सोसायटी अपनी धर्मनिरपेक्षता के लिए प्रख्यात थी। बारीसाल की स्वदेश बांधव समिति ने सचमुच जनाधार जैसी बात पा ली थी- 1909 में इसके 175 ग्राम-शाखाओं के होने की रिपोर्ट मिलती है और निरंतर मानव-सेवा के कार्य करके इसके नेता अश्वनीकुमार दत्त ने अपने जिले के हिन्दू और मुसलमान किसानों के दिल में सामान्य रूप से स्थान बना लिया था। इसके ठीक विपरीत ढाका अनुशीलन समिति जिसकी स्थापना पुलिस दास ने की थी। आरंभ से इसका बल स्वयंसेवकों को शारीरिक रूप से दृढ़ करके गुप्त प्रशिक्षण देने एवं हिन्दू धर्म में दीक्षित करने की प्रतिमाओं के ताम-झाम पर रहा था, स्पष्टतः ये सब बातें स्वदेश बांधव की शिथिल किंतु जनोन्मुख संरचना में अनुपस्थित थीं। फिर भी, 1908 तक अधिकांश समितियों का मुख्य कार्य जन-सम्पर्क स्थापित करना ही था और इसी दिशा में उनकी गतिविधियाँ प्रेरित भी होती थीं। कभी-कभी तो ये विविध गतिविधियाँ बड़े कल्पनाशील रूप धारण कर लेती थीं। अनेक पत्र-पत्रिकाएं एवं

परचे तो निकलते ही थे और भाषण भी होते थे, साथ ही देशभक्ति के गीतों और नाटकों की बाढ़ सी आ गई थी, जिनमें जात्रा जैसे लोक-माध्यमों का प्रयोग भी किया जाता था। उत्सवों का आयोजन किया जाता था और पारंपरिक धार्मिक मुहावरे को अपनाया जाता था। धीरे-धीरे हिन्दू धर्म को जनसामान्य तक पहुंचने के प्रमुख साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा था जिसमें जनसामान्य की कल्पना-शक्ति को उभारने के साथ-साथ भय का सहारा भी लिया जाता था।¹⁵ फिर था, 1908-09 की अवधि में दमन के पहले ही चक्र में खुली सतितियां या तो समाप्त हो गईं या गुप्त आतंकवादी समितियां बन गईं। समितियों के बारीसालवाले नमूने का स्थान ढाका वाले नमूने ने ले लिया। अश्विनीकुमार दत्त का संगठन भी वस्तुतः किसानों की ऐसी सदस्यता पर आधारित नहीं था, जो सभाओं में बात को पूरी तौर पर न समझने वाले लोगों की उपस्थिति और एक भले बाबू के प्रति आदरभाव से भिन्न होती और ग्राम समितियों में सदैव गांव के भद्रलोक ही होते थे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सरूपखाती में लगभग आधे स्वयंवेवक जिनकी भूमि में जोतधारियों वाली रुचि थी। एक बहुत बड़ी संख्या में स्वदेशी के मामले जमींदारी अधिकारियों एवं मुसलमान दुकानदारों के आपसी विवाद से संबंधित थे। भूस्वामियों द्वारा हाटों को बंद करना बहिष्कार का प्रमुख ढंग हो गया था, और सामाजिक बहिष्कार प्रायः जोतधारियों अथवा जमींदारों द्वारा काश्तकारों अथवा बंटाईदारों पर दबाव का रूप ले लेता था। बाद में घरे-बड़े में रवींद्रनाथ ने हरीश कुंडू के रूप में दमनकारी जमींदार का स्वदेशी आंदोलन के एक नायक के परिवर्तित रूप में सजीव चित्रण किया। यह उनकी कल्पना मात्र नहीं थी, यह बात नवंबर 1907 में टेंगाइल में होनेवाली एक घटना से स्पष्ट है जहां एक मुसलमान बंटाईदार ने अपने हिन्दू जमींदार पर आरोप लगाया कि जमींदार ने उसका मैनेजेस्टर-निर्मित कपड़ा इस कारण जला डाला था कि वह डरकर अपना पट्टा छोड़ दे।¹⁶

हिन्दू-मुसलमान संबंध- इस प्रकार अंग्रेजों के फूट डालो और राज करो के तरीकों के लिए स्थिति लगभग बनी-बनाई थी। अक्टूबर 1907 में उत्तरी कलकत्ता में स्वदेशी से सहानुभूति रखनेवाले को पुलिस ने पीटा और पुलिस को मदद दी शहरी गरीब वर्ग के कुछ तत्वों ने जिन्हें इन उपद्रवों की गैर सरकारी तहकीकाती रिपोर्ट में बारंबार ढंगर, मेहतर जैसे बदमाश और निम्न वर्ग के लोग कहा गया। किन्तु जो वस्तुतः गंभीर स्थिति बन रही थी वह थी मुस्लिम अलगाववाद में तेजी से वृद्धि। सांप्रदायिक एकता के लिए बड़ी मुखर अपीलें की जातीं, भाईचारे के कुछेक स्मरणीय दृश्य भी देख गये और स्वदेशी आंदोलन में मुसलमान आंदोलनकारियों का एक अत्यंत सक्रिय एवं निष्ठावान समूह भी मौजूद था (जिसमें गजनवी, रसूल, दीन मोहम्मद, दीदार बख्श, मुनीरुज्जमा, इस्माइल हुसैन शीराजी, अबुल हुसैन, अब्दुल गफूर और लियाकत हुसैन जैसे लोग सम्मिलित थे जिनमें से कुछ के नाम मई 1907 में राजद्रोह के सर्वप्रथम अभियान के लिए प्रस्तावित थे)। इस सबके बावजूद अंग्रेजों का यह प्रचार कि नया प्रांत बन जाने से मुसलमानों को नौकरियों के अधिक अवसर मिलेंगे, उच्च एवं मध्यवर्गीय मुसलमानों को स्वदेशी आंदोलन के विरुद्ध बहकाने में पर्याप्त सफल रहा। सलीमुल्ला गुट की अभिजनवादी राजनीति पर एवं मुस्लिम लीग पर बाद में विचार किया जाएगा। वर्तमान संदर्भ में अधिक प्रासंगिक है, पूर्वी बंगाल में सांप्रदायिक दंगों का भड़क उठना-मई 1906 में मैमनसिंह जिले के ईश्वरगंज में, कोमिला और जमालपुर, दीवानगंज और बक्शीगंज में अप्रैल-मई 1907 में। ये सब स्थान भी मैमनसिंह जिले में आते थे।¹⁷ बाजारी निम्न वर्ग के सामान्य मुसलमान कोमिला शहर में होनेवाले दंगों में प्रमुख थे,

जबकि मैमनसिंह में होनेवाले उपद्रवों में ग्रामीण तत्व अधिक प्रबल था। दंगाइयों के लक्ष्य थे हिंदू जमींदार और महाजन, जिनमें से कुछ ने हाल ही में हिन्दू मूर्तियाँ के रखरखाव के लिए ईश्वरवृत्ति उगाहना आरंभ किया था। कई स्थानों पर ऋण-पत्र फाड़ डाले गये और कहीं-कहीं तो दंगों ने गरीबों द्वारा अमीरों में माल की आम लूट का रूप धारण कर लिया था जहाँ हिंदू काश्तकार भी लूट में सम्मिलित हो गए थे। कहा जाता है कि मौलवियों ने अफवाह फैला दी थी कि अंग्रेज ढाका के नवाब सलीमुल्ला को राज सौंपकर जा रहे हैं। नवाब साहबरे सुविचार शीर्षक वाले एक सांप्रदायिक पत्र में तो सलीमुल्ला को मसीहा तक कहा गया था। ऐसे धार्मिक नेताओं का संबंध प्रायः नवोदित धनी कृषक तत्वों से होता था और रेड पैम्फलेट (1907) अथवा कृषक बंधु (1910) जैसे मुलमान प्रचार-साहित्य में जमींदार-महाजन शोषकों को हिन्दू का पर्याय बतलाने के साथ ही साथ एक प्रकार के कुलक अर्थात् पूंजीवादी कृषक के विकास की परिकल्पना भी की गई थी।

1907-08 में लिखे गए असाधारण अंतर्दृष्टिपूर्ण लेखों की शृंखला के साथ ही पटना प्रांतीय सम्मेलन में दिए गए अध्यक्षीय भाषण में रवींद्रनाथ ने कहा था कि दंगों के लिए केवल अंग्रेजों को दोष देना ही पर्याप्त नहीं है। शैतान तभी भीतर आ सकता है, जब उसे आने का मार्ग मिले और मूल समस्या तो यह थी कि हम थोड़े से शिक्षितों और देश के करोड़ों सामान्य जन के बीच एक विशाल खाई मौजूद है। जब तक इस खाई को नहीं पाटा जाता, कोरी बातों अथवा आतंकवादी कार्यों से सफलता नहीं मिलनेवाली थी। फिर भी, टैगोर द्वारा प्रस्तुत यह विकल जुझारू युवा वर्ग को आकर्षित न कर सका कि धैर्यपूर्वक, बिना दिखाने के गांवों में रचनात्मक कार्य किया जाए, जिसमें उन्हें आशा थी कि जमींदार आगे बढ़कर संरक्षण और नेतृत्व देंगे। वैसे भी अंग्रेज सरकार का बढ़ता हुआ दमन युवकों को बराबर भड़का रहा था। यह भी सच है कि टैगोर के पास जनसमुदाय को प्रेरित करने के लिए कोई ठोस सामाजिक अथवा आर्थिक कार्यक्रम नहीं था। अतः उनकी आवाज धीरे-धीरे वीराने में गूंजने वाली पुकार बनकर रह गई। इस बात को स्वयं टैगोर ने घरे-बड़े में अधोषित रूप से स्वीकार किया था। इस उपन्यास के उदात्त किन्तु नितांत प्रभावहीन और एकाकी नायक लिखिलेश और उनके पहले के उपन्यास गोरा के आशावादी अंत में महत्वपूर्ण वैषम्य दिखाई देता है।¹⁸

अधिकांश राष्ट्रवादियों की धारणा थी कि मुसलमान दंगाई अंग्रेजों के भाड़े के टट्टू से अधिक कुछ नहीं थे, जो वंदेमातरम् के अनुसार, रूस के प्रति क्रांतिकारी ब्लैक हंड्रेड्स के समरूप थे। वास्तव में 1907 के दंगों ने स्वयंसेवी संगठनों को अत्यधिक प्रेरित किया और उग्रवादी प्रचार में आक्रामक हिंदूवादी स्वर प्रखर होने लगा जो साथ ही आतंकवाद की दिशा में घूम गया। यह एक ऐसी स्थिति थी जो लगभग अपरिहार्य थी, क्योंकि जहां जनसामान्य उदासीन हो अथवा वैमनस्य का भाव रखता हो, वहां व्यवहार में क्रांति का अर्थ गिने-चुने लोगों की कार्रवाई ही होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. विश्वनाथ, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और बंगाल, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष-2018, पृ-1
2. Sumit Sarkar, The Swadeshi Movement in Bengal- 1903-1908, People's Publishing House, 1977, pp.59
3. वही, पृ० 68

4. वही, पृ. 76
5. प्रभात चंद्र गांगुली, बांग्लार नारी जागरण, कलकत्ता, 1352, पृ. 14
6. नागेन्द्र कुमार, 'इंडियन नेशनल मूवमेंट', पृ. 81
7. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास (1857-1947), पृ. 17
8. आर.सी. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, वोल्यूम-3, पृ. 42
9. जीवन तारा हालदार, अनुशीलन समितीर संक्षिप्त इतिहास (1950-1965), पृ. 59
10. आर.सी. मजूमदार, दि जेनेसिस ऑफ एक्स्ट्रीमिज्म, स्टडीज इन दि बंगाल रेनेसां, पृ. 199
11. एन.के. सिन्हा, बंगाल का आर्थिक इतिहास, खंड-2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1988, पृ. 69
12. वही, पृ. 72
13. वही, पृ. 78
14. जदुगोपाल मुखर्जी, विप्लवी जीबनेर स्मृति, 1956, पृ. 74
15. Charudutta Basu Majumdar, Vartman Samasya Jo Swadeshi Andolan, November, 1905, p. 68
16. Sabyasachi Bhattacharya, Laissez Faire in India : Economic and social History Review, Vol. 2, No.-1, Jan. 1965, p. 32
17. G.N. Gupta, A survey of the Industries and Resources of Eastern Bengal and Assam for 1907-08, p. 08
18. Charudutta Basu Majumdar, Vartman Samasya Jo Swadeshi Andolan, November, 1905, p. 76

गुप्तों के शासनकाल में पाटलिपुत्र नगर की सौन्दर्य एवं वैभव

• अमोल कुमार

सारांश- गुप्त काल में पाटलिपुत्र का अनेकों संदर्भ में पाया जाना जहां एक ओर इस नगर के वैभव एवं सौंदर्य की चरम सीमा का वर्णन करता है वहां दूसरी ओर उनके ह्रास के प्रारंभ का महत्वपूर्ण सूत्र भी करता है। गुप्त काल में पाटलिपुत्र के सांस्कृतिक-ऐतिहासिक धरोहरों को करीब से जानना जाता रहा है जो पटना संग्रहालय आकर अपने प्राचीन धरोहरों और संबंधित दस्तावेजों को आकलन किया जा सकता है। अतः गुप्त काल को भारतीय संस्कृति के चरमोत्कर्ष का काल मान सकते हैं न कि पुनरुत्थान का। इस प्रकार गुप्त वंश के शासकों ने भारत की बिखरी राजनीतिक एवं सैनिक व्यवस्था का पुनरुत्थान किया। इस समय शासन एवं संस्कृति दोनों का संतुलित विकास हुआ। गुप्तकाल की एक प्रमुख विशेषता जिसका उल्लेख किए बिना गुप्तकालीन इतिहास अधूरा है, वह है सामन्तवादी व्यवस्था की शुरुआत। इसीलिए इसे हिन्दू संस्कृति के स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है।

मुख्य शब्द - गुप्त वंश, धरोहर, वैभव एवं सौंदर्य, राजनीतिक, हिन्दू संस्कृति, सैनिक व्यवस्था

गुप्त शासकों ने अपने शासनतंत्र में व्यापकता एवं साम्राज्य विस्तार के द्वारा एक गौरवशाली युग का सूत्रपात किया। इस समय शासन एवं संस्कृति दोनों का संतुलित विकास हुआ। इसीलिए इसे हिन्दू संस्कृति के स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है। अनेक विजयों के परिणामस्वरूप गुप्तकाल अपने उत्कर्ष के समय उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम से स्वाराष्ट्र तक फैला था। पाटलिपुत्र इस विशाल साम्राज्य की राजधानी था। गुप्त साम्राज्य की शासन व्यवस्था राजतंत्रात्मक थी। गुप्त शासक दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत में विश्वास रखते थे तथा महाराजधिराज, परमभट्टारक, एकराट एवं परमेश्वर जैसी उपाधियां धारण करते थे।¹ गुप्तकालीन शासनतंत्र एवं उसके अंतर-राज्य सम्बन्ध की स्थिति भिन्न-भिन्न राजाओं के शासनकाल में अलग-अलग दिखाई पड़ती है। गुप्त शासकों ने विजय अभियान के द्वारा, मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर एवं वैवाहिक संबंधों के द्वारा अपने साम्राज्य को विस्तारित किया तथा इसकी आंतरिक सुरक्षा के साथ-साथ वाह्य व्यापारिक प्रगति कर आर्थिक रूप से समृद्ध किया। चीनी पर्यटक फाहियान के अनुसार गुप्त शासक बहुत योग्य थे। सारी जनता में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। देश में सुख-शांति थी। राज्य कर्मचारी भ्रष्ट नहीं थे, राज्य के संरक्षकों और सभी सेवकों को नकद वेतन मिलता था। फाहियान के विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि गुप्त सम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र एक भव्य नगर था। वह इस नगर में अशोक के महल को देखकर बहुत हैरान हुआ। उसने इसमें 67 महलों को देवताओं द्वारा बनाया गया था।² ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपनी रानी पाटलि के लिये जादू से इन नगर का निर्माण एवं सौंदर्यीकरण का निर्माण किया। इसी कारण नगर का नाम पाटलिग्राम पड़ा। संस्कृत में पुत्र का अर्थ बेटा तथा ग्राम का अर्थ गांव होता है। लेकिन यह ऐतिहासिक नगर पिछली दो

• प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलाकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर

सहस्राब्दियों में कई नाम पा चुका है जिससे पाटलिग्राम, पाटलिपुत्र, पुष्पपुर, कुसुमपुर, अजीमाबाद और पटना है। पटलिपुत्र के सांस्कृतिक-ऐतिहासिक धरोहरों को करीब से जानना चाहते हैं पटना संग्रहालय आकर अपने प्राचीन धरोहरों और संबंधित दस्तावेजों को देख सकते हैं। अतः गुप्त काल को भारतीय संस्कृति के चरमोत्कर्ष का काल मान सकते हैं न कि पुनरुत्थान का। गुप्त वंश के शासकों ने भारत की बिखरी राजनीतिक एवं सैनिक व्यवस्था का पुनरुत्थान किया। महान गुप्त सम्राटों ने अपने पराक्रम से एक विशाल गुप्त साम्राज्य की स्थापना की। इस वंश के सम्राटों में चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य इत्यादि का नाम सर्वप्रमुख है। इन्होंने अपनी विशाल सैन्य शक्ति तथा कुशल प्रशासनिक क्षमता के बल पर गुप्त साम्राज्य का चतुर्दिक विकास किया। अपने समकालीन विरोधियों विशेषकर उत्तरी भारत के छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीन कर उन्होंने तत्कालीन भारत के अशांत वातावरण में शांति, सुरक्षा, समृद्धि एवं स्थायित्व प्रदान किया।³

गुप्तकाल के प्रमुख नगरों में पाटलिपुत्र, वैशाली, नालन्दा, अयोध्या, इन्दौर, उज्जयिनी, दशपुर, एरिक्किण एवं गिरिनगर प्रमुख थे। ये सभी दुर्ग प्राचीर से घिरे थे। इन दुर्गों की सुरक्षा एवं आस-पास के क्षेत्र में शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने का काम “दंडनायक” का था। 66 बाह्य आक्रमणों से साम्राज्य की सुरक्षा तथा आन्तरिक शांति की रक्षा के लिए साम्राज्य के विभिन्न भागों में बने दुर्गों में दण्डनायकों के अधीन सैनिक टुकड़ियाँ होती थीं। इस प्रकार प्रत्येक दुर्ग का सैनिक अधिकारी दण्डनायक होता था और साम्राज्य के विभिन्न भागों में नियुक्त सभी दण्डनायक महादण्डनायक के अधीन होते थे। समुद्रगुप्त का संधिविग्रहिक हरिषेण महादण्डनायक भी था। गुप्तकालीन शांति एवं सुव्यवस्था के फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों एवं नगरों के बीच तो व्यापार बढ़ा ही, साथ ही विदेशी व्यापार में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। फलतः देश के अनेक समृद्धशाली नगर व्यापार के केन्द्र बने। पाटलिपुत्र, वैशाली, गया, नालन्दा, ताम्रलिप्ति, वाराणसी, मथुरा, विदिशा, उज्जयिनी आदि नगर निरन्तर व्यापार एवं उद्योग-धन्धों के कारण देश में व्यापार प्रतिष्ठानों के रूप में ख्याति अर्जित किए हुए थे।⁴ सामान्यतः व्यापार प्रतिष्ठान श्रेणियों द्वारा संचालित थे। गुप्तकाल की एक प्रमुख विशेषता जिसका उल्लेख किए बिना गुप्तकालीन इतिहास अधूरा है वह है सामन्तवादी व्यवस्था की शुरूआत। गुप्तों की सैन्य व्यवस्था लगभग मौर्यों के समान थी, परन्तु उनके संगठन में कुछ शिथिलता थी। समुद्रगुप्त ने संप्रभुता स्वीकार करने और कर अदा करने के बदले विजित क्षेत्रों को कुछ सीमा तक स्वायत्तता प्रदान की और इस प्रकार उसने सामन्तवादी व्यवस्था का शुभारम्भ किया।⁵

गुप्तकाल आर्थिक समृद्धि वैभव एवं वैचारिक समन्वय का काल था जिसके कारण व्यक्ति अपने गुणों के आधार पर महत्व प्राप्त कर रहा था। मौर्यकाल में हुई वैचारिक क्रान्ति का विकसित और परिष्कृत रूप हमें गुप्त काल में देखने को मिलता है। गुप्तों ने जिस ब्राह्मण धर्म को स्थापित किया था वह परम्परागत रूढ़िता से मुक्त था और एक संतुलित रूप में विद्यमान था निश्चित रूप से उस पर पूर्व में हुई बौद्धिक क्रान्ति का प्रभाव पड़ा था। ‘स्वर्ण युग’ तथा ‘शास्त्रीय काल’ कहलाने वाले गुप्त युग में सभी कलाओं में संतुलन और सामंजस्य था तथा वहां का प्रशासन तन्त्र भी दक्ष था। पाटलिपुत्र नगरों के सौंदर्यीकरण में व्यापारिक गतिविधियों की मुख्य भूमिका रही है।⁶

गुप्त काल में पाटलिपुत्र का अनेकों संदर्भ में पाया जाना जहां एक ओर इस नगर के वैभव की चरम सीमा का वर्णन करता है वहां दूसरी ओर उनके ह्रास के प्रारंभ का महत्वपूर्ण

सूत्र भी करता है। पाटलिपुत्र नगर सोननदी की भयंकर तथा अभूतपूर्व बाढ़ के कारण नष्ट हो गया था। इसकी पुष्टि ह्वेन सांग के कथनों से होती है। कुम्हार की खुदाई से भी पता चलता है कि उक्त क्षेत्र वीरान ही रहा। उक्त बाढ़ के अलावा अन्य कारण भी थे जिसके परिणामस्वरूप राजकीय गतिविधियों के केन्द्र के रूप में पाटलिपुत्र का महत्व कम होता गया। इस नगर के महत्व को विशेष धक्का हर्ष के शासन काल तथा उसके बाद में लगा जबकि उत्तरी भारत में राज्य सत्ता के प्रतीक के रूप में पाटलिपुत्र के स्थान पर कन्नौज का उदय हुआ। इसका कारण संभवतः कन्नौज का भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के निकट होना था।⁷ पाटलिपुत्र मूलतः मगध में स्थित पाटलिग्राम नामक एक गाँव था, जो गंगा के दूसरी ओर कोटिग्राम के सम्मुख था। पाटलिग्राम के दुर्गीकरण से, जिसे बुद्ध के जीवन काल में सुनीध और वर्षकार नामक मगध के दो मंत्रियों ने प्रारंभ किया था, पाटलिपुत्र नगर की नींव पड़ी थी। मेगस्थनीज के अनुसार यह 80 स्टेडिया लम्बा और 15 स्टेडिया चौड़ा था। यह नगर 600 फीट चौड़ी और 30 हाथ गहरी एक परिखा से सुरक्षित था। पाटलिपुत्र उत्तरकालीन शिशुनागों, नदों और महान मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त एवं अशोक की राजधानी थी, किन्तु समुद्रगुप्त की विजयों के समापन के पश्चात् यह गुप्त सम्राटों का साधारण आवास नहीं रहा।⁸ इसकी गरिमा और वैभव से बहुत अधिक प्रभावित हुआ था।

किसी भी काल की आर्थिक प्रगति उस युग के सम्पन्न आर्थिक स्रोतों एवं आर्थिक क्रियाओं के उत्तम प्रबंधन पर निर्भर करता है। साथ ही वास्तविक अर्थों में आर्थिक प्रगति तभी कही जा सकेगी, जब प्रगति की पहुँच समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक हो, और प्रगति की प्रकृति धारणीय (टिकाऊ) हो। गुप्तकाल में, हालांकि आज की तरह आय के विस्तृत संसाधन नहीं थे, फलतः उत्पादक क्षेत्रों को आज की तरह वर्गीकृत नहीं किया जा सकता फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए इनका समूहीकरण करके वर्गीकरण आवश्यक है।⁹

गुप्तकाल में जिन आर्थिक स्रोतों का अस्तित्व था। “पाटलिपुत्र की गौरव-गाथाएँ इतनी विस्तृत हैं कि उनका समग्र रूप में उल्लेख्य हों संभव नहीं है। पाटलिपुत्र नगर संपूर्णतया माता गंगा नदी की देन है, जिसके भरोसे यह शत्रुओं से अजेय तथा व्यापार-वाणिज्य एवं सेना संचार का बड़ा भारी केन्द्र बना हुआ था। गंगा नदी के प्राकृतिक तथा कृत्रिम-दोनों रूपों से पाटलिपुत्र को आवेष्टित किया गया था। पटना के उत्तर, एक सिरे से दूसरे सिरे तक गंगा का प्रखर तथा सुविस्तृत प्रवाह चलता था। नगर के दक्षिण अत्यंत विस्तृत खाई खुदाई गई थी, जिस में पुनपुन, सोन और गंगा तीनों नदियों का पानी भरा रहता था। इस प्रकार पाटलिपुत्र नगर के चारों ओर गंगा-शोण तथा पुनपुन का अगाधजल भरा रहता था और पाटलिपुत्र का सम्राट निष्कण्टक भाव से राज्य करता था। गुप्त काल में अनेक प्रकार के शिल्पों एवं उद्योगों की उन्नति हुई तथा शिल्पियों की स्थिति भी सुधरी। तत्कालीन समाज की स्थिति में शिल्पियों, सेवकों एवं गोपालकों इत्यादि को निम्न श्रेणी के अन्तर्गत रखा गया है।¹⁰ फिर भी इनके साथ उदार दृष्टिकोण रखने की बात भी कही गयी है। गुप्त कालीन अभिलेखों, मुद्राओं और पुरातात्विक अन्य प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि इस काल की अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटक तत्त्व थे- पशुपालन, कृषि, उद्योग और व्यापार। गुप्त कालीन इतिहास के लगभग प्रत्येक आयाम को अपने-आप में समेटने का प्रयास किया है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि गुप्त कालीन पुरातात्विक स्रोतों के बिना इस काल के इतिहास विशेषकर आर्थिक इतिहास का पुनर्निर्माण पूरी तरह सम्भव नहीं हो सकता है। गुप्त साम्राज्य का विस्तार भारत के एक बहुत बड़े क्षेत्र तक था जो समुद्रगुप्त की प्रयाग

प्रशस्ति से प्रमाणित होता है। गुप्त काल में जनजीवन में एक नयी स्फूर्ति का संचार हुआ। परिणामस्वरूप समाज चिरकालीन संस्कृति एवं वैभव का उच्चतम सौंदर्यीकरण का विकास करता हुआ सामाजिक श्रेष्ठता के उच्चतम शिखर पर जा पहुंचा। निश्चित रूप से इस आर्थिक समृद्धि में कृषि के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शिल्पों, उद्योगों और व्यापारिक गतिविधियों का प्रमुखता से प्रभाव था। सम्भवतः इन्हीं कारणों से प्रारम्भिक शासकों ने स्वर्ण की मुद्राओं को व्यापक रूप से प्रचलित करवाया। पुरातात्विक प्रमाण यह भी स्पष्ट करते हैं कि गुप्त कालीन अर्थव्यवस्था क्रमशः कमजोर होती गयी जो उसके पतन का आधार बना। अतः यह कहा जा सकता है कि गुप्त काल के बाद पाटलिपुत्र के स्थान पर कन्नौज राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया तथा पाटलिपुत्र का पतन प्रारंभ हो गया।

निष्कर्ष- इस प्रकार उपरोक्त आलेख से यह स्पष्ट होता है कि पाटलिपुत्र का गुप्त काल के शासनकाल में नगर की सौन्दर्य एवं वैभव एवं सामाजिक तथा आर्थिक जीवन उच्च था। यहां के बाजार बहुमुल्य वस्तुओं तथा अप्राप्य जवाहरतों से सजे रहते थे। यहां की अनगिनत वेदियों तथा भौतिक सम्पन्नता को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि मानों पृथ्वी पर हरी नगर ही उतर आया है। पाटलीपुत्र नगर की अतीत की ख्याति देश के दूरस्थ भागों में कवियों तथा लेखकों को प्रेरणा देती रही। यह नगर परिभूत पुरन्दर स्थानम् अर्थात् स्वर्ग से भी अधिक गरिमा वाला था।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, पृ. 70
2. उपरोक्त, पृ. 71
3. जे. एच. लेगे, रेकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट किंगडम्स वींग इन अकाउंट ऑफ फाहियान ट्रेवेल्स, 1896, पृ. 43
4. अनंत सदाशिव अलतेकर : दि क्वाइनेज ऑफ दि गुप्त इंपायर एण्ड इट्स इमीटेशन, 1957, पृ. 69
5. एस. के. मैती : इकनामिक लाइफ इन दि गुप्त एज, 1970, पृ. 153
6. ए. एस. अलतेकर : क्वायनेज ऑफ दि गुप्त इम्पायर, 1957, पृ. 201-202
7. एस. के. मैती : इकनामिक लाइफ इन दि गुप्त एज, 1970, पृ. 139
8. नाहर रतिभानु सिंह : प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, 1982, पृ. 442
9. परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, 1972, इलाहाबाद
10. श्रीराम गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, 1984, जयपुर

छात्रावासी किशोरियों एवं गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता का तुलनात्मक का अध्ययन

• अलका डेविड

सारांश- सारणी 01 में विभिन्न जाति की छात्रावासी किशोरियों संवेगात्मक स्थिरता संबंधित परिणाम प्रदर्शित किये गये हैं। चारों जाति वर्ग के छात्रावासी किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया है। चारों जाति वर्ग में अनुसूचित जन जाति की छात्रावासी किशोरियों में उच्च संवेगात्मक स्थिरता तथा छात्रावासी सामान्य वर्ग व पिछड़ी जनजाति में अन्य पिछड़ा वर्ग की तुलना में उच्च संवेगात्मक स्थिरता पाई गई है। सारणी 02 में विभिन्न जाति गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता के संबंधित परिणाम प्रदर्शित किये गये हैं। विभिन्न जाति वर्ग के गैर छात्रावासी किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया है। विभिन्न जाति वर्ग की तुलना में अनुसूचित जनजाति की गैर छात्रावासी किशोरियों में संवेगात्मक स्थिरता उच्च संवेगात्मक स्थिरता पाई गई है।

मुख्य शब्द- छात्रावासी किशोरियों, संवेगात्मक, स्थिरता, विभिन्न जाति, गैर छात्रावासी किशोरियों

प्रस्तावना संवेगात्मक स्थिरता- जिन व्यक्तियों में तंत्रिकाओं की गणना कम होती है, वे लोग संवेगात्मक रूप से स्थिर होते हैं और तनाव के प्रति वे प्रभावित भी कम होते हैं, अर्थात् वे शांत स्वभाव के एवं स्थिर होते हैं। इनमें नकारात्मक भावना भी कम पायी जाती है। वो कभी भी सकारात्मक संवेदना के प्रति ज्यादा उत्तेजित नहीं रहते। जिन व्यक्तियों में तंत्रिकाओं की गणना अधिक रहती है, वो बहुत ज्यादा खुश रहते हैं व जीवन के प्रति संतुष्ट रहते हैं। ऐसे व्यक्ति संवेगात्मक रूप से और ज्यादा स्थिर रहते हैं। व्यक्ति के आस-पास घटित घटनाओं को सोचने समझने की एवं प्रतिक्रिया करने की क्षमता होती है, उसे हम संवेग कहते हैं। इसका मतलब यह नहीं होता है, कि आप जो सोच रहे हैं, वही सही है। संवेगों का प्रभाव किशोर किशोरियों के जीवन पर पड़ता है और यह किशोरों के स्थिर संवेगात्मक विकास में सहायक होते हैं। संवेग जीवन में आवश्यक होते हैं। इनका स्थिरता के साथ, समय, परिस्थिति अनुसार प्रगट करना ही संवेगात्मक स्थिरता कहलाता है। इसमें स्थिर संवेगों को विकसित करने हेतु समझदारी तथा सकारात्मक शक्ति का होना बहुत जरूरी है, जिससे कि बेहतर रूप से संवेगों में स्थिरता आ सके और ठीक तरीके से हम उसे व्यक्त कर सकें। अर्थात् किसी भी स्तर पर संवेगात्मक स्थिर आचरण की धारणा वह है जो कि सामान्य संवेगात्मक विकास के परिणामों को प्रतिबिंबित करती है।

संवेगात्मक रूप से स्थिर व्यक्ति को होने वाली घटनाओं का पहले से ही आभास हो जाता है, जिसके माध्यम से वह अपने आप को व्यवस्थित कर लेता है। संवेगात्मक स्थिरता घटनाओं के प्रति आपको मार्गदर्शन भी देता है। किशोर किशोरियों को अपने संवेगों को स्थिर रखकर प्रदर्शित करना आना चाहिये, नहीं तो वे उनके अधीन हो जायेंगे जिससे उन पर इसका

नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा तथा उनका व्यक्तित्व भी प्रभावित होगा।

संवेगात्मक स्थिरता केवल व्यक्तित्व के मापदण्ड का प्रभावी एक मात्र निर्धारण नहीं है, अपितु यह किशोरों के विकास वृद्धि को नियंत्रित करने में सहायक भी है। किसी भी स्तर पर संवेगात्मक स्थिर आचरण की धारणा वह है जो कि सामान्य संवेगात्मक विकास के परिणामों को प्रतिबिंबित करती है। जो व्यक्ति अपनी भावनाओं को चरम सीमा की स्थिति में भी स्थिर एवं अपने नियंत्रण में रख सकता है, तब भी कभी कभार यह आचरण में संवेगात्मक रूप से अस्थिर व अपरिपक्व हो सकता है।

स्मिटसन (1974) ने संवेगात्मक स्थिरता को चिह्नित करते हुये कई बातें बतलाई हैं, जैसे (1) संवेगात्मक स्थिरता एक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति व्यक्तिगत एवं भावनात्मक स्वास्थ्य की महत्तम संवेदना के लिए निरन्तर संघर्ष करता है। (2) संवेगात्मक स्थिर व्यक्ति में कुंठा को यथोचित मात्रा में सहन करने की क्षमता होती है। (3) आवश्यकताओं के संतोष में देर तक मुकाबला करने की क्षमता होती है। (4) विश्वास होता है, परिस्थिति के अनुसार अपेक्षाओं को संशोधित करने या उसे विलंबित करने का सामर्थ्य होता है। (5) संवेगात्मक रूप से स्थिर बालक में स्वयं के साथ, पारिवारिक सदस्यों के साथ, समकक्ष व्यक्तियों के साथ, विद्यालय, समाज, संस्कृति के साथ प्रभावशाली तरीके से सामंजस्य करने की क्षमता होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि स्थिरता का अर्थ केवल आचरण एवं इस क्रियाकलाप की समर्थता नहीं है, किन्तु इससे सम्पूर्ण रूप से आनन्द प्राप्त करने की योग्यता भी है। संवेगात्मक स्थिरता महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। संवेगों को नियंत्रित रूप से संभालना, स्थिर रखना, संवेगों के कारणों को समझना उससे भी अधिक संवेगों की तीव्रता की शक्ति को परिस्थिति के अनुसार प्राप्त करने की योग्यता ही संवेगात्मक स्थिरता है। व्यक्तियों में गहराई तक संवेगों को महसूस करने की क्षमता होती है, प्रत्येक व्यक्ति में डर, खुशी, क्रोध, घृणा, प्रेम, जैसे संवेग होते हैं, किंतु किस सीमा तक हम इन्हें नियंत्रित करते हैं, एवं किस सीमा तक वे हमें नियंत्रित करती हैं। इन सारी बातों का ध्यान रखते हुये व्यक्ति संतोष, आत्मसंयम के गुणों पर काबू पा लेता है, तो वह संवेगात्मक स्थिरता की सीमा को प्राप्त कर लेता है। उच्च पद व उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है।

संवेगात्मक स्थिरता को प्रभावित करने वाले तत्व- यद्यपि व्यक्ति का संवेगात्मक विकास परिपक्वता तथा शिक्षण का परिणाम है, लेकिन इन दोनों कारकों के अतिरिक्त और भी कई कारक हैं जो व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। ये तत्व व्यक्ति के परिवार और समाज संबंधी होते हैं और कुछ स्वयं व्यक्ति के भीतर पाये जाते हैं। ये तत्व निम्नलिखित हैं -

1. थकान और भूख- वयस्कों की तुलना में बालकों में क्रियाशीलता अधिक पायी जाती है। खाली समय में वे या तो कुछ न कुछ करते रहते हैं या खेलते रहते हैं। अधिक खेलने से वे थक जाते हैं। थकान की अवस्था में उनकी संवेगात्मक अस्थिरता बढ़ जाती है। इसी प्रकार उचित समय पर भोजन न मिलने पर या भूख लगने पर भी संवेगात्मक अस्थिरता बढ़ जाती है।
2. बुद्धि- वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि ऐसे व्यक्तियों की बुद्धि सामान्य की तुलना में अधिक होती है, उनमें संवेगात्मक स्थिरता अधिक पायी जाती है तथा जिनकी बुद्धि औसत से कम होती है उनमें संवेगात्मक नियंत्रण और स्थिरता कम पायी जाती है।

3. शारीरिक स्वास्थ्य- व्यक्ति का स्वास्थ्य उसके संवेगात्मक व्यवहारों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जो व्यक्ति कमजोर, अस्वस्थ व रोगी होते हैं वे चिड़चिड़े व क्रोधी हो जाते हैं। इसके विपरीत स्वस्थ व्यक्ति सदैव प्रसन्नचित दिखाई देते हैं। संवेगात्मक नियंत्रण और स्थिरता भी स्वस्थ व्यक्तियों में अस्वस्थ की तुलना में अधिक पायी जाती है।
4. बालक-अभिभावक संबंध- बालक अभिभावक संबंध किशोरों के संवेगात्मक व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। माता-पिता की मनोवृत्तियां तथा पालन पोषण का तरीका बालकों के संवेगों की मात्रा तथा स्वास्थ्य को निर्धारित करता है। बालक अभिभावक संबंधों के आधार पर माता-पिता के व्यवहारों को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।
 1. अतिसतर्क माता-पिता
 2. तिरस्कार करने वाले माता-पिता
 3. कठोर माता-पिता
 4. पक्षपाती माता-पिता
5. पारिवारिक वातावरण- सामाजिक वातावरण के समान पारिवारिक व्यवहार भी व्यक्ति के संवेगात्मक स्थिरता को प्रभावित करता है, जिन परिवारों में आपसी कलह, लड़ाई, झगड़ा, ईर्ष्या, द्वेष आदि पाया जाता है। वहां किशोरों का संवेगात्मक विकास सही प्रकार से नहीं हो पाता है तथा जिन परिवारों में किशोरों की सुरक्षा, शांति तथा आनन्द मिलता है, वहां संवेगात्मक विकास अच्छा होता है।
6. सामाजिक वातावरण- प्रत्येक व्यक्ति जिस सामाजिक वातावरण में रहता है, उसके सदस्यों के संवेगात्मक व्यवहारों का प्रभाव व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहारों पर पड़ता है। यदि व्यक्ति के समूह के साथी क्रोधी व झगड़ालू प्रकृति के होते हैं तो वह भी क्रोधी व झगड़ालू बन जाता है।
7. परिवार की आर्थिक स्थिति- परिवार की आर्थिक स्थिति व्यक्ति के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करती है। स्पिंगर ने व्यक्तित्व परीक्षण के आधार पर बताया कि निम्न आर्थिक स्थिति वाले बालकों के भीतर संवेगात्मक स्थिरता कम पायी जाती है। इसके विपरीत उच्च और मध्यम आर्थिक स्थिति वाले बालकों का संवेगात्मक समायोजन अच्छा होता है।
8. जन्मक्रम- बालकों का जन्मक्रम उनके संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है पहले बालक को अपने माता-पिता से लाड़-प्यार तथा संरक्षण अधिक प्राप्त होता है। ऐसे बालक परिवार में दूसरे बालक के आने पर ईर्ष्यालु हो जाते हैं क्योंकि अब माता-पिता का सम्पूर्ण प्रेम और संरक्षण उन्हें प्राप्त नहीं हो पाता है, उनका एकाधिकार समाप्त हो जाता है।
9. व्यक्तित्व- अनुवांशिकता और वातावरण के प्रभाव के कारण प्रत्येक बालक में एक अलग व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कुछ बालक बहिर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं और कुछ बहिर्मुखी बालकों में संवेगात्मक स्थिरता व संतुलन अन्तर्मुखी बालकों की तुलना में अधिक पाया जाता है।
10. लिंग- बालकों का लिंग उनकी संवेगात्मक अभिव्यक्तियों में अंतर लाता है, जैसे

ईर्ष्या की भावना बालिकाओं में अधिक होती है। प्रेम तथा स्नेह का संवेग भी बालिकाओं में बालकों से अधिक होता है।

11. परिवार का आकार- परिवार का आकार भी कुछ सीमा तक बालकों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। जो बालक संयुक्त परिवारों में रहते हैं। वहां उन्हें अनुकरण का अवसर अधिक मिलता है, जिससे उनका संवेगात्मक विकास तीव्र गति से होता है। इसके विपरीत छोटे परिवारों में बालकों को अनुकरण का अवसर कम मिलता है, अतः उनका संवेगात्मक विकास धीमी गति से होता है।
12. आत्म-विश्वास- जरसील्ड (1978) ने इस संबंध में अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'कोई चीज जो बालक के आत्मविश्वास को कम करे या उसके आत्म-सम्मान या उसके कार्य जिसे वह करना चाहता है या उद्देश्य जिसे वह महत्वपूर्ण समझता है, से विचलित करे तो यह उसमें चिंता या भय की प्रवृत्ति में वृद्धि कर सकती है'।

शोध कार्य के उद्देश्य - प्रस्तुत शोध कार्य के निम्न उद्देश्य हैं

1. गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता का अध्ययन।
2. छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी किशोरियों के एवं संवेगात्मक स्थिरता पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन।

साहित्य का पुनरावलोकन एवं परिकल्पना

ब्रिजेस एवं गोलनिक (1995) ने अध्ययनों में यह पाया कि सकारात्मक तथा नकारात्मक संवेगों की अभिव्यक्ति में व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लायी गयी प्रक्रिया को प्रवर्तित करना, जारी रखना तथा अनुकूल बना लेना यह सभी संवेगों के नियंत्रण में शामिल है। ओहानिसन, क्रिस्टीन एवं अन्य (1995) ने अपने अध्ययन में देखा कि प्रारंभिक किशोरावस्था में पारिवारिक समायोजन एवं संवेगात्मक समायोजन के महत्वपूर्ण कथनात्मक संबंध का अध्ययन किया। यह अध्ययन 235 किशोर व किशोरियों पर किया गया। पारिवारिक समायोजन एवं संवेगात्मक समायोजन के मध्य विपरीत संबंध पाया गया, जो बालक अपने शालेय जीवन के प्रारंभिक समय में परिवार से संतुष्ट थे, अधिक उच्च स्तर का अवसाद एवं चिंता पायी।

Siobhan Sullivan (2002-2003) ने बताया कि संवेगात्मक स्थिरता, आत्म सम्मान के बीच का संबंध है और सेन्स की भावना की जांच की इसमें 84 प्रतिभागी लोयोला कॉलेज के छात्र पर पुरुष तथा पर महिलायें जो 22 वर्ष की आयु के थे। रोजनबर्ग सेल्फ स्टीम स्केल और जीवन स्तर के लिए अभिविन्यास का (1) संवेगात्मक स्थिरता और स्वयं के बीच सकारात्मक संबंध होगा (2) संवेगात्मक स्थिरता और सेवा की भावना के बीच एक नकारात्मक संबंध होगा। एक महत्वपूर्ण रिश्ते भी संवेगात्मक स्थिरता और सेन्स की भावना के बीच पाया गया।

कोले टेटी एंड जाहन बावन्जलेर (2003) ने अपने अध्ययन में बताया कि किशोर किशोरियों में संवेगात्मक नियन्त्रण के विकास अच्छा ना होने के कारण आंतरिक एवं बाह्य परेशानियों का निर्माण होता है, जिसके कारण उनमें आंतरिक समस्या उत्पन्न होती है, और वे नकारात्मक सोच के होने लगते हैं।

Sheema Aleem (January - July 2005) Emotional Stability among College Youth, The present study has set the following objectives:

1. To find out the prevalence of emotional stability among male and

female students.

2. To examine difference between the mean scores of male and female students on emotional stability.

Emotional stability questionnaire was administered on 50 male and 50 female students of different colleges of New Delhi. Results shows that male students are found to be more emotionally stable than female students. Emotional stability remains the central theme in personality studies. It is commonly regarded as the factor expressing the level of natural dynamic integration, emotional controlled stability. Emotional stability is essentially a measure of anxiety versus well-being, where emotions are controlled rather than highly variable. Only emotionally stable people can experience true empathy, and empathy is a prime requirement for successful relationship. The differences in the emotional stability of males and females may be due to the fact that females become anxious very soon. Their feeling of insecurity, lack of ability to adjust makes them less stable. They may get annoyed easily by things and people, showing marked dissatisfaction. Sometimes they may also get annoyed by increasing responsibilities. They get frustrated easily as compared to boys. Whereas boys face the society and strenuous situations rather than running away from it. They have the capacity to withstand delay in satisfaction of needs, ability to tolerate a reasonable amount of frustration, belief in long term planning and are capable of delaying or revising their Expectations in terms of demands of the situations.

पाटसे व अन्य साथियों (2006) ने अध्ययनों में पाया कि उच्च संवेगात्मक परिपक्व किशोरों में सार्थक दृष्टिकोण से निम्न संवेगात्मक परिपक्व किशोरों की अपेक्षा उच्च तनाव व आत्म विश्वास पाया गया।

उपर्युक्त चरों का विवरण निम्नानुसार है -

न्यादर्श तथा उसका चुनाव

स्वतंत्र चर -

1. संवेगात्मक स्थिरता संवेगात्मक स्थिरता मापनी - ए.सेन गुप्ता, एवं ए.के. सिंह नियंत्रित चर - किशोरावस्था

मापन उपकरण- संवेगात्मक स्थिरता मापनीमापनी का निर्माण डॉ. ए.सेन गुप्ता तथा डॉ. ए. के सिंह द्वारा सन् 1985 में किया गया। यह एक शाब्दिक मापनी है, जिसमें कुल 15 पद हैं

मापन उपकरण- प्रश्नावली विधि के अन्तर्गत प्रतिबन्ध या बन्द प्रश्नावली आँकड़ा संग्रह के लिए चयन किया गया

सीमाएं- प्रस्तुत शोधकार्य में भी कुछ सीमाएं निर्धारित की गयीं जो अग्रलिखित हैं-

1. प्रस्तुत शोध केवल भोपाल शहर में ही किया गया है।

2. प्रस्तुत शोध में किशोरियों को ही लिया गया है।
3. स्कूलों का चयन दैव निदर्शन द्वारा किया गया है।
4. शोध में केवल छात्रावासी किशोरियों, गैर छात्रावासी किशोरियों को ही लिया गया है।

तालिका :01

छात्रावासी किशोरियों विभिन्न जाति के संवेगात्मक स्थिरता का तुलनात्मक परिणाम

विभिन्न जाति	संख्या	माध्य	मानक विचलन
सामान्य	44	7.77	1.309
अन्य पिछड़ा वर्ग	40	8.05	1.600
अनुसूचित जाति	27	10.44	2.547
अनुसूचित जन जाति	39	11.13	4.001

प्रसरण विसरण की सारांश तालिका

चर	प्रसरण विश्लेषण	वर्गों का योग	स्वातंत्र्य कोटी	माध्य वर्ग योग	'एफ' का मान	'पी' का मान
संवेगात्मक स्थिरता	समूहों के 'अन्तर्गत' प्रसरण	329.347	3	109.782	16.860	<0.01*
	समूहों के 'मध्य' प्रसरण	950.653	146	6.511		

स्वतंत्रता के अंश- 3, 146 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु मान - 2.6802

0.01 स्तर पर सार्थकता हेतु मान - 3.9490

उपरोक्त सारणी में विभिन्न जाति की छात्रावासी किशोरियों संवेगात्मक स्थिरता संबंधित परिणाम प्रदर्शित किये गये हैं। इन परिणामों से ज्ञात होता है कि सामान्य जाति की छात्रावासी किशोरियों संवेगात्मक स्थिरता के माध्य का मान 7.77 है, अन्य पिछड़ा वर्ग की छात्रावासी किशोरियों में संवेगात्मक स्थिरता के माध्य का मान 8.05 है अनुसूचित जाति छात्रावासी किशोरियों के माध्य का मान 10.44 तथा अनुसूचित जन जाति छात्रावासी किशोरियों के माध्य का मान 11.13 है। इन समूहों के मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से विभिन्न जाति की छात्रावासी किशोरियों में संवेगात्मक स्थिरता के मध्य 'एफ' अनुपात का मान 16.860 आया है, जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर 'एफ' का मान के न्यूनतम मान 3.9490 की अपेक्षा से अधिक आया है। अतः यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है। अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता पर विभिन्न जाति का प्रभाव पड़ता है। चारों जाति वर्ग के छात्रावासी किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया है। चारों जाति वर्ग में अनुसूचित जन जाति की छात्रावासी किशोरियों में उच्च संवेगात्मक स्थिरता तथा छात्रावासी सामान्य वर्ग व पिछड़ी जनजाति में अन्य पिछड़ा वर्ग की तुलना में उच्च संवेगात्मक स्थिरता पाई गई है।

तालिका :02

विभिन्न जाति की गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता का तुलनात्मक परिणाम

विभिन्न जाति	संख्या	माध्य	मानक विचलन
सामान्य	73	7.25	2.847
अन्य पिछड़ा वर्ग	34	6.47	1.440
अनुसूचित जाति	21	9.00	2.470
अनुसूचित जनजाति	22	12.27	1.804

प्रसरण विसरण की सारांश तालिका

चर	प्रसरण विश्लेषण	वर्गों का योग	स्वातंत्र्य कोटी	माध्य वर्ग योग	'एफ' का मान	'पी' का मान
संवेगात्मक स्थिरता	समूहों के 'अन्तर्गत' प्रसरण	543.177	3	181.059	31.380	<0.01*
	समूहों के 'मध्य' प्रसरण	842.396	146	5.770		

स्वतंत्रता के अंश- 3,146 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु मान - 2.6802

0.01 स्तर पर सार्थकता हेतु मान - 3.9490

उपरोक्त सारणी में विभिन्न जाति की गैर छात्रावासी किशोरियों संवेगात्मक स्थिरता के संबंधित परिणाम प्रदर्शित किये गये हैं। इन परिणामों से ज्ञात होता है कि सामान्य जाति की गैर छात्रावासी किशोरियों संवेगात्मक स्थिरता के माध्य का मान 7.25 है, अन्य पिछड़ा वर्ग की गैर छात्रावासी किशोरियों में संवेगात्मक स्थिरता के माध्य का मान 6.47 है। अनुसूचित जाति गैर छात्रावासी किशोरियों के माध्य का मान 9.00 है। अनुसूचित जन जाति की गैर छात्रावासी किशोरियों के माध्य का मान 12.27 है। इन समूहों के मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से विभिन्न जाति की गैर छात्रावासी की किशोरियों छात्रावासी में संवेगात्मक स्थिरता के मध्य 'एफ' अनुपात का मान 31,380 आया है, जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर 'एफ' का मान के न्यूनतम मान 3,9490 की अपेक्षा अधिक आया है। अतः यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक आया है। अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि विभिन्न जाति की गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता पर विभिन्न जाति का प्रभाव पड़ता है। विभिन्न जाति वर्ग के गैर छात्रावासी किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया है। विभिन्न जाति वर्ग की तुलना में अनुसूचित जनजाति की गैर छात्रावासी किशोरियों में उच्च संवेगात्मक स्थिरता पाई गई है।

निष्कर्ष- अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता पर विभिन्न जाति का प्रभाव पड़ता है। चारों जाति वर्ग के छात्रावासी किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया है। चारों जाति वर्ग में अनुसूचित जन जाति की छात्रावासी किशोरियों में उच्च संवेगात्मक स्थिरता तथा छात्रावासी सामान्य वर्ग व पिछड़ी जनजाति में अन्य पिछड़ा वर्ग की तुलना में उच्च संवेगात्मक स्थिरता पाई गई है। अतः यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक आया है। अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि विभिन्न जाति की गैर छात्रावासी किशोरियों के संवेगात्मक स्थिरता पर विभिन्न जाति का प्रभाव पड़ता है। विभिन्न जाति वर्ग के गैर छात्रावासी किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया है। विभिन्न जाति वर्ग की तुलना में अनुसूचित जन जाति की गैर छात्रावासी

किशोरियों में उच्च संवेगात्मक स्थिरता पाई गई है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

- Bridges, L. J., & Gardnick, W.S. (1995). The development of emotional self regulation in infancy and early childhood. In N.E. Eisenberg (Ed.) Review of personality and social psychology . vol. 15 : social development (pp. 185-211) Thousands oaks co. Stage.
- श्रीवास्वत डॉ. डी.एन.; मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा पृ.सं. 56
- कपिल एच.के.(1995), अनुसंधान विधियाँ, हर प्रसाद भार्गव, एन्ड सन्स, प्रकाशक- हर प्रसाद पुस्तक 4/230 कचहरी घाट आगरा, पृ.सं.-56। आगरा, पृ.सं. 51-56
- Koole, S.L. & Pelham, B.W. (2003) On the nature of implicit self-esteem: The case of the name letter effect. In S. Spencer, S. Fein, & M.P. Zanna (Eds.) Motivated social perception: The Ontario Symposium (pp. 93-116) Hillsdale, NJ: Lawrence Erlbaum.
- Sheema Aleem, Lecturer, Department of Psychology, Jamia Millia Islamia, New delhi, (January - July 2005 Emotional Stability among College Youth, © Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, January - July 2005, Vol. 31, No.1-2, 100-102.
- Patsey, G.S & Amin Bridges, L. J., & Gardnick, W.S. (1995). The development of emotional self regulation in infancy and early childhood. In N.E. Eisenberg (Ed.) Review of personality and social psychology . vol. 15 : social development (pp. 185-211) Thousands oaks co. Stage.
- Bhavi V.A. (2006) Impact of Emotional Maturity on stress and self confidence of Adolescents. Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, (January) vol. 32, no.1, 66-70
- हरलॉक बी. एलिजाबेथ -1967 विकास मनोविज्ञान, नई दिल्ली वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का स्थाई आयोग, शिक्षा मंत्रालय यू.जी.सी. इवन, द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण

भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि चम्बा चित्रशैली

● निशा गुप्ता

सारांश- भारतीय संस्कृति को अपने में आत्मसात किये हुए चम्बा एक रमणीक प्राकृतिक स्थल है। रावी नदी के किनारे बसा हुआ यह शहर सौन्दर्य पूर्ण चित्रों का अपूर्व खजाना है। चित्रों में चित्रकारों की कोमल कान्त कल्पना उभर कर आई है। यहाँ के चित्र देश-विदेश के संग्रहालयों में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ के चित्रों की रंगों की कोमलता, ताजापन बेजोड़ है। चित्रों में मुख्य रूप से मुलतानी मिट्टी, गेरू, हिरमंजी, पेवड़ी, नील, स्वर्ण एवं सफेदा आदि रंगों का प्रयोग हुआ है। नायक-नायिकाओं की प्रेम लीला को चित्रकारों ने हल्के स्पर्श से उभारा है। भूरी सिंह संग्रहालय एवं राष्ट्रीय संग्रहालय दोनों ने चम्बा कला की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखा हुआ है।

मुख्य शब्द - धरोहर, रमणीक, अखण्ड, अवशेष, उत्कृष्ट

चम्बा बसोहली से सटा हुआ एक रमणीक स्थान है। यहाँ एक स्वतन्त्र शैली का विकास हुआ जिसमें प्रारम्भिक पहाड़ी शैली के चित्र स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। उत्तरोत्तर काल में चम्बा पहाड़ी कला का प्रमुख केन्द्र बनकर उभरा। प्राचीन अवशेषों की अध्ययन की दृष्टि से चम्बा, काश्मीर और नेपाल के समान महत्वपूर्ण है। चम्बा की घाटी कला की घाटी कही जाती है। प्राचीन काल से ही चम्बा को भारतीय कला और संस्कृति का केन्द्र माना जाता है। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेरित होकर कलाकारों ने विभिन्न रूपों को उकेरा। चम्बा कला के चित्र देश-विदेश के संग्रहालयों व प्रशंसकों के बीच बिखरे पड़े हैं। यहाँ पर तीन मुख्य घाटियाँ हैं-

- (1) व्यास घाटी,
- (2) रावी घाटी
- (3) चेनाब घाटी या पांगी

चम्बा की स्थापना कब हुई, इसकी ठीक-ठीक तिथि का पता नहीं चलता। अनुमान किया जाता है कि चम्बा रियासत की स्थापना छठी शती के मध्य हुई। चम्बा के राजा सूर्यवंशी थे, जो राम के वंशज कहलाये। प्रथम पूर्वजों में मारु का विवरण मिलता है, जो राजपाट अपने बेटों को सौंपकर साधु हो गये थे। ये राजा अपने नाम के पीछे वर्मन लगाते थे।

राजा साहिल वर्मन ने ब्रह्मपुर से अपनी राजधानी चम्बा बनायी। चम्बा नाम साहिल वर्मन की पुत्री चम्पावती के नाम पर रखा गया। चम्पावती धर्मपरायण स्त्री थी, जो प्रायः एक साधू से मिलने जाया करती थी, राजा को शक हुआ, राजा ने जैसे ही रहस्य जानने का प्रयत्न किया तो उसने देखा कि मकान में कोई नहीं था। मकान से भविष्यवाणी हुई कि तुम्हारे मन में जो पाप का उदय हुआ है, उसकी सजा यह है कि जो बेटी मर चुकी है, उसकी स्मृति में एक मन्दिर बनाओ, फलस्वरूप राजा ने मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर चम्बा राजाओं

की कुलदेवी बन गयी।

साहिल वर्मन ने लक्ष्मी नारायण, चन्द्रशेखर और कामेश्वर के मन्दिरों का निर्माण किया। साहिल वर्मन को 84 योगियों के आशीर्वाद से सन्तान प्राप्त हुई थी, जिसके फलस्वरूप 84 योगियों के मन्दिर बनवाये गये। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम चौरासी पड़ गया।²

कला प्रेमी राजाओं के काल में चम्बा काल को पर्याप्त मात्रा में फलने-फूलने का अवसर मिला। गणेश वर्मन (1512 ई.-1559 ई.) के कार्यकाल में यहाँ पर मुगल प्रभाव आया तथा गणेश वर्मन ने मुगल शैली पर आधारित तकनीक से गणेश गढ़ के किले का निर्माण कराया। प्रताप सिंह वर्मन (1559 ई.-1586 ई.) धार्मिक राजा था, जिसने पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया और नये मन्दिर बनवाये।

चम्बा चित्रशैली का आरम्भ राजा उदय सिंह (1690 ई.-1720 ई.) संरक्षण में हुआ। यद्यपि इससे पूर्व राजा पृथ्वी सिंह (1641 ई.-1664 ई.) राजा छतर सिंह (1664 ई.-1690 ई.) के चित्र मिलते हैं, परन्तु अनुमान लगाया जाता है कि ये बाद में बने क्योंकि राजा पृथ्वी सिंह (1641 ई.-1664 ई.) और उम्मेद सिंह (1748 ई.-1765 ई.) के चित्रों में पर्याप्त समानता है।³ राजा पृथ्वी सिंह शाहजहाँ का विश्वासपात्र था, उसने अनेक मन्दिर बनवाये। इनके समय में बरातमौर की कोठी का निर्माण हुआ जिसमें मुगल प्रभाव से लकड़ी में मूर्तियों को उकेरा गया। यही कार्य उम्मेद सिंह के समय में भी होता रहा।

छतर सिंह (1664 ई.-1690 ई.) ने छतरगढ़ नगर बसाया। राजा छतर सिंह के काल में पर्याप्त संख्या में चित्रों का निर्माण हुआ। राजा उग्रसिंह (1720 ई.-1734 ई.), दलेल सिंह (1735 ई.-1758 ई.) का काल कला को सुदृढ़ आधार देने में महत्वपूर्ण रहा। दलेल सिंह पहले तो मुगल शासन का बन्दी रहा, बाद में उसका प्रशंसक बन गया। इससे उसे मुगल कला को देखने और परखने का पर्याप्त अवसर मिला, जिससे चम्बा की कला और अधिक सुदृढ़ हो गयी। राजा उम्मेद सिंह (1748 ई.-1764 ई.) ने इस कला थाती को संभाला। इनका विवाह बसोहली की राजकुमारी से हुआ, जिसका प्रभाव कला पर पड़ा। इन्होंने चम्बा में अखण्ड चण्डी महल बनवाया और राजनगर में भी एक महल बनवाया। जसरोटा की राजकुमारी से भी इनका विवाह हुआ। उम्मेद सिंह लाहौर में तेरह साल तक मुगल शासन का बन्दी रहा।

उम्मेद सिंह का उत्तराधिकारी राजसिंह (1764 ई.-1794 ई.) था और वह काँगड़ा के विख्यात शासक और महान कला प्रेमी संसार चन्द का समकालीन रहा। 1765 ई. में पहाड़ी कला का सिद्ध चितेरा निक्का गुलेर से चम्बा आ गया था। राजा राजसिंह के समय में चम्बा शैली पनपी और अति सुन्दर चित्रों का निर्माण हुआ। राजा जीत सिंह (1794 ई.-1808 ई.) थी। राजा संसार चन्द के समकालीन थे, जो चम्बा शैली के संवर्धन में पर्याप्त रुचि लेते रहे। राजा चढ़त सिंह (1880 ई.-1944 ई.) ने कला परम्परा को आगे बढ़ाया तथा चम्बा शैली में लोक तत्वों की पुनः स्थापना होने लगी। चम्बा का महल जिसका निर्माण राजा उम्मेद सिंह के समय में प्रारम्भ हुआ, वह राजसिंह, जीत सिंह तथा चढ़त सिंह के समय में जाकर पूरा हुआ। इसमें से कुछ चित्र नेशनल म्यूजियम दिल्ली तथा कुछ राजकीय संग्रहालय शिमला में स्थानान्तरित किये गये हैं। अन्य पहाड़ी चित्र शैलियों की ही तरह चम्बा चित्र शैली में भी दो प्रकार की विशेषता नजर आती है, जिन्हें भूरी सिंह म्यूजियम में देख सकते हैं। एक ओर तो रूप चित्रों का निर्माण हुआ और दूसरी ओर विविध विषयों को लेकर सुन्दर

चित्रावलियाँ तैयार हुई, जिनमें ऋतु चित्रावलियाँ प्रमुख हैं। राजा चढ़त सिंह के बाद यह शैली दम तोड़ने लगती है।

चम्बा शैली भित्ति चित्र के प्राचीन अवशेष वहाँ के रंगमहल में अवस्थित थे। चम्बा राज्य के अन्तर्गत नगर के बाहर देवी कोठी मन्दिर तथा छत्राणी के शक्ति मन्दिर में भी भित्ति चित्र बने हैं। इसी प्रकार धर्मशाला के भित्ति चित्र अपनी कलात्मकता के कारण बहुत आकर्षण एवं सुन्दर थे, लेकिन संरक्षण के अभाव में ये अपनी आभा खोते चले गये और अनेक खरोचों आदि के कारण ये प्रायः विनष्ट हो चुके हैं। किन्तु अखन चण्डी के भित्ति चित्र विशेष परिस्थिति के कारण क्षय होने से बच गये। चम्बा में भित्ति चित्रण का कार्य लम्बे समय तक चलता रहा और अधिकांशतः 1780 ई. तक पूरे हुए।

चम्बा चित्रशैली में दो प्रकार के चित्र दृष्टिगत होते हैं। पहला व्यक्ति चित्र एवं दूसरा पौराणिक विषयों की चित्रावली। व्यक्ति चित्र में चम्बा के राजाओं के अतिरिक्त पड़ोसी राज्यों के शासकों के शीर्षक हैं, जो ज्यादातर एक चश्म बनाये गये हैं। भारतीय आख्यानों एवं कथाओं में 'अनिरुद्ध और ऊषा', 'कृष्ण-सुदामा' और 'कृष्ण एवं रूकमणी' के चित्रों ने महत्व प्राप्त किया है। धार्मिक विषयों में 'दुर्गा सप्तशती' तथा 'बाल्मीकी रामायण', 'लक्ष्मी नारायण', 'कमलासन देवी', 'गायत्री देवी', 'महेश्वरी देवी', 'देवी ब्रह्माणी' और 'देवी वैष्णवी' का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। वाल्मिकी आश्रम में लवकुश से सम्बन्धित चित्र चम्बा शैली में बनाये गये हैं। भित्ति चित्रों के विषय धार्मिक हैं, जैसे राधा और कृष्ण की प्रेम लीला, रामदरबार, शिव-पार्वती, यशोदा-कृष्ण, स्नान करती हुई गोपिकाएँ, दुर्गा सप्तशती, प्रणयाकृतियों, दर्पण में छवि देखना, हिरणों एवं पक्षियों को खिलाती हुई महिलाएँ, संगीत विभिन्न नायिकाओं का चित्रण आदि यहाँ के मुख्य विषय हैं।

चम्बा शैली के चित्रों में मानवाकृतियाँ स्वस्थ एवं लम्बी हैं। विशेष रूप से नारी आकृतियों का अंकन बड़ी चारुता के साथ किया गया है। ये आकृतियाँ अपनी भावाभिव्यक्ति, अपने अंग-भंगिमा एवं हस्त मुद्राओं के द्वारा प्रदर्शित करने में बड़ी सफल रही हैं। मुखमण्डल में माथे को ऊँचा तथा चिबुक को थोड़ा बड़ा एवं भारी दिखाया गया है। कर्णान्त तक खींची बड़ी आँखें इन चित्रों की अलग पहचान बनाती हैं। गहरे रंग से खींची गई रेखाएँ कोमल सशक्त एवं गतिशील हैं।

चम्बा शैली के चित्रों के शीतल रंग का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। नीले रंग की प्रधानता है। सुनहरे तथा रूपहले रंग का प्रयोग प्रायः किया गया है।

नारी आकृति को लहंगा, कंचुकी एवं पारदर्शी ओढ़नी के साथ सुसज्जित किया गया है। पुरुष आकृति का पहनावा धोती तथा उत्तरीय है। कहीं-कहीं मुगल पहनावे को भी अपनाया गया है।

प्रकृति का उत्कृष्ट चित्रण चम्बा शैली की प्रमुख विशेषता है। इस शैली में वर्षा, बादल, पर्वत, सरिता, वन-उपवन तथा वाटिकाओं का उत्कृष्ट अंकन हुआ है। पेड़-पौधों का अंकन विशिष्टता लिये हुए है। वृक्षों का अंकन हल्के पृष्ठभूमि पर गहरे रंग अलंकारिक ढंग से हुआ है। प्रकृति चित्रण यथास्थान किया है। गाय, हिरण, मोर तथा अन्य पशु-पक्षियों का अंकन कलात्मक रूप से किया गया है। स्थापत्य में मुगल प्रभाव है।⁴

चम्बा की सांस्कृतिक थाती बहुत प्राचीन है। चम्बा कला पर कांगड़ा शैली का गहरा प्रभाव पड़ा। संसारचन्द के पतन के पश्चात् कांगड़ा के कलाकार निश्चित रूप से चम्बा आये। चम्बा में दो चित्रकार वंश राज-संरक्षण में विशेष कार्य करते रहे। इन चित्रकारों का

एक वंश वंशीधर का था और दूसरा कृष्ण का था। वंशीधर के वंश में ईश्वर, रामदयाल, मगनू, दुर्गा, जवाहर, सोणू, मोतीराम, होशियार लाल तथा हीरालाल चित्रकारी का कार्य करते रहे।⁵

वास्तव में कहा जाता है कि चम्बा की घाटियों में कोई ऐसा आकर्षण जरूर है जो पर्यटकों एवं कला प्रेमियों को सहसा ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। रावी नदी से उठती हुई जलस्वर लहरी सभी को मंत्रमुग्ध कर देती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ आर. ए. अग्रवाल, कलाविलास
2. रंजना रानी, पहाड़ी चित्रकला में ऋतु सौन्दर्य
3. किशोरी लाल वैद्य, ओमचन्द हाण्डा पहाड़ी चित्रकला
4. डॉ श्यामबिहारी अग्रवाल, भारतीय चित्रकला का इतिहास
5. अनिवाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास

वैश्वीकरण की प्रक्रिया का राजनीतिक प्रभाव

• सिन्धु राय

सारांश- राजनीति शब्द का नाम आते ही हमारे सामने राजनीति के दो पक्ष-सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष नजर आने लगते हैं। आम व्यक्ति राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष से वाकिफ नहीं होता। उसके सामने राजनीति का विचार आते ही दिमाग में नक्शा उभरता है, उस धुआंधार राजनीति का जिसमें जुलूस, जलसों, नारेबाजी, बातूनी, भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, राजनीतिक दल, उसके आपसी झगड़े, दबाव समूह, झूठे राजनीतिक वादे, धोखाधड़ी इत्यादि के अतिरिक्त और कुछ नहीं। सरकार जनता के कल्याण के लिए है, नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा सरकार की अच्छाई और बुराई मापने का पैमाना है तथा सरकार समाज की सेवक है। ईसाई दार्शनिक सेंट अगस्टाइन और थामस इक्वीनास ने राज्य तथा चर्च के संबंधों का विवरण दिया। आधुनिक राजनीतिक चिंतन मेकियावेली, बोदां से शुरू होता है। हाब्स, लाक, रूसो, बेंथम, मिथ, हेगल, मार्क्स, बार्कर, मेकाइबर, लेनिन, स्तालिन, माओ ने क्रमबद्ध राजनीति का वर्तमान युग में विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया। इन्होंने राजनीति की एक अध्ययन के विषय के रूप में चर्चा की। कल्याणकारी राज्य के सिद्धांत ने राजनीति की पुरानी सीमाओं को तोड़कर नकारात्मक राज्य या पुलिस राज्य के सिद्धांत को मात देकर आज राजनीति को मजबूती प्रदान की है।

मुख्य शब्द- राजनीति, राजनीतिक चिंतन, कल्याणकारी राज्य, वैश्वीकरण

वैश्वीकरण की शुरूआत के साथ जिस उदारीकरण का शोर सुनाई पड़ रहा है-उससे कल्याणकारी राज्य का सिद्धांत संकट में आ गया है। उदारीकरण की अपरिहार्य परिणति निजीकरण बाजार अर्थप्रणाली एवं उपभोक्ता संस्कृति है और उदारीकरण का संचालन नकारात्मक या पुलिस राज्य में ही संभव है। वैश्वीकरण कोई नयी सोच नहीं है। मात्र इतना कि 20वीं सदी के अंतिम दशक में इसने नया अर्थ या चोला ग्रहण किया है। इसका मुख्य कारण सोवियत रूस के विघटन एवं शीतयुद्ध की समाप्ति के फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन में बदलाव से जुड़ा है। सिकन्दर से लेकर चंगेज खां और नेपोलियन तक ने पूरी दुनिया को एक प्रधान शासक के अधीन करने की कोशिश की थी। दौलत को पूँजी में बदलना विकास की एक विशेष अवस्था (पूँजीवादी अवस्था) में होता है। यही कारण है कि पूँजीवाद के आगमन और माल उत्पादन के साथ युद्ध की प्रगति ही बदल गई है। इस व्यवस्था में लूटी गई दौलत को पूँजी में बदला जा सकता था। इसे ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारत की लूटपाट में आए गुणात्मक परिवर्तन में देखा जा सकता है।

19वीं सदी का मध्य आते-आते परिस्थितियाँ गुणात्मक रूप से बदल गईं। उस समय तक पूँजीवाद विश्व व्यवस्था का रूप ग्रहण कर चुका था। दुनिया के सभी देश इस व्यवस्था के प्रभाव में आ चुके थे। इसके पहले अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध विदेश व्यापार के

- राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

रूप में होते थे। देशों के बीच सामान का विनिमय होता था।

इसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध की मुख्य विशेषता पूँजी के निर्यात की हो गई। विश्व व्यापार की राशि भी बड़ी तेजी से बढ़ी। दूसरे देशों में पूँजी निर्यात एवं सुरक्षित पूँजी निवेश हेतु, परिस्थिति निर्माण करने के लिए कुछ निश्चित आर्थिक एवं राजनीतिक कदम उठाने जरूरी थे। पूँजी निर्यात करने वाले देशों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपनिवेशवाद की स्थिति में भारी बदलाव आया। उपनिवेशों ने अर्थतंत्र को बदलकर ऐसा रूप-रंग दिया गया जो कि गुलाम बनाने वाले देशों के मालिकों के हित में हो। शुरू में पूँजीवाद ने सामंतशाही व्यवस्था को ध्वस्त किया। कालान्तर में उपनिवेशों के रूप में उसने राष्ट्रों को गुलाम बनाकर साम्राज्यवाद की शक्ति ग्रहण की। जिन देशों को गुलाम बनाया, वहाँ पर कमोबेश सामन्ती तत्वों एवं मूल्यों के साथ गठबंधन किया। इसके कारण बाद में विभिन्न देशों में आजादी की लड़ाई शुरू हुई। बड़े राष्ट्रों में ज्यादा से ज्यादा बाजार हथियाने और जनता का दमन करके गुलाम बनाने की प्रवृत्ति तेज हुई। साथ ही बड़े साम्राज्यवादी देशों में बाजार पर कब्जा जमाने के लिए दो विश्व युद्ध हुए। लेकिन दो विश्व युद्धों, फासीवाद की पराजय, बोल्शेविक क्रांति, सोवियत शिविर के उदय, उपनिवेशवाद की समाप्ति और भारत जैसे कई पुराने औपनिवेशिक देशों द्वारा अपने बाजार तथा संसाधनों को अपने घरेलू उद्योगों के लिए सुरक्षित रखने के प्रयास तथा शीत युद्ध ने वैश्वीकरण के मार्ग में रोड़ा अटकाया। इस अवधि में व्यापार बाधा तथा पूँजी की आवाजाही पर प्रतिबन्ध आम बात थी।

अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाह कमोबेश लगभग रूक-सा गया क्योंकि हर देश ने प्रतिबन्ध लगाया ताकि उसके देश का अर्थतंत्र वैश्विक मंदी के प्रभाव से बच जाए। ये प्रतिबन्ध दूसरे विश्व युद्ध के बाद भी कायम रहे क्योंकि मित्र राष्ट्र विनिमय दर को स्थिर रखना चाहते थे। बेटेन वुड्स समझौता इसी बात की पुष्टि करता है। बाद में वे अपने आर्थिक स्वास्थ्य लाभ हेतु व्यापारिक प्रतिबन्ध को कम करने पर राजी हुए और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु गैट को खड़ा कर दिया।

1970 के दशक के आरम्भिक वर्षों में बेटेन वुड्स व्यवस्था का अन्त हो गया क्योंकि अमेरिका अपनी मुद्रा के उस मूल्य को कायम नहीं रख पाया, जो इस संस्था के जन्म के समय तय किया गया था। न केवल डालर बल्कि अन्य परिवर्तनीय मुद्राओं को भी बाजार की कृपा पर छोड़ दिया। इसी ने वैश्विक पूँजी बाजार के जन्म का संकेत दिया। वैश्वीकरण अथवा विश्व के पैमाने पर माल एवं मुद्रा के बढ़े हुए प्रवाह के लिए दो शक्तियाँ हैं, पहली सूचना तकनीक, जिसके चलते संसार में लागत दर में कमी आती है तथा दूसरी उदारीकरण, जिसके कारण व्यापार प्रतिबन्ध तथा पूँजी प्रवाह पर रोक को खत्म कर दिया जाता है। विश्व व्यापार संगठन तथा एम.आई.जी.ए. के निर्माण ने इस दिशा में काफी योगदान दिया है। इस तरह वैश्वीकरण का यह वर्तमान उभार एक तरह से एक ऊँचाई पर पूर्व की प्रवृत्ति का पुनरावृत्ति है। चूँकि वैश्वीकरण साम्राज्यवाद का ही नया नाम है या यों कहें कि यह नया साम्राज्यवाद है। उदारीकरण, बाजार अर्थप्रणाली, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बाजार संगठन, जी-8 ये सभी नव-साम्राज्यवाद के टूल्स हैं, जो दुनिया के राष्ट्र-राज्य के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप कर रहे हैं और ये राज्य इनसे प्रभावित भी हो रहे हैं। इनके अनुरूप ये अपनी नीतियों का निर्माण भी कर रहे हैं।

20वीं शताब्दी की रूलिंग आइडियालाजी मार्क्सवाद को माना गया था। इसने उदारवादी विचारधारा पर अपनी सर्वोपरिता स्थापित की थी। इसके अतिरिक्त समाजवाद की

अन्य धाराएं भी, जैसे काल्पनिक समाजवाद, फेबियनवाद, श्रेणी समाजवाद, सिण्डिकलवाद, अराजकतावाद और जनतांत्रिक समाजवाद की विचारधाराएं भी 20वीं शताब्दी में जन्मी और विकसित हुई थीं और इनके प्रभाव में शोषण मुक्त समाज की स्थापना का सपना शोषित पीड़ित जनता ने देखा था।

प्रत्येक नागरिक को निशुल्क शिक्षा, पक्की नौकरी, निशुल्क चिकित्सा, सुरक्षित आवास गृहादि देना सुनिश्चित किया गया। इस नीति ने नागरिकों को सामाजिक दायित्व के प्रति अधिक जागरूक होने के बजाय आलसी और व्यक्तिवादी बनाया। सामाजिक दायित्व के प्रति जागरूक होने के बजाय वे अधिक स्वार्थी और आत्मकेंद्रित बनते गए। सोवियत व्यवस्था की कमजोरियों से लाभ उठाते हुए तथा अपने कुचक्रों के बल पर समाजवादी व्यवस्था के दुश्मन उसे धराशायी करने में सफल हुए। वह खंड-खंड हुई क्योंकि आर्थिक दृष्टि से विकासशील होने के बजाय उसमें जड़ता आने लगी थी।

आज दुनिया में शोर है-विश्व बाजार में उतरो, होड़ में कूदो, अपने बलबूते पर अपनी जगह बनाओ। आगे बढ़ो, नहीं कूदोगे तो वहीं बैठे रहोगे, बल्कि पिछड़ते जाओगे। कल-करखानों पर से, आयात-निर्यात पर से सरकारी अंकुश हटाओ, उद्योगों का निजीकरण करो, पूँजीवादी व्यवस्था को अबाध रूप से पनपने दो, इसी में तुम्हारी प्रगति है, इसी में तुम्हारा विस्तार है। यह देश को बेचना नहीं, देश को आत्मनिर्भर बनाना है। यही उदारवाद है। मतलब की उदारीकरण उद्योग और व्यापार पर से राज्य के नियंत्रण से मुक्ति का नाम है। यह उदारवाद का साधारणीकरण है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए निर्बाध दरवाजा खोलने का नाम है उदारीकरण।

विगत चार सौ सालों में उदारवाद ने कई रूप बदले। बहुत से विचार दिए तथा आधुनिक यूरोप के राजनीतिक दर्शन के तमाम सवाल उदारवाद से किसी-न-किसी रूप में जुड़े रहे। व्यक्तित्व का विकास, स्वतंत्रता, अधिकार, प्रजातंत्र आदि के जबरदस्त नारों तथा सामन्तशाही के खिलाफ जबरदस्त क्रांतियों का नेतृत्व करने वाले पूँजीपति वर्ग के दर्शन के रूप में उदारवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

अपने जन्म के काल से आज तक उदारवाद तीन चरणों से होकर गुजरा है। पहला चरण नकारात्मक उदारवाद का था, जिसमें उदारवादी व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा में विश्वास करते थे। उनका मानव की विवेकशीलता और अच्छाई में विश्वास था। मानव का मानवता के लिए कुछ प्राकृतिक अदेय अधिकारों-जीवन, स्वतंत्रता, सम्पत्ति के अधिकारों में विश्वास था। उनके अनुसार राज्य की उत्पत्ति अधिकारों की हिफाजत के उद्देश्य से, सामाजिक समझौते के द्वारा हुई है। सरकार तथा राज्य आवश्यक बुराई है और जो सरकार कम-से-कम शासन करे वह सर्वोत्तम है। मानव की स्वतंत्रता जीवन के हर क्षेत्र-राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक आदि में होनी चाहिए। स्वतंत्रता का अर्थ तमाम सत्ताओं से मुक्ति या नकारात्मक स्वतंत्रता माना गया, जो मात्र बंधनहीनता है, उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार तथा समझौते पर आधारित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था है, जिसमें राज्य की दखलंदाजी तथा नियंत्रण बिल्कुल न हो। यही उदारवाद जिसने उपरोक्त नीतियों के आधार पर अपनी विचार यात्रा शुरू की थी, वही विचार आज वैश्वीकरण के युग में फिर से सुनने और देखने को मिल रहा है।

जैसा कि हम जानते हैं पूँजीवाद की प्रगति ने एक नए आर्थिक वर्ग को जन्म दिया-सम्पत्तिहीन, कमजोर, मजदूर वर्ग, जिसके पास पूँजीवादी स्वतंत्र बाजार में बेचने के

लिए अपनी श्रमशक्ति के अलावा कुछ भी नहीं था। इस वर्ग की दुर्दशा भंयकर रूप में प्रकट हुई। मजदूर वर्ग के आर्थिक शोषण की वजह से उदारवाद चरमराने लगा। उसे दो चुनौतियों का सामना करना पड़ा, एक प्रजातंत्र की चुनौती का तथा दूसरा समाजवाद की चुनौती। परिणामतः उसने दोनों को अपने में मिलाने की कोशिश की। पुलिस राज्य कल्याणकारी राज्य में बदलने लगा, नकारात्मक उदारवाद सकारात्मक उदारवाद में परिणत हो गया। उदारवाद का यह दूसरा चरण है। कल्याणकारी या सकारात्मक उदारवाद का अर्थ है – एक ऐसा राज्य जो नागरिकों को विस्तृत सामाजिक सेवाएँ प्रदान करता है, उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है, आर्थिक समानता स्थापित करने की कोशिश करता है और जनकल्याण के साधन मुहैया करने का यत्न करता है, अर्थात् राज्य जनता के सेवक के रूप में काम करने का मुखौटा ओढ़ने का प्रयास करता विचारधारा के अंत नामक सिद्धान्त का जन्म फ्रांस के कुछ लेखकों ने दिया था। इन लेखकों में अधिकांश भूतपूर्व कम्युनिस्ट थे। उनकी प्रमुख स्थापना थी कि मार्क्सवादी विचारधारा का अन्त हो चुका है। विचारधारा के अन्त का सिद्धान्त मुख्यतः मार्क्सवादी विचारधारा के पूँजीवादी प्रचार के रूप में स्थापित हुआ। पहले इस सिद्धान्त को तमाम विचारधाराओं के अन्त के सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। किन्तु इन लेखकों के विचारों ने यह स्पष्ट कर दिया कि विचारधारा का अन्त हो गया है। इन लेखकों में से एक एम. एफ. ब्रिस की पुस्तक का नाम ही है—God is dead Marx is dead and I am not feeling too so well. अमेरिका के पूर्व विदेश मंत्री हेनरी किसिंजर ने विदेश नीति में विचारधारा के अन्त के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया और रूस तथा चीन में अमेरिका के विदेशी संबंधों को दृढ़ करने की चेष्टा की। पूर्व राष्ट्रपति कार्टर ने भी विचारधारा के अंत को अपनी नीतियों में मान्यता प्रदान की।

अधिनायकवादी तथा साम्यवादी योजनाबंदी के युगल संकट ने हमारे मैदान में मुकाबला करने वाली केवल एक ही विचार पद्धति छोड़ी है, जिसको राजनीतिक तथा वैश्विक प्रामाणिकता प्राप्त है। वह है उदार लोकतंत्र, वैयक्तिक स्वतंत्रता का विचार तथा लोक आत्मनिर्णय का अधिकार। उदारवाद और मार्क्सवाद के जानी दुश्मन मानवता विरोधी विचार का नाम है, फासीवाद या फासिज्म। धोखाधड़ी, अन्धविश्वास, फरेब, लुभावने नारों, व्यक्ति पूजा, शक्ति पूजा, जातिवाद, युद्धवाद, अध्यात्मवाद, विकासवाद, समाजवादी नारों, एकता, अनुशासन, कानून व्यवस्था, राष्ट्रवाद, निरंकुशवाद आदि को मिलाकर तैयार हुआ यह सिद्धान्त इंसान तथा इंसानियत के सबसे भंयकर दुश्मन के रूप में सामने आया। फासीवाद एक विशेष प्रकार की तानाशाही है। हरद्वय तानाशाही फासिज्म नहीं होती है। विश्व में प्रथम विश्व युद्ध प्रजातंत्र की सुरक्षा के लिए लड़ा गया था। लेकिन इसके बाद फासीवाद जैसे प्रजातंत्र विरोधी सिद्धान्त का उदय हुआ तथा इटली, जर्मनी, स्पेन, जापान, अर्जेंटीना आदि देशों में फासीवाद तानाशाही स्थापित हुई। फासीवाद ने प्रजातंत्र के सिद्धान्त का खुले शब्दों में विरोध किया तथा राज्य को सर्वशक्तिमान मानकर व्यक्ति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को राज्य के अधीन समझा।

दूसरे विश्व युद्ध की आग फासीवाद की युद्धवादी तथा साम्राज्यवादी नीतियों ने लगाई तथा करोड़ों लोगों को इस महायुद्ध में जान गंवानी पड़ी। हिटलर के जातिवाद ने साठ लाख यहूदियों की निर्मम हत्या की। करोड़ों इंसानों के खून से रंगा यह फासीवादी सिद्धान्त दुनिया के इंसानों द्वारा घृणा तथा भय की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि फासीवाद दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के साथ ही विश्व पटल से ओझल हो गया था लेकिन दुनिया के कई

देशों में फिर से वह नए-नए रूपों में फन फैलाने लगा है। भारत भी उससे अछूता नहीं। वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार अंतर्विरोधी होता है क्योंकि वैश्विकता में राष्ट्रीयता का क्या काम? किन्तु दोनों की मिलीभगत जगजाहिर है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जो था, उससे भिन्न है। पुराना राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद और उपनिवेशता विरोधी राष्ट्रवादी आन्दोलन था। यह राष्ट्रीय मुक्ति और स्वाधीनता का आन्दोलन था जिसका उद्देश्य था एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य की स्थापना।

लेकिन आज राष्ट्र और राष्ट्रवाद का अर्थ वह नहीं रह गया है। जो 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में था। इसके बाद दुनिया में जो राष्ट्रवादी आन्दोलन चले हैं वे आमतौर पर जनता को साम्राज्यवाद के विरुद्ध एकजुट करने के बजाय विभाजित करने वाले रहे हैं। कहीं यह विभाजन नस्ल के नाम पर होता है, कहीं भाषा के नाम पर तो कहीं धर्म या संप्रदाय के नाम पर। आज की दुनिया में जगह-जगह ऐसे आंदोलन चल रहे हैं, जिनमें ये तीनों तत्व घुले-मिले नजर आते हैं। अब ये राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलन नहीं बल्कि राष्ट्रीयता की मुक्ति अथवा नस्ल शुद्धि या जातीयता की शुद्धि के आंदोलन हैं।

प्रायः धर्म के नाम पर चलाया जाने वाला यह फंडामेंटलिज्म एक विशेष प्रकार की प्राचीन संस्कृति से अपनी वैधता प्राप्त करने का प्रयास करता है, इसलिए स्वयं को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहता है। इसी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से नए साम्राज्यवाद ने हाथ मिलाया है। इस तरह वैश्वीकरण का साम्राज्यवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विखंडनवाद दोनों घुल-मिलकर दुनिया के क्षितिज पर छा रहे हैं।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से मिलता-जुलता सिद्धांत आतंकवाद की विचारधारा है। आतंकवाद का सबसे पुराना चेहरा है धार्मिक आतंकवाद। मध्य-पूर्व और यूरोप की धरती ने ऐसे आतंकवाद को बहुत नजदीक से देखा है।

राजनीति विज्ञानियों के एक वर्ग के साथ आम जनता के एक अच्छे-खासे हिस्से को वैश्वीकरण से सम्प्रभुता की समाप्ति का खतरा नजर आने लगा है। ऐसी समझदारी विकसित हुई है कि वैश्वीकरण और राष्ट्र-राज्य एक-दूसरे के विपरीत हैं क्योंकि वैश्वीकरण पूँजी के कारोबार के क्षेत्र को राष्ट्रीय सरहदों के आर-पार खोल देता है, जबकि राष्ट्र-राज्य पूँजी संचय की विशिष्ट व्यवस्थाओं को छोटे-छोटे क्षेत्रों में बंद कर देते हैं। इस समझदारी के मुताबिक वैश्वीकरण की प्रगति होगी तो राष्ट्र-राज्य की अवनति अवश्य होगी।

राष्ट्र-राज्य और वैश्वीकरण की इस मान्यता को एक दूसरा खेमा स्वीकार नहीं करता। इसके विपरीत यह खेमा मानता है कि अपने वास्तविक रूप में मौजूद आज के पूँजीवाद के इतिहास में पूँजी के कारोबार के वैश्वीकरण के लिए राष्ट्र-राज्य बाधक नहीं बल्कि साधक रहे हैं और आज भी हैं। अर्थात् वैश्वीकरण के लिए राष्ट्र-राज्यों का होना जरूरी रहा है और आज भी जरूरी है। वैश्विक स्तर पर पूँजीवादी उत्पादन की परिस्थितियाँ बनी रहें और उन पर राजनीतिक नियंत्रण रखा जा सके, इसके लिए राष्ट्र-राज्य का रूप सदा आवश्यक रहा है और आज भी आवश्यक है।

इस खेमे के विचारकों की दूसरी प्रस्थापना यह है कि राष्ट्र-राज्य पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की ही बहुत सारी आध्यात्मिक जीवनियाँ हैं। सभी राज्यों का उदय, यानी सबसे पुराने और सबसे नए राष्ट्र राज्यों का उदय भी पूँजी के वैश्विक कारोबार के साथ किसी मूलभूत रूप में जुड़ा हुआ था। राष्ट्र-राज्य मूलतः व्यापारिक पूँजी औपनिवेशिक दौर में बने हैं। यूरोप की सबसे पुरानी औपनिवेशिक शक्तियाँ ब्रिटेन और फ्रांस ही नहीं बल्कि स्पेन, हालैण्ड,

पुर्तगाल भी अन्य अधिकतर शक्तियों के मुकाबले राज्य के रूप में पहले संघटित हुई। विश्व विजय के लिए निकलने में ऐसे संघटन मुख्य रूप से सहायक हुए। राज्यों के संघटन के परिणामस्वरूप राष्ट्र की चेतना का उदय हुआ। यदि औपनिवेशिक विजयों के लिए संसाधनों का भारी संघटन आवश्यक था तो औपनिवेशिक आधिपत्य के लिए होने वाली प्रतिद्वंद्विता के लिए प्रतिद्वंद्वी राज्यों का संघटन आवश्यक था।

इस खेमे की तीसरी प्रस्थापना है कि पूँजी के वैश्वीकरण और राष्ट्र-राज्यों के निर्माण की जुड़वाँ प्रक्रियाएँ समसामयिक होते हुए भी समक्रमिक नहीं हैं। इन दोनों की नियति एक ही है। दोनों के इस संरचनात्मक संबंध के पीछे तीन कारण हैं – पहला, पूँजी की प्रवृत्ति अपने कारोबारों में हमेशा ही वैश्विक होने की रही है लेकिन पूँजीपति वर्ग अपने उद्भव तथा परम संचयन की स्थितियों में हमेशा राष्ट्रीय रहे हैं। दूसरा, अपने-अपने देशों के राष्ट्रीय पूँजीपति वर्गों को राष्ट्रीय तथा वैश्विक दोनों स्तरों पर अपने कारोबारों को सुरक्षित और लाभदायक बनाने के लिए हमेशा अपने राष्ट्रीय राज्यों की शक्ति की आवश्यकता रही है। तीसरा, हालाँकि बड़े-बड़े पूँजीवादी फर्मों के कारोबारों में वैश्वीकरण की तरफ जाने की एक अन्तर्निहित प्रवृत्ति रही है, फिर भी उन फर्मों के कारोबार एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन पर निर्भर होते हैं। जमीनी तौर पर यह श्रम विभाजन वहाँ की राष्ट्रीय शासन व्यवस्थाओं द्वारा ही लागू किया जा सकता है, जहाँ ये कारोबार होते हैं। यह तत्व पुराने औपनिवेशिक साम्राज्यों के विघटन के बाद कमजोर नहीं, बल्कि बहुत ही ताकतवर हुआ है जब पार-राष्ट्रीय (ट्रांस-नेशनल) पूँजी के कारोबार सबसे अधिक वैश्वीकृत हुए हैं।

इस खेमे की वकालत के बावजूद पहला खेमा वैश्वीकरण को सम्प्रभुता के लिए खतरा मानता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. विश्वीकरण के युग में राजनीति, ले. डा. बी. के. पांडेय, भूमंडलीकरण : मिथक या यथार्थ, पृ. 215.
2. आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त, एम. पी. जैन, पृ. 210.
3. भूमंडलीकरण : विविध आयाम, ले. ब्रजकुमार पांडेय दीपक कुमार राय, पृ. 2
4. आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त, एम. पी. जैन, पृ. 210.
5. पूर्वोद्धृत, पृ. 217.
6. वही, पृ. 218.
7. ऊपरोद्धृत, पृ. 11.
8. आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त, एम. पी. जैन, पृ. 211.
9. भूमंडलीकरण - मिथक या यथार्थ, पृ. 217.
10. वही, पृ. 218.
11. वही, पृ. 220.
12. आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त, ले. एम. पी. जैन, पृ. 212.
13. वही, पृ. 213.
14. पूर्वोद्धृत, पृ. 219.
15. वही, पृ. 219.
16. विश्वीकरण के युग में राजनीति, पृ. 220

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में प्रगतिशील साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक योगदान

• सुनील कुमार

सारांश:-आठ अक्टूबर की तारीख इतिहास में धनपत राय श्रीवास्तव की पुण्यतिथि के तौर पर दर्ज है। कुछ लोगों को यह नाम कुछ अनजाना सा लग सकता है, लेकिन अगर कहें कि आठ अक्टूबर 1936 को मुंशी प्रेमचंद का निधन हुआ तो कलम के जादूगर को हर कोई पल में पहचान जाएगा। हिन्दी और उर्दू के महानतम लेखकों में शुमार मुंशी प्रेमचंद को शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उपन्यास सम्राट कहकर संबोधित किया था। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया जिसने पूरी सदी के साहित्य का मार्गदर्शन किया। साहित्य की यथार्थवादी परंपरा की नींव रखने वाले प्रेमचंद का लेखन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है, जो हिन्दी के विकास की यात्रा को संपूर्णता प्रदान करती है। और भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में भी इन रचनाओं की अहम भूमिका रही। मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी के लमही ग्राम में हुआ था। मुंशी प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय था। उनके पिता अजायबराय डाकखाने में एक क्लर्क थे। बचपन में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था तथा उसके बाद सौतेली मां के नियंत्रण में रहने के कारण उनका बचपन बहुत ही कष्ट में बीता। धनपत को बचपन से ही कहानी सुनने का बड़ा शौक था। इसी शौक ने इन्हें महान कहानीकार व उपन्यासकार बना दिया। प्रेमचंद की शिक्षा का प्रारंभ उर्दू से हुआ। पढ़ाई में तेज होने के कारण शीघ्र ही मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। कठोर परिश्रम के चलते इंटर और बी.ए. भी जल्दी ही पास कर लिया। स्नातक होने के बाद अल्पायु में ही प्रेमचंद का विवाह कर दिया गया। लेकिन मनोनुकूल पत्नी न होने के कारण बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह कर लिया।

मुख्य शब्द - क्रांतिकारी आंदोलन, दलित समस्या, नारी शोषण, विधवा विवाह, बाल विवाह, जमींदारी प्रथा

मुंशी प्रेमचंद बहुत ही आदर्शवादी व ईमानदार व्यक्ति थे। कुछ दिन शिक्षा विभाग में नौकरी की लेकिन बाद में गांधीजी के आह्वान पर नौकरी छोड़ दी और साहित्य सृजन में लग गये। एक प्रकार से प्रेमचंद आर्यसमाजी व विधवा विवाह के प्रबल समर्थक भी थे। 1910 में मुंशी प्रेमचंद की रचना सोजे वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे वतन की सभी प्रतियां जब्त कर ली गयीं। कलेक्टर ने उन्हें अब और आगे न लिखने के लिए कहा और कहा कि यदि दोबारा लिखा तो जेल भेज दिया जायेगा। इस समय तक धनपत राय मुंशी प्रेमचंद के नाम से लिखने लग गये थे।

मुंशी प्रेमचंद ने अपना प्रारम्भिक लेखन उर्दू में प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका में किया। उनकी पहली कहानी सरस्वती पत्रिका में 1915 के दिसम्बर अंक में 'सौत'

• व्याख्याता, बी. डी. कॉलेज, जलालपुर, सारण

प्रकाशित हुई और अंतिम कहानी 'कफन' नाम से। मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी में यथार्थवाद की शुरूआत की। भारतीय साहित्य का बहुत-सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या फिर नारी साहित्य उसकी जड़ें प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई पड़ती हैं। उपन्यासों की लोकप्रियता के चलते ही प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है। उनके प्रमुख उपन्यासों में सेवासदन, गोदान, गबन, कायाकल्प, रंगभूमि प्रेमाश्रय, कर्मभूमि आदि हैं। उनका कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं अपितु उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। उन्होंने कुछ महीने तक मर्यादा पत्रिका का संपादन किया और फिर लगभग छह साल तक माधुरी पत्रिका का संपादन किया। 1932 में उन्होंने अपनी मासिक पत्र हंस शुरू की। 1932 में जागरण नामक एक और साप्ताहिक पत्र निकाला। उनका प्रारम्भिक साहित्य उर्दू में ही मिलता है। उन्होंने लगभग तीन सौ कहानियां, लगभग एक दर्जन उपन्यास, व कई लेख लिखे। उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे व अनुवाद कार्य भी किया। गोदान उनकी कालजयी रचना है। उन्होंने बाल पुस्तकें भी लिखीं तथा सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की भी रचना की लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई वह अन्य विधाओं से प्राप्त नहीं हो सकी। उन्होंने समाज सुधार, देशप्रेम, स्वाधीनता संग्राम आदि से संबंधित कहानियां लिखीं। उनकी ऐतिहासिक व प्रेम कहानियां भी काफी लोकप्रिय हैं। प्रेमचंद हिंदी साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। हिंदी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की उन्होंने एक नयी परम्परा की शुरूआत की। उनकी लगभग सभी रचनाओं का हिंदी, अंग्रेजी में रूपांतर किया गया और चीनी, रूसी आदि विदेशी भाषाओं में कहानियां प्रकाशित हुईं। मरणोपरांत उनकी कहानियों का संग्रह मानसरोवर आठ खंडों में प्रकाशित हुआ। मुंशी प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों का डटकर विरोध किया है। मुंशी प्रेमचंद जनजीवन और मानव प्रकृति के पारखी थे। बाद में उनके सम्मान में डाक टिकट भी निकाला गया। उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। गोरखपुर में प्रेमचंद साहित्य संस्थान की स्थापना की गयी जहां भित्तिलेख है व उनकी प्रतिमा भी स्थापित है। भारतीय साहित्यकारों की सूची में मुंशी प्रेमचंद एक ऐसा नाम है जिसकी सभी रचनाएं भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का श्रेय रखती हैं।

बात सन् 1934 की है, जब दिल्ली में हिन्दी लेखकों का एक सम्मेलन आयोजित हुआ था, इस सम्मेलन में कथा साहित्य विभाग के अध्यक्ष के रूप में मुंशी प्रेमचंद का नाम मनोनित हुआ, ख्याति के उच्चतम शिखर पर आसीन प्रेमचंद को आयोजकों से कोई खास माँग नहीं थी। प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासकार जैनेन्द्र के मुताबिक-” अन्य सभी की भाँति ही वे आए और ठहरे-शयनागार में औरों की तरह, एक बिछावन लेकर।” शयनागार किसी अस्पताल के जनरल वार्ड की तरह प्रतीत होता था। मगर प्रेमचंद को जरा भी शिकायत नहीं थी। भोजनालय में पंक्ति में लगकर उन्होंने औरों की तरह भोजन माँगी तो ड्यूटी पर तैनात वॉलेन्टीयर ने उनसे टिकट दिखाने को कहा। मगर उनके पास भोजन का टिकट नहीं था। “कहाँ से मिलेगा” उन्होंने पूछा, यदि आप खरीदना चाहें तो उस खिड़की पर, अन्यथा कार्यालय से-प्रश्नकर्ता के परिचय से अनजान वॉलेन्टीयर ने जबाब दिया। प्रेमचंद चुपचाप खिड़की के पास गए, टिकट खरीदी और फिर भोजन किए। इसी तरह एक बार, उर्दू जगत के प्रसिद्ध शायर नशाद, प्रेमचंद से मिलने लखनऊ पहुँचे। साथ केवल मुहल्ले का पता था। वहाँ पहुँचकर पान की दुकानदार पर खड़े गंजी और धोती पहने किसाननुमा एक व्यक्ति से

उन्होंने पूछा- "क्या तुम मुझे प्रेमचंद जी के यहाँ ले जा सकते हैं?"

"अवश्य" कहकर उस व्यक्ति ने नशाद को एक अति साधारण घर पर लाया। वहाँ एक सीधे-साधे कमरे में बैठाकर वे अंदर गए। फिर एक कुर्ता चढ़ाकर निकले और मुस्कुराते हुए नशाद जी से बोले- "अब आप मुंशी प्रेमचंद से मिल रहे हैं।" ऐसे ही थे मुंशी प्रेमचंद, बिल्कुल सीधे-साधे। उन्हें देखकर लोग हैरत में पड़ जाते थे और सोचते थे कि क्या वाकई ये वही शख्स हैं जिसकी कलम से आज भी ब्रिटिश हुकूमत से डरती हैं? आज भी यही सवाल सबसे अहम् है कि साधारण से इस व्यक्ति ने जिस साहित्य की रचना की उसमें इतनी ताकत कहाँ से आई? चिन्तन, भाषा और शैली की जिस चोटी पर उनका साहित्य पहुँचा, वहाँ औरों के लिए, कम से कम हिन्दी साहित्य जगत् में किसी और के लिए पहुँचना क्यों नहीं संभव हुआ?

इन सवालों का उत्तर पाने के लिए प्रेमचंद युगीन सामाजिक हालात को एवं उन हालात में प्रेमचंद के जीवन संघर्षों को समझने की आवश्यकता है।

कोई भी चिन्तन, आदर्श अथवा साहित्य शाश्वत नहीं होता। आर्थिक व्यवस्था का ऊपरी ढाँचा होने के नाते ये सभी परिवर्तनशील हैं। इतिहास के एक विशेष आर्थिक आधार पर जो चिन्तन, आदर्श अथवा साहित्य, समाज विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, ऐतिहासिक कारणों से नई हालात एवं समाज व्यवस्था में, वही आदर्श, चिन्तन एवं साहित्य, अभूरी एवं पिछड़ी साबित होने लगती है। पुरानी सर्वोत्तम धारणाओं के क्रम में, नई धारणाओं तथा नए साहित्य का सृजन होता है। इसी तरह पुरानी सामंती आर्थिक बुनियाद पर आधारित आदर्श, नीति-नैतिकता एवं साहित्य के स्थान पर नवजागरण के चिन्तन तथा साहित्य का उन्मेष हुआ। यह परिवर्तन यूरोप में शुरू हुआ। बाद में भारत में भी राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिराव फूले जैसे महापुरुषों ने नवजागरण के परचम को बुलंद किया।

उन दिनों देश में अंग्रेजों का राज था। सन् 1857 कि विद्रोह के बाद भारत की बागडोर ब्रिटिश संसद के हाथों में चली गयी और उन्होंने शासन व्यवस्था तथा व्यापार की सहूलियत के लिए सड़के बनवाई, रेल पटरियाँ बिछवाई तथा डाक सेवा को बेहतर बनाया। परोक्ष रूप में ही सही मगर इससे भारतीयों को भी लाभ हुआ। विभिन्न प्रांतों, इलाकों तथा भाषा-भाषी लोगों की पहली बार एक दूसरे के स्पर्श में आने का मौका मिला। लोग पाश्चात्य चिन्तन के संस्पर्श में आए। कालक्रम में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के जरिये हमें इसके ठोस स्वरूप को देखने का मौका मिला। इस प्रकार, जब 31 जुलाई 1880 में प्रेमचंद का जन्म हुआ। तो देशभर में नई राष्ट्रीयता बोध का उदय हो रहा था। लमही गाँव, जहाँ प्रेमचंद का जन्म हुआ था, बनारस से चार मील की दूरी पर है। उनके पिता अजायबलाल उसी गाँव के डाकखाने में मुंशी थे। बहुत ही सीधा-सीधा परिवार था। प्रेमचंद के बचपन का नाम धनपत राय था। प्यार से उनके ताऊ उन्हें नवाबराय भी पुकारते थे। तो छोटे धनपतराय या नवाबराय और बच्चों की भाँति उर्दू और फारसी में अपनी तालीम हासिल करने लगे। बड़े नटखट थे, मित्रों के साथ खेतों से मटर या ईख चुराना, आम के बगीचों से आम तोड़ना, गुड्डी लूटना, आपस में कभी हाथापाई करना, किसी के नाम-कान को घायल भी कर देना, यह सब चलता रहता था। जाहिर है, धनपत राय ने बचपन का खूब आनंद उठाया अपनी बचपन की याद में उन्होंने आगे चलकर लिखा- "हाय बचपन, तेरी याद नहीं भूलती! वह कच्चा टूटा घर, वह पुआल का बिछौना, वह नंगे बदन, नंगे पाँव, खेतों में घूमना, आम के

पेड़ों पर चढ़ना सारी बातें आँखों के सामने घूम रही है।”

इसी तरह स्कूल जाते वक्त और कहीं भाग जाना, पढ़ने के बहाने मेला घूमने जाना, और आखिर क्यों न हो? ” मौलिवी साहब के यहाँ तो हाजिरी का रजिस्टर था नहीं और न गैरहाजिरी का जुर्माना देना पड़ता था। फिर डर किस बात का? कभी रेलवे स्टेशन की ओर निकल जाते और गाड़ियों की बहार देखते...।

पढ़ाई की किसे परवाह! उन्होंने कहा था- “ मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के हल्के-हल्के झोंके, फुटबाल की वह उछलकूद, कबड्डी के वह दौंव घात, वॉलीबॉल की वह तेजी फुरती मुझे अज्ञात रूप में खींच ले जाती है वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जानलेवा टाइम टेबिल आँखफोड़ पुस्तकें, किसी की याद में न रहती...” मात्र आठ वर्ष की आयु में उनकी माँ का देहांत हो गया। पिता ने दूसरी शादी की। नई माँ के साथ बालक धनपतराय का कुछ टूटा-टूटा सा संबंध था। हालाँकि धनपतराय न उनको कभी अश्रद्धा की नजरों से नहीं देखा। माता के स्नेह की कमी और विमाता के कटु व्यवहार से पीड़ित बालक के कोमल हृदय पर गहरी छाप पड़ी। इसका जिक्र उन्होंने एक रचना में की है-” बच्चों में प्यार की जो एक भूख होती है-दूध मिठाई और खिलौनों से भी ज्यादा मादक-जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती। मोहन की वह भूख संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराते वाली सारस की आवाजों की तरह वह सदैव उसके नसों में गूँजा करती थी।”

कहानियों के प्रति बालक धनपतराय का आकर्षण तभी से था जब वह अपनी दादी की गोंद में बैठा कहानियाँ सुना करता था, मगर जिस व्यक्ति ने पहली बार नन्हें बालक के मन में कहानियों की भूख पैदा की वह था डाकखाने का हरकारा, कजाकी। कजाकी की कहानियों ने बालक धनपतराय को कल्पनाशील बनाया। साथ ही साथ, नन्हे बालक को उसने यह भी विश्वास दिलाया कि झूठ और अन्याय पर अंततः सच्चाई और न्याय की ही जीत होती है। अतः बुराई के खिलाफ इंसान को लड़ना चाहिए। अच्छाई का हमेशा साथ देना चाहिए। उसकी याद में धनपतराय ने लिखा है “मेरी बाल स्मृतियों में कजाकी, एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुजर गए, लेकिन कजाकी की मूर्ति अभी तक आँखों के सामने नाच रही है.....कजाकी जात का पासी था, बड़ा ही हँसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिंदादिल। वह रोज शाम को डाक का थैला लेकर आता, रात भर रहता और सबेरे डाक लेकर चला जाता। शाम को फिर उधर से डाक लेकर आ जाता.....थैला रखते ही वह हम लोगों को किसी मैदान में लेकर निकल जाता, कभी हमारे साथ खेलता, कभी बिरहे गाकर सुनाता, कभी कहानियाँ सुनाता। उसे चोरी और डाके, मारपीट, भूत-प्रेत की सैकड़ों कहानियाँ याद थी। उसकी कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा होते थे जो अमीरों को लूटकर दीन दुखी प्राणियों का पालन करते थे।” इसी बीच धनपतराय के पिता का तबादला गोरखपुर में हो गया और धनपतराय को वहाँ जाकर रहना पड़ा।

कजाकी से तो साथ छूट गया परंतु कहानियों की जबरदस्त भूख जो उस व्यक्ति ने बालक धनपतराय के मन में पैदा कर दी, वह बनी रही। कहानियाँ पढ़ने की प्रबल इच्छा मन में उठती थी मगर मन मसोस कर रह जाते थे। तभी संयोगवश उनकी मुलाकात बुद्धिलाल नामक एक पुस्तक विक्रेता से हो गई। उनसे कुछ शर्तों पर पुस्तकें लेकर वे पढ़ा करते थे। उर्दू के सभी नामी लेखकों की रचनाओं को पढ़ना उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया था। इस समय का विवरण उनके अपने शब्दों में रखना ही ठीक होगा- “उस वक्त मेरी उम्र कोई तेरह साल रही

होगी। हिन्दी बिल्कुल न जानता था। उर्दू के उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शरार, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रूसवा, मौलवी मुहम्मद अली हरदोई निवासी, उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। उनकी रचनाएँ जहाँ मिल जाती, स्कूल की याद भूल जाती थी। और पुस्तक खत्म करके ही दम लेता था। उस जमाने में रोनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी.....ये सारी पुस्तकें मैंने इसी जमाने में पढ़ी.....रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था। मगर दुकान पर सारे दिन तो बैठ न सकता था, इसलिए उसकी दुकान से अंग्रेजी पुस्तकों की कुंजियाँ और नोट्स लेकर लड़कों के हाथों बेचा करता था। दो तीन वर्षों में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यासों का स्टॉक खत्म हो गया तो मैंने नवल किशोर प्रेस से निकले पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े और तिलस्मी होशरूबा के कई भाग भी पढ़े। इस वृहद् तिलस्मी ग्रंथ के सत्रह भाग अब तक निकल चुके थे और एक-एक सुपर रॉयल आकार के दो हजार पृष्ठों से कम न होगा।”

इन सैकड़ों उपन्यासों और कहानियों का जो सबसे बड़ा असर धनपतराय पर पड़ा वह यह कि उनके हाथ में कलम आ गयी। स्वयं कुछ लिखने के लिए बेहद प्रेरित हुए। उन्होंने इसके बारे में लिखा है- ‘वहीं मुझे लिखने का भी शौक हुआ था। कभी-कभी मेरे पिताजी हुक्का-पीते-पीते मेरी कोठरी में आ जाते और पूछते-नवाब कुछ लिख रहे हो? मैं शरमा कर गड़ जाता।”

मगर क्या लिखते थे धनपतराय? उल्लेखनीय है, कि उनकी पहली रचना न तो कोई कहानी थी, न उपन्यास और न ही कोई कविता। बल्कि वह एक प्रहसन, एक नाटक था, जिसमें उन्होंने अपने एक दूर के रिश्तेदार पर तीखा व्यंग्य किया था। इसमें उन्होंने उस व्यक्ति का एक औरत के साथ नाजायज रिश्ता और इसके फलस्वरूप उसकी अच्छी पिटाई का वर्णन किया था। जिसे सुनकर लोग खूब हंसे थे। मगर वह रिश्तेदार आग बबूला हो गए। प्रहसन के पन्नों को जला दिया गया। इस प्रकार वह नाटक कभी प्रकाशित नहीं हो सका, मगर इस घटना से बालक धनपतराय को कलम की ताकत का एहसास हो गया। यहाँ एक और बात गौरतलब है और महत्वपूर्ण भी। धनपतराय को बचपन से ही आम लोगों के जीवन से गहरी दिलचस्पी बनी रही। उनके साथ ही वे हँसते-बोलते उठते-बैठते थे। उनकी प्रखर कल्पना शक्ति नित-नियमित घटनेवाली जिन्दगी के वास्तविक उतार-चढ़ाव से सीधा संबंध रखती थी। इसलिए धनपतराय ने कजाकी से जो कहानियाँ छुटपन में सुनी थी, जो सैकड़ों उपन्यास इन वर्षों में पढ़े थे, उनमें से अधिकांश ही तिलस्मी और जादू के किस्सों से संबंधित थे, पर जब उन्होंने कलम हाथ में ली और खुद लिखने बैठे तो एक सामाजिक व्यंग्य ही लिखा, यह वर्ष 1893 था। कुछ विद्वानों के अनुसार अगले वर्ष यानी सन् 1894 में उन्होंने अपनी दूसरी रचना लिखी जिसका नाम ‘होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात’ था। यह भी एक सामाजिक प्रहसन ही था।

प्रेमचन्द का आविर्भाव- उधर पढ़ाई जारी थी। लेकिन सबकुछ आसान भी नहीं था। पैसों की कमी थी, कोई अच्छा कपड़ा या जूता भी नहीं था। पिताजी बीमार थे, धनपतराय की शादी भी हो चुकी थी। पत्नी भी ऐसी मिली जो हमेशा परेशान करती। बदसूरत तो थी ही और साथ की तुनुकमिजाजी और चिड़चिड़ी भी। धनपतराय के विवाह के साल भर बाद उनके पिता का देहांत हो गया। फलस्वरूप परिवार का सारा दामोदार उन्हीं पर आ गया। जीवन और कठिन हो गया। उन दिनों की तकलीफों की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है, उस समय मैं नवें दरजें में पढ़ता था। घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थी, उनके दो बालक थे, और आमदनी एक

पैसें की नहीं। घर में जो कुछ लेई पूँजी थी, वह पिताजी की छः माह की बीमारी और क्रिया कर्म में खर्च हो चुका था। और मुझे अरमान था वकील बनने का और बी.ए. पास करने का। नौकरी उस जमाने में इतनी ही दुष्प्राय थी, जितनी अब है। दौड़-धूप करके शायद दस बारह की कोई जगह पा जाता, पर यहाँ तो आगे पढ़ने की धुन थी। पाँव में लोहे की नहीं, अष्टध धातु की बेड़ियाँ थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर। पाँव में जूते न थे। देह पर साबित कपड़े न थे। महंगी अलग-दस सेर के जौ थे। स्कूल में साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्वींस कॉलेज में पढ़ता था। हेडमास्टर ने फीस माँफ कर दी थी। इम्तहान सिर पर था और मैं बाँस के फाटक पर एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचता था। पढ़ाकर छः बजे छुट्टी पाता। वहाँ से मेरा घर देहात में पाँच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता और प्रातः काल आठ ही बजे फिर घर से चलना पड़ता था, सही वक्त पर स्कूल न पहुँचता। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता, फिर भी हिम्मत बाँधे हुए था।

ट्यूशन से तीन रुपये वे घर भेजते थे और दो रूपयों से अपना काम चलाते थे। इसी तरह उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा भी पास कर ली। मगर जिस स्कूल में वे पढ़ते थे वहाँ और पढ़ना उनके लिए मुमकिन नहीं हो सका। हिन्दू कॉलेज में दाखिला लेने की उन्होंने कोशिश की, मगर गणित में कमजोर होने की वजह से वे असफल रहे। इस विषय में कमजोरी के कारण यहाँ वर्षों तक वे इंटरमीडियट की परीक्षा पास नहीं कर सके। इस बीच उनकी पत्नी भी उन्हें छोड़कर चली गयी। फिर वह कभी वापस नहीं आई।

गणित सुधारने के मकसद से धनपतराय पुस्तकालय जाने लगे। मगर वहाँ जाकर भी वे उपन्यास ही पढ़ते थे। इसी दौरान उन्होंने पंडित रतन नाथ सरशार का फरमान-ए-आजाद, देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता संतति जैसी किताबों का तथा बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यासों के उर्दू रूपान्तरों को पढ़ा। उर्दू व हिन्दी उपन्यासों में तिलस्म के अलावा शायद ही कुछ था। मगर बंकिमबाबू की किताबों में देशप्रेम की भावना मौजूद थी। खासतौर पर, उनकी पुस्तक आनन्दमठ में तो यह भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। इसे पढ़ने वालों में स्वतः स्फूर्त एक लहर दौड़ जाती है। उसमें जो गीत था 'वंदे मातरम्' वह भी कालक्रम में आजादी आंदोलन का मंत्र बन गया। एक तरह से देखा जाय तो भारत में राष्ट्रीयता-बोध को जगाने में बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा स्वामी विवेकानन्द की बहुत बड़ी भूमिका रही। यह और बात थी कि उनका राष्ट्रवाद धार्मिक भावनाओं से प्रेरित था। मगर निःसंदेह इन दोनों शक्तियों ने ही इन देश के अवाम को जगाया। सारी कॉम अंगड़ाइयाँ लेने लगी थी।

धनपतराय देश में इन बदलावों से भला कैसे अछूता रह सकते थे। स्वामी विवेकानन्द के तेजस्वी व्यक्तित्व तथा बंकिमचंद्र की शक्तिशाली लेखनी ने उन्हें बेहद प्रभावित किया। बाद में उन्होंने अपने एक उपन्यास, 'वरदान' (जलवा-ए-ईसार) में उसके मुख्य नायक बालाजी (असली नाम प्रताप) के चरित्र को स्वामी विवेकानंद से मिलता जुलता बनाया है। हालांकि इस उपन्यास में घटनाएँ और पात्र अनेक हैं तथा वे लेखक के अन्य उपन्यासों की भाँति स्वाभाविक तौर पर विकसीत रूप में उभर नहीं पाते, फिर भी उसमें झंकारित देशप्रेम और समाजसेवा की भावनाएँ काफी स्पष्ट और सशक्त हैं। एक और वजह से भी यह उपन्यास महत्वपूर्ण है। विद्वानों का मानना है कि यही पहला उपन्यास है जिसमें लेखक ने देहाती जीवन को उसकी संपूर्णता में चित्रित करने का प्रयास किया है।

‘वरदान’ उपन्यास का आरंभ भी कुछ हद तक ‘आनंदमठ’ के आरंभ से मिलता जुलता है। प्रबल संभावना है कि धनपतराय को देशप्रेम से ओत-प्रोत साहित्य की रचना करने की पहली प्रेरणा बंकिमचन्द्र चटर्जी से ही मिली होगी। उधर जिन्दगी कठिन से कठिनतर होती जा रही थी। दो रूपये में महीने भर का खर्च चलाना नामुमकिन सा जान पड़ता था। वे बराबर नौकरी की टोह में रहते थे, मगर उन्हें हमेशा ही हताश होना पड़ता था। हालत इस कदर बिगड़ गयी कि मजबूरन अपनी पाठ्य पुस्तकों को बेचने के लिए वे तैयार हो गए। एक रोज जब वे गणित की एक पुस्तक बेचने गए, तब दुकान पर चुनार के स्कूल के हेहमास्टर से मुलाकात हो गयी। वे अपने स्कूल के लिए एक शिक्षक खोज रहे थे। उन्होंने धनपतराय को अठारह रूपये महीने पर शिक्षक रख लिया। धनपतराय इस नौकरी से काफी प्रसन्न थे, मगर उनकी यह खुशी अधिक दिनों तक टिक न सकी। शिक्षकों के बीच अन्दरूनी कलहों को वे सह न सके। पुरस्कार स्वरूप उन्हें बरखास्तगी ही मिली। मगर इसी बीच उनके अंदर अन्याय के खिलाफ प्रतिवाद करने की मानसिकता का परिचय उसी दौरान की एक घटना से मिलता है। एक बार उनके स्कूल और आर्मी टीम के बीच फुटबाल का मैच हो रहा था। संयोजक आर्मी की टीम हार गयी। गुस्से में किसी साहब ने एक भारतीय लड़के को लात मार दी। धनपतराय को बेहद गुस्सा आया। उसकी यह मजाल ! फौरन स्कूल के लड़कों को इकट्ठा कर वे आर्मी टीम के साथ भीड़ गए और सबकी जमकर पिटाई कर दी। लोग धनपतराय को नाजुक-दिल और किताबी कीड़ा समझते थे, मगर उनकी इस मूर्ति ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया। अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ उनके मन में नफरत भरी हुई थी और मौका पाते ही वे इसे साबित करने में पीछे नहीं हटते थे। उनकी एक कहानी है ‘इस्तीफा’। कहानी में कमजोर बदनवाने एक दफ्तर के बाबू का एक अंग्रेज अफसर से पाला पड़ जाता है। अंग्रेज अफसर एक रोज उसे अपने बंगले पर बुलाकर गाली-गलौज करता है। पहले तो बाबू दब जाते हैं। मगर बाद में उनकी पत्नी उनके सुप्त मर्यादा-बोधा को जगाती है। वे डंडा लेकर साहब के बंगले पर पहुँचते हैं और उनकी अच्छी तरह खबर लेते हैं। अपने स्कूल में जब किसी शिक्षक पर गलत इल्जाम लगाए गए, तब धनपतराय ने इसका विरोध किया। तलवार की चोट दोनों पर गिरी। धनपतराय को भी अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

डॉ. इन्द्रनाथ मदन के मुताबिक धनपतराय ने अपना पहला उपन्यास ‘अस्मर-ए-मअविद’ (मंदिर का रहस्य) सन् 1898 में ही लिखा था। यहाँ उल्लेखनीय है कि इस दौरान स्वामी विवेकानंद तथा बंकिमचन्द्र चटर्जी के राष्ट्रीयता बोध से प्रभावित होने के साथ-साथ वे उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलन (जैसे ब्रम्हसमाज और आर्यसमाज) जो खासतौर पर हिन्दू पोंगापंथी और ब्राम्हणवादी के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे। सवर्ण लोग, खासतौर पर ब्राह्मणों के दबदबे को उन्होंने देखा था। धर्म की आड़ में ये लोग तथाकथित पिछड़े वर्गों को अपनी जूती तले रखने की कोशिश करते थे। यह भारत के ग्रामीण जीवन का एक स्वाभाविक चित्र था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

- जमाना पत्रिका
- सरस्वती पत्रिका
- सेवासदन
- गोदान

- गबन
- कायाकल्प
- रंगभूमि प्रेमाश्रय
- कर्मभूमि

ज्ञान की महत्ता और डॉ. आंबेडकर

• कुमार विपुल

सारांश : भारतीय समाज वर्ण और जातियों में विभाजित रहा है। इस श्रेणीबद्धता की ईजाद ज्ञान की विशेष ताकत के बल पर ही हुई। हम जानते हैं कि वर्ण-जाति कोई यथार्थ नहीं, बल्कि सत्ता की निर्मिति है। सत्ता ने इसे यथार्थ बनाकर पेश किया है। कोई भी चेतनशील मनुष्य इस सवाल से न टकराए, इसलिए जातियों में उपजातियां और उपजातियों में भी उपजातियां गढ़ी गईं। केवल ज्ञान ही सत्ता की इस निर्मिति को तोड़ सकता है।

मुख्य शब्द- वर्ण, जाति, ज्ञान, सत्ता, संवाद

भारत के इतिहास का ईमानदारी से किया गया अध्ययन हमें बताता है कि यहाँ आबादी के एक बड़े हिस्से को सदियों तक ज्ञान की छाया से भी वंचित रखा गया और इस प्रक्रिया में उसे पूरी तरह से हाशिए पर धकेल दिया गया। वर्ण-जाति कोई यथार्थ नहीं, बल्कि सत्ता की निर्मिति है। सत्ता ने इसे यथार्थ बनाकर पेश किया है। कोई भी चेतनशील मनुष्य इस सवाल से न टकराए, इसलिए जातियों में उपजातियां और उपजातियों में भी उपजातियां गढ़ी गईं। केवल ज्ञान ही सत्ता की इस निर्मिति को तोड़ सकता है। बकौल मिशेल फूको, “हर दौर में शक्ति-तंत्र एक विशेष ज्ञान व्यवस्था को रचता है। इसे सार्वभौमिक बनाकर पेश किया जाता है। ज्ञान की बुनियादी भूमिका ही यह है कि वह मनुष्यों को ताकत के भीतर समाहित कर दे।”¹

यह जिम्मेदारी बुद्धिजीवियों की है कि वे उत्पीड़ित जनता से संवाद कायम कर उसमें विभिन्न माध्यमों से चेतना का संचार करें। बुद्धिजीवियों के निर्माण के सवाल से टकराते हुए ‘ग्राम्सी’ कहते हैं, “हर सामाजिक समूह आर्थिक उत्पादन के संसार में किसी अनिवार्य भूमिका के भौतिक धरातल पर अस्तित्व में आता है। वह अपने सान्निध्य में जैविक रूप से एक या अधिक किस्म के बुद्धिजीवियों को जन्म देता है। ये तबके अपने जन्मदाता समूहों को समरसता प्रदान करते हैं। साथ ही वे इन समूहों को समरसता तथा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी गतिविधियों की चेतना प्रदान करते हैं।”² आधुनिक काल में ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फूले के प्रयासों में शूद्र-अति शूद्र जनता के लिए स्कूलों की शुरुआत हुई। फुले-दंपति ने लड़कियों के लिए भी स्कूल खोला। फुले ने ज्ञान की ताकत और उसके अभाव में शूद्रों के पतन का जिक्र करते हुए कहा, “विद्या के नही होने से बुद्धि नहीं, बुद्धि के न होने से नैतिकता न रही, नैतिकता न होने से गतिमानता न आई, गतिमानता के न होने से धन-दौलत न मिली, धन-दौलत के न होने से शूद्रों का पतन हुआ। इतना अनर्थ एक अविद्या से हुआ।”³

बहरहाल ज्ञान के लिए फुले-दंपति द्वारा शुरू किए गए आंदोलन की बागडोर आगे चलकर डॉ. आंबेडकर ने संभाली। डॉ. आम्बेडकर एक प्रखर बुद्धिजीवी थे। उन्होंने

• ग्राम-बरियारपुर पश्चिमी, पो. ताराबरियारपर, भाया-मैघौल, जिला-बेगूसराय (बिहार), पिन-848202

अमेरिका तथा लंदन से उच्च शिक्षा प्राप्त की। वे गौतम बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले को अपना गुरु मानते थे। उन्होंने ज्ञान की ताकत को बेहतर तरीके से समझा। वे अच्छी तरह जानते थे कि दलितों सहित तमाम उत्पीड़ितों के जीवन में बदलाव केवल शिक्षा की प्राप्ति से ही आ सकता है। इस तथ्य को समझते हुए डॉ. आम्बेडकर ने अपने पाक्षिक 'मूकनायक' में लिखा, "अज्ञानी लोगों से कुछ भी करवाया जा सकता है।" डॉ. आम्बेडकर ने सर्वप्रथम दलित वर्ग की समस्या को ठीक-ठीक समझते हुए उसे 'राजनीतिक समस्या' कहा। अपने गहन अध्ययन में उन्होंने जाना कि "सत्ता व ज्ञान अनुभव अभाव के कारण ही ब्राह्मणेतर जातियाँ पिछड़ी रही व उनकी तरक्की नहीं हुई, यह निर्विवाद है।" इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि, "ब्राह्मणवाद, ब्राह्मणों के ज्ञान पर नहीं, बल्कि शूद्रों के अज्ञान पर टिका है।"

विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद से ही डॉ. आम्बेडकर दलितों-उत्पीड़ितों को संगठित करने में लग गए। उन्होंने नारा दिया "शिक्षित बनों, संगठित रहो, संघर्ष करो।"⁵ डॉ. आम्बेडकर ने पहले से चली आ रही दलित पत्रकारिता को मजबूती प्रदान की। उन्होंने 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'समता', 'जनता' और 'प्रबुद्ध भारत' इन पांच समाचार पत्रों की शुरुआत की। 1946 में उन्होंने 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' की नींव रखी। इसके तहत 1946 में बंबई में 'सिद्धार्थ कॉलेज' और 1951 में औरंगाबाद में 'मिलिंद कॉलेज' की स्थापना की। इन संस्थानों के जरिये दलितों को शिक्षित एवं उनके जीवन में बेहतरी लाने के प्रयास किए गए।

डॉ. आम्बेडकर ने लगातार अध्ययन किया। अमेरिका और लंदन में अपने अध्ययन के दिनों में वे अक्सर पुरानी किताबों की दुकान के आस-पास भटकते रहते। इस बारे में डॉ. आम्बेडकर के जीवनी लेखक धनंजय कीर लिखते हैं, "ग्रंथ खरीदने की आम्बेडकर की भूख कम होने के बदले बढ़ती जा रही थी। समय मिलने पर वे पुराने ग्रंथों की दुकानों में भटकते रहते थे। पेट काटकर ग्रंथ खरीदने की धुन से लगभग दो हजार पुराने ग्रंथों का संग्रह उनके पास हो गया।"⁶ पुस्तकों से अपने लगाव के विषयों में वे कहा करते थे, "मेरे जैसे व्यक्ति को जिसे समाज ने बहिष्कृत कर दिया, उसे इन पुस्तकों ने अपने हृदय में स्थान दिया है।"⁷ डॉ. आम्बेडकर ने हमेशा दलितों-महिलाओं को शिक्षा के लिए प्रेरित किया।

उनका कहना था कि, "शिक्षा सभी को मिलनी चाहिए।" विभिन्न कॉलेजों में फीस और शिक्षा की असमानता पर उन्होंने कहा, "महोदय! मेरा निवेदन है कि यह शिक्षा का व्यवसायीकरण है। शिक्षा तो एक ऐसी चीज है, जो कि सबको मिलनी चाहिए। शिक्षा विभाग ऐसा नहीं है, जो इस आधार पर चलाया जाए कि जितना वह खर्च करता है, उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाए। शिक्षा को सभी संभव उपायों से व्यापक रूप में सस्ता बनाया जाना चाहिए।"⁸

भारत में दलितों के साथ ही स्त्रियों को भी ज्ञान से वंचित रखा गया था। सरस्वती और लक्ष्मी के देश में हजारों साल से अनपढ़ बनाकर रखी गई स्त्रियों को आधुनिक काल में एक शूद्र महिला (सावित्रीबाई फुले) ने ज्ञान का मार्ग दिखाया। डॉ. आम्बेडकर ने महिलाओं की शिक्षा पर भी खूब जोर दिया। उनका साफ कहना था कि, "बेटों के समान ही अपनी बेटियों को भी लिखाया-पढ़ाया जाए, तो हमारा विकास तीव्र गति से हो सकता है, यह निश्चित है।"⁹ महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए उन्होंने हिन्दू कोड बिल भी पेश किया था और इसके पास ना हो पाने की स्थिति में उन्होंने इस्तीफा दे दिया था। डॉ. आम्बेडकर जहाँ भी रहे दलितों-उत्पीड़ितों को हित उनके लिए सर्वोपरि रहा। एक आंदोलनकर्ता,

पत्रकार, प्राध्यापक, वकील, श्रम मंत्री, संविधान सभा तथा कानून मंत्री आदि हर रूप में उन्होंने 'निचली जातियों की शिक्षा और उनके जीवन की बेहतरी के लिए संघर्ष किया। उनका कहना था, "अनिवार्यतः अस्पृश्यों को क्या प्रयास करने चाहिए। दो बातों के लिए उन्हें प्रयास करना ही होगा और वे हैं शिक्षा और ज्ञान का प्रसार।"¹⁰

वे बेहतर तरीके से समझते थे कि विज्ञान और तकनीकी शिक्षा 'निचली जातियों' के विकास में अधिक सहायक होगी। एक बुद्धिजीवी होने के नाते वे बुद्धिजीवी वर्ग के कर्तव्य और ताकत को ठीक-ठीक समझते थे। बुद्धिजीवी वर्ग पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा था, "बुद्धिजीवी वर्ग वह है, जो दूरदर्शी होता है, सलाह दे सकता है और नेतृत्व प्रदान कर सकता है। किसी भी देश की अधिकांश जनता विचारशील एवं क्रियाशील जीवन व्यतीत नहीं करती। ऐसे लोग प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग का अनुकरण एवं अनुगमन करते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी देश का संपूर्ण भविष्य उसके बुद्धिजीवी वर्ग पर निर्भर होता है।"¹¹

दूसरी तरफ जो भी गैर दलित बुद्धिजीवी दलित तबके से सहानुभूति रखते हैं, वे प्रायः साहित्य, समाज और राजनीति इत्यादि मामलों पर दलितों को सीख देते हुए मिल जाते हैं, मैं बड़ी साफगोई से ऐसे बुद्धिजीवियों से आग्रह करूंगा कि वे दलित समाज को सीख देने के बजाय गैर दलित समाज को ईमानदारी से संबोधित करें। वे अपनी पुरानी नस्लों से कहें कि वे जाति-लिंग की झूठी शान में जीना बंद करें, इसके साथ ही नई पीढ़ी को बताएं कि कैसे वर्ण-जाति-व्यवस्था कोई दैवी या अमूर्त संस्था नहीं है, बल्कि इसे 'हमारे पुरखों ने अपने विशुद्ध मुनाफे के लिए गढ़ा था और यह भी आरक्षण कोई भीख नहीं, गरीबी मिटाने का कोई सरकारी औजार नहीं, अपितु दलितों का हक है और जब तक सामाजिक भेदभाव है, तब तक यह जारी रहेगा। उन्हें समझना और समझाना ही होगा कि वर्ण-जाति से केवल दलितों का शोषण ही नहीं हुआ है, बल्कि सारे समाज का विकास रूका है। चुनांजे यह पूरी मानवता के हक में है कि इसे मिलजुलकर खत्म किया जाए। यह केवल दलितों की जिम्मेदारी नहीं है कि वे वर्ण-जाति व्यवस्था से लड़ें, बल्कि इस मोर्चे पर गैर दलित समुदाय के खुद आगे आना चाहिए। यदि आजादी के इतने सालों में उनका जरा भी 'हृदय परिवर्तन' हुआ है तो ! क्योंकि यही समय का तकाजा है और इसी से आगे का रास्ता बनता है।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. सं. विजय कुमार, अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृ.-136, दूसरा संस्करण, 2010
2. अंटोनियो ग्रामसी, सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार, अनुवाद-कृष्णकांत मिश्र, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, पृ.102, प्रथम हिंदी संस्करण, 2002
3. संपादक : एल.जी.मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, खंड, राधाकृष्ण प्रकाशनल, नई दिल्ली, पृ.289, संस्करण 2009
4. संपादक : डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, मूकनायक, गौतम बुद्ध सेंटर, दिल्ली, पृ. 25, प्रथम संस्करण, 2008
5. वही
6. धनंजय कीर, बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर, अनुवाद, गनाजनन सुर्वे, पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 31, संस्करण, 2011
7. मेहनदास नैमिशराय, महानायक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर, धम्म ज्योति चैरिटेबल ट्रस्ट,

दिल्ली, पृ.-162, तीसरा संस्करण, 2012

8. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड-3, डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
9. वसंत मून, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, अनुवाद प्रशांत पांडे, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृ. 9, पहला संस्करण 1991
10. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खण्ड-10, पृ. 328
11. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खण्ड-01, पृ. 94-95

भूमंडलीकरण तथा कल्याणकारी राज्य की भूमिका

• सिन्धु राय

सारांश- भारतीय संविधान की प्रस्तावना में रेखांकित किया गया है कि देश की जनता अपने को एक सार्वभौम जनतांत्रिक गणतन्त्र के रूप में इसलिए संगठित कर रही है कि वह अन्य लक्ष्यों के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त कर सके। इतिहास गवाह है कि सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष बहुत ही पुराना है। हमारे देश में बौद्ध धर्म, भक्ति आन्दोलन और आर्य समाज के उदय के पीछे सामाजिक न्याय की भावना काम कर रही थी। हमारा पूरा राष्ट्रीय आन्दोलन अन्य लक्ष्यों के साथ ही सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहा। जाति व्यवस्था, छूत-अछूत, ऊँच-नीच आदि के विरुद्ध संघर्ष अब भी समाप्त नहीं हुआ है संसद और विधान मंडलों से लेकर नौकरियों में आरक्षण सामाजिक न्याय की दिशा में ही कदम बढ़ा रहे हैं। वर्तमान भूमंडलीकरण इसमें भारी रुकावट है। कैसद्य इसका उत्तर हेनरी किसिंगर, 1999 को दिए गए, अपने भाषण में साफ किया। उनके अनुसार “भूमंडलीकरण संयुक्त राज्य के अधिपत्य का ही पार्यावाची है” बिना लाग-लपेट के उन्होंने कहा कि जिस रास्ते पर अमीरीका चल रहा है उसे ही दुनिया के अन्य देशों को अपनाना चाहिए। अमकरीका अनुसरण ही उन्हें अपनी मुक्ति की ओर ले जायेगा।

मुख्य शब्द- भूमंडलीकरण, कल्याणकारी राज्य, नवउदारवाद

वर्तमान भूमंडलीकरण का वैचारिक आधार बाजार रूढ़िवाद या नवउदारवाद की सभी प्रक्रियाओं का संचालन और विनियमन बाजार की शक्तियों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। अगर ऐसा होता है तो भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति रीगन के शब्दों में ‘बाजार का जादू’ अपना कमाल दिखाएगा। उपर्युक्त धारणा कोई नई नहीं है। उसका जन्म आधुनिक औद्योगिक पूँजीवाद के अठारहवीं शताब्दी में आने के साथ ही हुआ। उसके वैचारिक पिता एडम स्मिथ ने अपनी प्रमुख कृति द वेल्थ आफ नेशंस में रेखांकित किया कि राज्य को अपनी गतिविधियाँ सिर्फ तीन क्षेत्रों तथा बाहरी दुश्मनों से बचाव, आंतरिक कानून और व्यवस्था बनाए रखने और सड़क, नहर, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाएँ प्रदान करने तक ही सीमित रखनी चाहिए। इन सेवाओं का उपभोग तो सब करते हैं किन्तु कोई भी एक व्यक्ति या समूह उन्हें पूर्णतया सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता। सिर्फ उन्हीं तीन गतिविधियों के लिए अपेक्षित धन जुटाने के उद्देश्य से कर लगाए जाने चाहिए। एडम स्मिथ का मानना था कि यदि बाजार तंत्र बेरोकटोक काम करे तो अर्थव्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहेगी और उसमें कोई उतार चढ़ाव नहीं आएगा। कहना न होगा कि इस मान्यता के अनुसार राज्य को गरीब के हित, मजदूर के अधिकार की रक्षा और सामाजिक न्याय से प्रेरित होकर अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करने से दूर रहना चाहिए।

उन्नीसवीं शताब्दी में मजदूरों ने ब्रिटेन तथा अन्यत्र अपने अधिकारों की रक्षा के

- राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

लिए शक्तिशाली आन्दोलन चलाए जिसने मजबूर होकर राज्य के हितों की रक्षा के लिए कानून बनाने पड़े। ये कानून काम के घंटों, बाल और नारी श्रम, कारखानों में सुरक्षा आदि से जुड़े थे। फिर भी एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित बाजार सम्बन्धी रूढ़िवादिता चलती रही। इन रूढ़िवादियों को सबसे बड़ा धक्का 1929-39 की महामन्दी के दौरान लगा। केंस ने उसमें अन्तर्निहित तार्किक विसंगतियों को उजागर कर दिया यद्यपि मार्क्स ने दशकों पहले उनको रेखांकित किया था। केस द्वारा प्रस्तुत विकल्प-केंसवाद हावी हो गया। उन्होंने बतलाया कि राज्य की सक्रिय भूमिका के बिना पूँजीवादी अर्थव्यवस्था संकटमुक्त होकर नहीं चल सकती। उन्होंने रेखांकित किया कि “प्रभावी मांग” की मात्रा में कमी आने से ही महामन्दी आई। ऐसा संकट न आये इसके लिए राज्य को अपने समक्ष नागरिकों को रोजगार के अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे उन्हें आय मिले और वे बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग करें। इस नुस्खे के आधार पर अमेरिका में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने “न्यूडील” का अपना कार्यक्रम चलाया और अपनी अर्थव्यवस्था को महामन्दी से उबारा। केंस की महान कृति “ए जनरल थियरी आफ एंप्लायमेंट, इंट्रेस्ट एण्ड मनी” पूँजीवादी देशों में अर्थशास्त्रियों के लिए बाइबिल जैसी हो गई।

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के तहत राज्य पर नागरिक को न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करने की जिम्मेदारी लेता है जिससे उसकी बुनियादी जरूरतों पूरी हों तथा सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान की जाय। बेरोजगारी, बीमारी और बुढ़ापा से यथासम्भव निजात दिलाने या उनके कुप्रभावों को कम करने की जिम्मेदारी सरकार की हो गई। कल्याणकारी राज्य के राजनीतिक और सामाजिक असंतोष के सीमित करने के साथ ही मेहनतकश लोगों की आय में वृद्धि की गारंटी कर प्रभावी मांग की मात्रा बढ़ाकर पूँजीवाद को मंदी से बचाए रखने का रास्ता भी दिखलाया। साथ ही कम्युनिज्म के प्रति आकर्षण को भी कम किया। कालक्रम में कल्याणकारी कार्यक्रमों का राज्य के सार्वजनिक व्यय में हिस्सा काफी बढ़ गया। उदाहरण के लिए 1970 के दशक में ब्रिटेन में वह 40 प्रतिशत और स्वीडन में 47 प्रतिशत पर पहुँच गया। आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, इटली और नेदरलैंड्स में यह अनुपात 60 प्रतिशत तक हो गया। 1980 के दशक आते-आते जो नवउदारवाद एक कोने में दुबका था वह एका-एक दुनिया के रंगमंच पर धूम धड़ाके के साथ आ गया। तबतक शिकागो विश्वविद्यालय स्थित अर्थशास्त्रियों की एक टोली ने किसी तरह जिन्दा रखा था। इस टोली में फ्रेडरिक फान हायक और मिल्टन फ्रीडमैन तथा उनके कुछ चेले थे।

1980 के दशक में अनेक कारणों से इस परिवर्तन को बल मिला। यूरोप के अनेक देशों में मध्यमार्गियों और सोशल-डेमोक्रेट्स का लम्बा शासन खत्म हो गया। दक्षिणपंथियों का दबदबा बढ़ा। ब्रिटेन में मार्ट थैचर और अमेरिका में रोनाल्ड रीगन शासनरूढ़ था। नए शासक नवउदारवाद से प्रतिबद्ध थे। वे ‘बाजार के जादू’ के कायल थे। वे कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सख्त विरोधी थे। उनके सैद्धान्तिक गुरु कल्याणकारी राज्य को समाजवाद का ही एक रूप मानते थे और समाजवाद को वे “कृषिदासता का रास्ता” बताते थे। 1980 के दशक के अन्तिम वर्षों के दौरान अनेक समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ धराशायी हो गईं और सोवियत संघ का विघटन हो गया। अब नवउदारवादियों का हौसला बढ़ा और उन्होंने डंके के चोट पर कहना शुरू कर दिया कि नवउदारवाद ही मानव जाति की स्वाभाविक और सामान्य अवस्था है, वह चिरन्तन है।

रीगन और थैचर के उदय, श्रमिक आन्दोलन की शक्ति-क्षीणता और सोवियत खेमे के पतन का विकासशील देशों पर गहरा प्रभाव पड़ा। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन समाप्त हो गया और भारत जैसे देशों में दक्षिणपंथी-अवसरवादी गठजोड़ सत्ता में आया। इन सबके परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय से प्रतिबद्ध आर्थिक विकास को छोड़ दिया गया और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को कूड़ेदान में डाल दिया गया। राज्य ने लोगों को रोजगार के अवसर मुहैया कराने की अपनी पुरानी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया। गरीबी निवारण, सामाजिक सुरक्षा, मलिन बस्तियों के सुधार, शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम कागजी घोड़े के रूप में रह गए। दिल्ली जैसे शहर में खुदरा दामों पर नियंत्रण के लिए चलाए गए सुपर बाजार आन्दोलन को नपुंसक बना दिया गया। नई प्रौद्योगिकी के आने से समाज का विभाजन अब ऐसा हो गया है कि एक समूह उत्पादन की प्रक्रिया में है और दूसरा उससे बाहर। जो बाहर है उनमें बूढ़ों, बीमारों और अपंगों के अलावे भारी संख्या में बेरोजगार शामिल हैं। पुराने उद्यमों के बन्द होने, सरकार के आकार के छोटा होने और अन्य राज्य द्वारा रोजगार के नए अवसरों के सृजन की जिम्मेदारी को त्याग देने के कारण बेरोजगारों की फौज बढ़ती जा रही है। पहले की स्थिति के विपरीत उनके उत्पादन की प्रक्रिया में फिर से लौटने की आशा काफी क्षीण है। इससे मानसिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिणाम क्या हो रहे हैं उस पर अलग से विचार किया जाना चाहिए।

वर्तमान भूमंडलीकरण के पक्षधरों का मानना है कि कल्याणकारी राज्य के तहत धनी लोगों से गरीब लोगों को आय का जो हस्तांतरण (सबसीडी, पेंशन, सहायता आदि के रूप में) किया जाता है उसके कारण आर्थिक कार्य निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कहा जा रहा है कि कल्याणकारी राज्य आर्थिक कार्यकुशलता और आर्थिक संवृद्धि के मार्ग में बाधक है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि कल्याणकारी कार्यक्रमों के नाम पर संसाधनों का अनुत्पादक इस्तेमाल होता है।

यूरोपीय संघ के दो अर्थशास्त्रियों जाक ट्रेज और एडमंड मालिन वुड ने “ग्रोथ एंड एम्प्लायमेंट : द स्कोप फार ए यूरोपियन इनिशियेटिव” में कल्याणकारी राज्य को लेकर तीन आपत्तियाँ की हैं : (1) आय संरक्षण के उपायों या सामाजिक बीमा के फलस्वरूप श्रम बाजार में लोच समाप्त हो जाती है। (2) कल्याणकारी कार्यक्रमों से सरकार का आकार बढ़ता है जिससे नौकरशाही और अकुशलता बढ़ती है। इन कार्यक्रमों के लिए वित्तीय संसाधन जुटाने से उत्पादक निवेश पर बुरा असर पड़ता है तथा कर प्रणाली विद्रूप हो जाती है। (3) कल्याणकारी कार्यक्रमों के लिए धन जुटाने के क्रम में बजटीय घाटा और सार्वजनिक ऋण में वृद्धि होती है। कल्याणकारी राज्य के विषय में जिन अर्थशास्त्रियों ने गम्भीर योगदान किए हैं उनमें कनाडा स्थित भारतीय मूल के प्रोफेसर रमेश मिश्र अग्रणी हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक ग्लोबलाइजेशन एंड द वेलफेयर स्टेट में बतलाया है कि कम्युनिज्म के धराशायी होने के बाद बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का कोई विकल्प न होने का कारण नवउदारवाद आधारित भूमंडलीकरण प्रबल हो गया। उसने कल्याणकारी राज्य के विषय में दो बातें रखीं। अभी हाल में कांग्रेस के अर्थशास्त्री जयराम रमेश ने दावा किया था कि भाजपानीत सरकार ‘मनमोहनमिक्स’ को ही कार्यान्वित कर रही है। साफ कहें तो वह ‘वाशिंगटन आम राय’ को कार्यान्वित कर रही है जिसको पहले-पहल डा. मनमोहन सिंह भारत की इस पुण्यभूमि पर लेकर आए थे। यह ‘वाशिंगटन आमराय’ गाँधी और नेहरू, या यो कहें कि राष्ट्रीय आन्दोलन

के आर्थिक-सामाजिक चिन्तन के पतिकूल है।

अभी हाल में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिगलिट्ज द्वारा प्रकाशित 'ग्लोबलाइजेशन एंड इट्स डिस्कंटेंट्स' रेखांकित किया गया है कि वर्तमान भूमंडलीकरण के वैचारिक आधार 'वाशिंगटन आमराय' को बिना अपनाए हुए भी आर्थिक सामाजिक विकास सम्भव है और कई देशों ने अपने अनुभवों से यह साबित कर दिया है अफसोस की बात है कि हमारे देश में इस दिशा में चिन्तन का अभाव है। यदि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ अपने सारे दरवाजे खोल दें और अधिराष्ट्रीय आर्थिक प्रभावों में आ जाएँ तो उनपर घरेलू सामाजिक नियंत्रण काफी कम हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में आंतरिक सामाजिक असंतोष बढ़ेगा और अस्थिरता आएगी। बेरोजगारी बढ़ने से निराशा और फिर अपराधवृत्ति बढ़ेगी। चूँकि सरकार की दिलचस्पी और क्षमता कल्याणकारी कार्यक्रमों को चलाने में रहेगी इसलिए जो हालात पैदा होंगे उसमें पूँजीनिवेश और अर्थव्यवस्था का सुचारु संचालन असम्भव हो जाएगा। यदि घूसखोरी, अपहरण, लूट खसोट आदि बढ़ेगा तो कौन पूँजी लगाएगा? रूस के अनुभव से हम इसे देख सकते हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं, पहले समाज 'साधन सम्पन्न' और 'साधनविहीन' लोगों के बीच विभाजित था। दोनों के बीच संघर्ष होते थे परन्तु उनमें से कोई भी उत्पादन की प्रक्रिया को ध्वस्त नहीं करना चाहता था। इंग्लैंड में कभी कुछ लोगों ने बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार मानकर मशीनें तोड़ी थीं परन्तु उनको अन्य मजदूरों और जनता का समर्थन नहीं मिला। उनकी निन्दा हुई।

आज समाज का विभाजन ऐसे दो भागों में होता जा रहा है। जिसमें से एक भाग उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल है और दूसरा उससे पूर्णतया बाहर हो गया है तथा उसके अन्दर आने के सारे दरवाजे बन्द हो गए हैं। इस दूसरे भाग में शामिल लोगों का उत्पादन की प्रक्रिया और अर्थव्यवस्था तथा उससे जुड़ी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था से कोई लगाव नहीं रह गया है। यदि ऐसे लोग आतंकवादी या माफिया गिरोहों में शामिल हो जाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। ऐसे लोगों को सैनिक या पुलिस कार्रवाइयों से न दबाया जा सकता है और न सदा नियंत्रण में रखा जा सकता है। कहना न होगा कि उनके पनपने के मूल कारणों को देखना और तदनुकूल कदम उठाने होंगे। दूसरे शब्दों में, वर्तमान भूमंडलीकरण के स्वरूप पर विचार करना होगा। कल्याणकारी राज्य की भूमिका को भी देखना होगा।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में रेखांकित किया गया है कि देश की जनता अपने को एक सार्वभौम जनतांत्रिक गणतन्त्र के रूप में इसलिए संगठित कर रही है कि वह अन्य लक्ष्यों के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त कर सके। इतिहास गवाह है कि सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष बहुत ही पुराना है। हमारे देश में बौद्ध धर्म, भक्ति आन्दोलन और आर्य समाज के उदय के पीछे सामाजिक न्याय की भावना काम कर रही थी। हमारा पूरा राष्ट्रीय आन्दोलन अन्य लक्ष्यों के साथ ही सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहा। जाति व्यवस्था, छूत-अछूत, ऊँच-नीच आदि के विरुद्ध संघर्ष अब भी समाप्त नहीं हुआ है संसद और विधान मंडलों से लेकर नौकरियों में आरक्षण सामाजिक न्याय की दिशा में ही कदम बढ़ा रहे हैं। वर्तमान भूमंडलीकरण इसमें भारी रुकावट है। कैसद्य इसका उत्तर हेनरी किसिंगर, 1999 को दिए गए, अपने भाषण में साफ किया। उनके अनुसार "भूमंडलीकरण संयुक्त राज्य के अधिपत्य का ही पार्यावाची है" बिना लाग-लपेट के उन्होंने कहा कि जिस रास्ते पर अमीरीका चल रहा है उसे ही दुनिया के अन्य देशों को अपनाना चाहिए। अमकरीका अनुसरण ही उन्हें अपनी मुक्ति की ओर ले जायेगा।

अमरीका के अनुसरण का अर्थ है वाशिंगटन आम राय को गीकार करना। इस अवधारणा का प्रतिपादन अमरीकी सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और इंटर-अमरीकन डेवलपमेंट बैंक ने (बाद में गाट और उसके स्थान पर बने विश्व व्यापार संगठन के समर्थन से, किया और जान विलियम्सन ने 1990 में प्रस्तुत किया। कहना न होगा कि जिन विकासशील देशों को वाशिंगटन आम राय का नुस्खा थमाया गया, न तो उनकी ऐतिहासिक-सामाजिक पृष्ठभूमि और न ही उनकी विशेष परिस्थितियों पर ध्यान दिया गया। उनकी भागीदारी उसके प्रतिपादन में कतई जरूरी नहीं मानी गई। “एक ही साइज की कमीज सब के लिए उपयुक्त” के सिद्धान्त पर चलते हुए वाशिंगटन आम राय सब पर थोप दी गई। दूसरे शब्दों में, रोग कुछ भी हो नुस्खा एक ही रहेगा।

यद्यपि समाज में आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानता जमाने से रही है परन्तु सरकारी प्रयास उसे कम करने के रहे हैं। भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में इस असमानता में तेजी से वृद्धि हो रही है और दिलचस्प बात यह है कि सरकार ने इस वृद्धि को रोकने या कम करने की जिम्मेदारी से मुँह मोड़ लिया है। इसके गम्भीर परिणाम होंगे।

अंकटाड और संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय के अध्ययनों के अनुसार आर्थिक असमानता में तेजी से वृद्धि हो रही है और दुनिया के ऊपरी 20 प्रतिशत और निचली 20 प्रतिशत जनसंख्या के बीच आय का अनुपात 82:1 है जो 1970 के दशक के आरम्भ में 60:1 और द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त में 30:1 था। फ्रांसीसी चिन्तक सुजन जार्ज के अनुसार किसी समाज में भूमंडलीकरण से फायदा बहुराष्ट्रीय निगम, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन द्वारा समर्थित एवं संचालित भूमंडलीकरण द्वारा ऐसे विश्व का निर्माण नहीं हो सकता जिसमें सभी लोगों को सामाजिक-आर्थिक न्याय, समाज के निचले 80 प्रतिशत लोगों का राष्ट्रीय आय में हिस्सा लगातार कम होता जाएगा। इस बात की पुष्टि राष्ट्रपति निक्सन के पूर्व सलाहकार और अमरीकी रिपब्लिकन पार्टी के विश्लेषक केविन फिलिप्स ने 1990 में प्रकाशित “द पालिटिक्स आफ रिच एंड पुअर” और अभी हाल में छपी वेल्थ एण्ड डेमोक्रेसी : ए पालिटिकल हिस्ट्री आफ दी अमरीकन है। एक ओर सरकार गरीबों को पेंशन देने में असमर्थ है तो दूसरी ओर मुट्ठी भर लोग जिन्हें “ओलिगार्क” (Oligarch) कहते हैं देश के अधिकांश संसाधन पर कब्जा जमा बैठे हैं।

अपने देश में ही यूनिट ट्रस्ट आफ इंडिया, सहकारी बैंक, निजी वित्तीय संस्थानों से चन्द लोगों ने मध्यम वर्ग की बचत को राजनीतिक नेताओं की मदद से हड़प लिया है। इससे मध्यम वर्ग विशेषकर सेवानिवृत्त लोग किन मानसिक परेशानियों में पड़ गये हैं, इसका अनुमान इर्द-गिर्द निगाह दौड़ाकर लगाया जा सकता है। इधर किसान उपज न बिकने या उचित दाम न मिलने से आत्महत्या करने को मजबूर हैं। सरकार कुछ नहीं कर रही क्योंकि बाजार की शक्तियों की सत्ता सर्वोपरि है। विश्व बैंक का यह कहना कि कुछ देशों ने भूमंडलीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश कर अपनी आर्थिक संवृद्धि की है तो आप भी ऐसा कर सकते हैं और ‘भूमंडलीकरण सामाजिक न्याय की कुंजी है, बिल्कुल कपटपूर्ण है। यह दावा इस तथ्य को दरकिनार कर देता है कि भूमंडलीकरण के जरिए आर्थिक संवृद्धि प्राप्त करने वाले देशों में सामाजिक न्याय की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई और आन्तरिक, जनतंत्र, मानव अधिकारों तथा समानता की बलि देनी पड़ी है। लेकिन अमरीकी देशों पर निगाह डालने या फिर तेल निर्यातक देशों को उदाहरण लेकर इसे हम समझ सकते हैं। दक्षिण कोरिया, ताइवान और फिलीपींस में जनतंत्र का वर्षों तक कहीं नामोनिशान नहीं रहा है।

भारत सरकार द्वारा 1991 से प्रारंभ नई आर्थिक नीति, जिसे उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एल.पी.जी.) के रूप में जाना जाता है, वास्तव में मुख्य रूप से यह वैश्वीकरण की ही नीति थी। वर्ष 2020 को इस नीति को प्रारंभ हुये 29 वर्ष हो चुके हैं, इस संबंध में पर्याप्त अनुभव, जानकारीयां और आंकड़े उपलब्ध हैं कि इस नीति का भली-भांति मूल्यांकन किया जा सके। सैद्धांतिक रूप से वैश्वीकरण से अभिप्राय है, बिना कोई बाधा के दुनिया के विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को एकीकृत करते हुए वस्तुओं और सेवाओं, प्रौद्योगिकी, पूंजी और मानव संसाधनों का मुक्त प्रवाह। वैश्वीकरण एक शब्द है जिसे चार मापदंडों पर देखा जा सकता है -

- व्यापार बाधाओं में कमी करते हुए विभिन्न राष्ट्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के मुक्त प्रवाह की अनुमति।
 - विभिन्न राष्ट्रों के बीच पूंजी के मुक्त प्रवाह हेतु वातावरण का निर्माण।
 - प्रौद्योगिकी के मुक्त प्रवाह हेतु वातावरण का निर्माण।
 - अंतिम लेकिन, विशेषतौर पर विकासशील देशों के परिप्रेक्ष्य में सबसे महत्वपूर्ण, ऐसे वातावरण का निर्माण जिससे दुनिया के विभिन्न देशों के बीच में श्रम (मानव संसाधनों) का मुक्त प्रवाह संभव हो सके।
- भूमंडलीकरण के पैरोकार, भूमंडलीकरण को कई तर्कों के आधार पर सही ठहराते हैं -
- विकासशील देश अन्तर्राष्ट्रीय ऋणग्रस्तता से बचते हुए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के माध्यम से पूंजी जुटा सकते हैं।
 - विकासशील देश अनुसंधान और विकास में निवेश किये बिना विकसित देशों से उन्नत प्रौद्योगिकी प्राप्त कर विकास कर सकते हैं।
 - विकासशील देशों के उपभोक्ता अपेक्षाकृत बहुत कम कीमतों पर उन्नत उपभोक्ता वस्तुओं खासतौर पर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं को मंगा कर उपयोग कर सकते हैं। साथ ही साथ विकासशील देशों के लिए एक अवसर भी मिलता है कि वे अपना सामान विकसित देशों में बेच सकें।
 - भूमंडलीकरण के माध्यम से ज्ञान का तेजी से प्रसार संभव है, जिससे विकासशील देश अपनी अर्थव्यवस्था में उत्पादन और उत्पादकता का स्तर अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के आधार पर बढ़ा सकते हैं।
 - परिवहन एवं संचार लागत को कम करते हुए वैश्वीकरण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देता है।

यानी भूमंडलीकरण के पैरोकारों की बात मानी जाए तो भूमंडलीकरण विकास का इंजन और आधुनिकीकरण का द्योतक है। प्रौद्योगिकी को उन्नत करने वाली, उत्पादकता को बढ़ाने वाली और इस माध्यम से रोजगार में वृद्धि करने वाली और गरीबी घटाने वाली प्रक्रिया है।

भूमंडलीकरण का प्रभाव : आर्थिक संवृद्धि के बीच गहराती गरीबी - वैश्वीकरण के समर्थकों के दावों का विभिन्न देशों में कई शोधकर्ताओं ने परीक्षण किया है। वैश्वीकरण की कड़ी आलोचना अर्थशास्त्र में 2001 में प्राप्त नोबेल पुरस्कार विजेता और विश्व बैंक के प्रमुख अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिग्लिटज ने अपनी पुस्तक “वैश्वीकरण और इसकी निराशाएं” में प्रस्तुत की है। वैश्वीकरण के सामाजिक आयाम पर विश्व आयोग ने भी विश्व भर में वैश्वीकरण के अनुभव पर विचार किया है और कई चौंकाने वाले तथ्य प्रस्तुत किए हैं। विश्व

आयोग ने स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया “वैश्वीकरण” का मौजूदा मार्ग बदलना होगा। इससे बहुत थोड़े लोगों को लाभ होता है।” हम वैश्वीकरण को मानवीय कल्याण और स्वतंत्रता के विस्तार का साधन बनाना चाहते हैं और स्थानीय समुदायों के पास जहां वे निवास करते हैं, लोकतंत्र और विकास लाना चाहते हैं।

यदि वैश्वीकरण के मानकों के आधार पर जांच की जाए तो कहा जा सकता है कि भारत वैश्वीकरण के रास्ते पर काफी आगे बढ़ा है। भारत के नीति निर्माताओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था को शेष दुनिया के साथ एकीकृत करने का काम खूब किया है। भारत का निर्यात जो 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का मात्र 8.5 था वर्ष 2010-11 तक बढ़कर 14.4 प्रतिशत तक बढ़ गया। साथ ही साथ आयात 1990-91 में जी.डी.पी. के 8.4 से बढ़ता हुआ वर्ष 2010-11 तक 23.1 प्रतिशत तक पहुंच गया। साथ ही साथ व्यापार घाटा जो पहले जी.डी.पी. का 3.0 प्रतिशत ही था वह बढ़ते हुए 8.7 प्रतिशत तक पहुंच गया। पिछले 10 वर्षों में भारत ने शेष दुनिया से 390 अरब डालर का विदेशी निवेश (प्रत्यक्ष एवं संस्थागत दोनों मिलाकर) प्राप्त किया। विदेशी निवेश जो पूर्व में नगण्य होता था अब बढ़कर कुल वैश्विक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का 3.4 प्रतिशत तक पहुंच चुका है।

गरीबी की कमी में धीमापन- आजकल गरीबी की रेखा की सही परिभाषा देने की बात काफी चर्चा में है। देश की सरकार (योजना आयोग के माध्यम से) गरीबी की एक ऐसी परिभाषा दे रही है, जिसके अनुसार शहरी क्षेत्रों में 32 रुपये प्रतिदिन पाने वाला व्यक्ति गरीबी की रेखा से ऊपर माना जायेगा। प्रो. तेंदुलकर द्वारा गरीबी की रेखा की नई परिभाषा सुझाई गई और वर्ष 2004-05 में 37 प्रतिशत जनसंख्या को गरीबी रेखा से नीचे माना गया। ध्यातव्य है कि इससे पहले तो योजना आयोग वर्ष 2004-05 में मात्र 27 प्रतिशत लोगों को ही गरीबी की रेखा से नीचे बता रहा था। इस परिभाषा में भुखमरी को ही गरीबी कहा गया था यानि जो व्यक्ति कैलोरी उपभोग के संदर्भ में भुखमरी से ऊपर था, वह गरीबी नहीं माना गया। प्रो. तेंदुलकर द्वारा सुझाई गई परिभाषा में नई बात यह थी कि उसमें गरीब के उपभोग बंडल में शिक्षा और स्वास्थ्य भी आंशिक रूप से जोड़ने की बात कही गई। प्रो. तेंदुलकर की परिभाषा के अनुसार भी 2004-05 में शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन 19.5 रुपये पाने वाला गरीबी की रेखा से ऊपर माना गया।

बहुआयामी गरीबी- ऐसे में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के द्वारा बहुआयामी गरीबी सूचकांक विकसित किया गया है, जिसके अनुसार भोजन ही नहीं बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन स्तर जिसमें बिजली, पेयजल, सफाई, ईंधन, परिसम्पत्तियां इत्यादि शामिल हैं। यह बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एम.पी.आई.) 104 देशों के 520 करोड़ लोगों के लिए बनाया गया है, जिसमें 170 करोड़ लोग गरीब माने गये हैं। भारत में जहां सरकारी परिभाषा के अनुसार मात्र 37 प्रतिशत लोग ही गरीबी की रेखा से नीचे माने गये हैं, इस व्यापक परिभाषा के अनुसार (वर्ष 2000 से 2008 के बीच) 53.5 प्रतिशत लोग गरीब माने गये हैं। इसके अतिरिक्त 16 प्रतिशत से भी अधिक लोग गरीबी के खतरे में हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि 37.5 प्रतिशत लोग शिक्षा के अभाव, 56.5 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव और 58.5 प्रतिशत लोग जीवन स्तर के अभावों से ग्रस्त माने गये हैं। बहुआयामी गरीबी सूचकांक की दृष्टि से भारत में यह सूचकांक 0.296 माना गया है, जबकि मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से भारत से भी नीचे के कई देश गरीबी सूचकांक में भारत से भी कहीं बेहतर स्थिति में हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मानव विकास सूचकांक भी वास्तव में बहुआयामी गरीबी

को परिलक्षित नहीं करता है।

बढ़ती असमानताएं- 12 वर्ष 1990-91 से वर्ष 2009-10 के बीच राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर औसत 7 प्रतिशत से भी अधिक रिकार्ड हुई। दसवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय उत्पाद की संवृद्धि दर 7.8 प्रतिशत की रही। लेकिन इसके साथ ही साथ देश में असमानताएं भी बढ़ी हैं। विशेषतौर पर जहां 1980-81 में कृषि का योगदान सकल देशीय उत्पाद में 38 प्रतिशत होता था, वह घट कर 2010-11 तक मात्र 14.2 प्रतिशत ही रह गया। ऐसे में हमारे पास एक चमकता भारत है, जिसमें आज 55 लोग ऐसे हैं जिनकी परिसम्पत्तियाँ 1 अरब डालर से भी अधिक हैं, कुल 10-12 करोड़ लोगों का समृद्ध एवं मध्यम वर्ग है, जो विकास के तमाम लाभ उठा रहा है। दूसरी ओर लगभग 110 करोड़ वे गरीब लोग हैं, जो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते। देश में निगम क्षेत्र में संलग्न बड़े पूंजीपति और मैनेजर करोड़ों रुपये का पारिश्रमिक पाते हैं और लगभग 14 करोड़ रुपये मजदूर भूमिहीन आकस्मिक श्रमिक हैं, जो लगभग 100 रुपये या उससे कम की मजदूरी प्रतिदिन प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार देश में व्याप्त असमानताओं के चलते 100 करोड़ से अधिक लोग वर्तमान में उपलब्ध निजी क्षेत्र में उच्च शिक्षा के अवसरों से पूर्णतया वंचित हैं। गरीबी उन्मूलन के सरकारी उपाय तभी सार्थक हो सकते हैं, जब अभावों के इन तमाम प्रकारों को भली-भांति समझकर गरीब आदमी का जीवन स्तर सुधारने का प्रयास हो।

भूख और कुपोषण : गलत आर्थिक नीतियों के कारण शर्मसार है राष्ट्र- हाल ही में एक न्यास द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है, कि भारत में भयंकर गरीबी के चलते पांच वर्ष से कम आयु के 42 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं और वे अपनी आयु की तुलना आयु वर्ग में जो बच्चे अपनी आयु की तुलना में पतले थे उनकी संख्या 1998-99 में 19.7 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 22.9 प्रतिशत हो गई। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि पिछले डेढ़ दशक में पोषण के संदर्भ में कोई प्रगति नहीं हुई है, बल्कि कुपोषण में वृद्धि अवश्य दिखाई देती है। हाल ही में हुए सर्वेक्षण से यह बात और पुष्ट हो जाती है।

बढ़ती आर्थिक संवृद्धि और कुपोषण का विरोधाभास- आज हमारे देश के नीति निर्माता लगातार यह दावा कर रहे हैं कि देश आगे बढ़ रहा है। हमारी राष्ट्रीय आय 7 से लेकर 9 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। आज भारत आर्थिक ताकत के बल पर दुनिया में तीसरे पायदान पर खड़ा है। जाहिर है कि ऐसी स्थिति दुनिया में भारत का मानव विकास रिपोर्ट कार्ड बेहतर नहीं कहा जा सकता।

यही कारण है कि पिछले कई सालों से भारत मानव विकास की दृष्टि से विशेष आगे नहीं बढ़ पाया। वर्ष 2007 में भारत मानव विकास की दृष्टि से 134वें स्थान पर था और वर्ष 2011 में भी भारत का स्थान 134वां ही बना हुआ है। ऐसे में प्रश्न खड़ा होता है कि भारत में आम आदमी के कुपोषण की ऐसी स्थिति क्यों है? ने इस विरोधाभास को समझने के लिए हमें आर्थिक संवृद्धि की संरचना को समझना होगा। आर्थिक संवृद्धि का मतलब यह है कि हमारी जीडीपी में वृद्धि हो रही है। जीडीपी देश में उत्पादित होने वाली वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को कहते हैं। पिछले दो दशकों में जीडीपी में होने वाली अधिकांश वृद्धि सेवाओं के क्षेत्र में हुई है। औद्योगिक क्षेत्र में भी आर्थिक संवृद्धि देखने को मिल रही है, लेकिन कृषि क्षेत्र में आर्थिक संवृद्धि की दर ऋणात्मक से 3-4 प्रतिशत के बीच देखने को मिलती है। इसका प्रभाव यह है कि कृषि जो 1980-81 में कृषि का जीडीपी में योगदान 38 प्रतिशत था,

अब मात्र 14.3 प्रतिशत ही रह गया है। यह आंकड़े न केवल खाद्य पदार्थों की अपर्याप्त उपलब्धता की ओर इंगित करते हैं, बल्कि कृषि पर निर्भर 60 प्रतिशत जनसंख्या की आर्थिक विपन्नता की तरफ भी इशारा करते हैं। जाहिर है जब 60 प्रतिशत लोगों को केवल 14 प्रतिशत आय प्राप्त हो रही हो तो उनके कुपोषण का बढ़ना स्वाभाविक ही है। बढ़ती आर्थिक संवृद्धि के बीच गरीबी, भुखमरी और कुपोषण का यह नंगानाच देश के आर्थिक और सामाजिक ताने-बाने के लिए सही लक्षण नहीं है। नीति निर्माताओं को इस विषय पर विचार करना होगा। आज कुपोषण की इस स्थिति के लिए राष्ट्र शर्मसार है, लेकिन इसके दोषी देश के नीति निर्माताओं के अतिरिक्त कोई और नहीं।

शिक्षा और स्वास्थ्य का भी अभाव- इसी परिभाषा को आधार मानकर वर्तमान में 32 रुपये प्रतिदिन पाने वाले को गरीबी की रेखा से ऊपर माना गया। अभी हाल ही में योजना आयोग के मुख्य सलाहकार श्री प्रणव सेन ने कहा कि देश में अभाव और गरीबी के बारे में सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा अलग-अलग प्रकार की परिभाषाएं इस्तेमाल की जाती हैं। लेकिन यदि हम वास्तविक धरातल पर देखें तो आज जनसंख्या का एक बड़ा भाग भुखमरी से पीड़ित है ही, मध्यम वर्ग का एक बड़ा हिस्सा शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के संदर्भ में आमतौर पर अभाव ग्रस्त है।

भूमंडलीकरण और निजीकरण के दौर में शिक्षा और स्वास्थ्य आज सबसे ज्यादा निजी हाथों में केन्द्रित होते जा रहे हैं। अधिकाधिक लाभ की संभावनाओं के कारण इस क्षेत्र में निजी निवेश तो हुआ है और सेवाओं का स्तर भी पहले से बेहतर हुआ है, लेकिन ये सेवाएं केवल उनके लिए हैं जो उनकी कीमत अदा कर सकते हैं। इसलिए गरीब भोजन के अभाव से ही नहीं बल्कि सरकार द्वारा शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र से भी हाथ खींच लेने से भी शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव से भी पीड़ित है।

अभी दूर है सबके लिए शिक्षा और स्वास्थ्य का लक्ष्य- कुछ समय पहले संसद में शिक्षा के अधिकार का कानून पारित किया गया था। सर्वविदित है कि संविधान में राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों में सरकार से यह अपेक्षा की गई थी कि वह सभी को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य करें। दुर्भाग्य का विषय है कि संविधान के लागू होने के 70 वर्ष बाद भी शिक्षा का अधिकार लागू नहीं हो सका। शिक्षा के अधिकार के कानून को लागू करने के लिए द्वा मात्र 30 हजार करोड़ रुपये की जरूरत है, जो 2-जी घोटाले में हजम की गई रकम का मात्र छठा हिस्सा है।

स्वास्थ्य सुविधाओं को उपलब्ध कराना सरकार की प्राथमिक जिम्मेवारी है। सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों में सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य बताया गया है। दुर्भाग्य का विषय है कि धन की कमी के चलते सरकार स्वास्थ्य सेवाओं से मुख मोड़ रही है। वर्ष 2011-12 के बजट के अनुसार स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए मात्र 23560 करोड़ रुपये का ही प्रावधान किया गया था। यदि 30 हजार करोड़ रुपये का प्रावधान किया और कर दिया जाए तो सबके लिए स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध कराना संभव हो सकता है। आज जब 1 लाख में से 230 महिलायें बच्चे के जन्म पर दम तोड़ देती हैं, 1000 बच्चों में 66 अपना पांचवां जन्मदिन नहीं मना पाते, ऐसे में स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्च बढ़ाना बहुत जरूरी है।

बढ़ती बेरोजगारी की पीड़ा- एक तरफ तेजी से होते आर्थिक संवृद्धि और दूसरी ओर गहराती गरीबी का विरोधाभास रोजगार विहीन विकास के कारण है। यह सही है कि जीडीपी बढ़ रही है और तेजी से बढ़ रही है, लेकिन साथ ही साथ रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे। देश में ग्रामीण

और शहरी दोनों क्षेत्रों में बेरोजगारी लगातार बढ़ी है। 1999-2000 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के 55वें दौर के आंकड़ों के अनुसार पुरुषों में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की दर क्रमशः 7.3 प्रतिशत और 7.2 प्रतिशत थी और महिलाओं में यह क्रमशः 9.4 प्रतिशत और 7.0 प्रतिशत थी। यह 61वें दौर तक आते-आते 2004-05 में बढ़कर पुरुषों में 7.5 प्रतिशत और 8.0 प्रतिशत और महिलाओं में क्रमशः 11.6 प्रतिशत और 8.7 प्रतिशत पहुंच गई।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के 66वें दौर के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2004-05 से 2009-10 के बीच 5 वर्षों में कुल 20 लाख रोजगार के अवसर भी जुटाये जा सके। यह तो आंकड़ों का खेल था कि तब भी सरकार ने बेरोजगारी की दर घटी हुई दिखाई। कुछ समय पहले राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने अपने 66वें सर्वेक्षण दौर की रिपोर्ट जारी की है। इस रिपोर्ट में एक अत्यन्त चिंताजनक बात सामने आई है, और वह है रोजगार में बढ़ती आकस्मिकता या यूँ कहें कि अस्थिरता। नमूना सर्वेक्षण संगठन समय-समय पर रोजगार और बेरोजगारी से संबंधित रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। हाल की रिपोर्ट के अनुसार 2004-05 और 2009-10 के बीच आकस्मिक श्रमिकों की संख्या में 219 लाख की वृद्धि हुई। पिछले दौर की तुलना में यह वृद्धि काफी ज्यादा है। स्थायी यानि वेतन पाने वाले श्रमिकों की बात कहें तो 2009-10 के दौर में यह वृद्धि पूर्व से आधी यानि मात्र 58 लाख की ही थी। स्वरोजगार युक्त श्रमिकों जिसमें अधिकतर किसान, लघु और कुटीर उद्योगपति और व्यापारी आते हैं, की संख्या में 251 लाख की कमी दर्ज की गई है। अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्रों में भी आर्थिक संवृद्धि संगठित क्षेत्रों और कारपोरेट क्षेत्र तक ही सीमित रही। पूंजीपतियों का लाभ और कुछ खास लोगों के वेतन बढ़े लेकिन बहुसंख्यक लोगों का रोजगार का स्तर या तो बढ़ नहीं पाया या घट गया।

आकस्मिकता का मतलब- आकस्मिक रोजगार वह रोजगार होता है, जहां श्रमिकों को काम में स्थायीत्व और अन्य सुविधाओं का अभाव होता है। ठेकेदारी व्यवस्था में काम करने वाले अधिकतर श्रमिक जो गार्ड, सफाई कर्मचारी, ड्राइवर इत्यादि के नाते काम करते हैं, वे सभी इसी श्रेणी में आते हैं। आकस्मिक रोजगार घटिया इसलिए माना जाता है क्योंकि स्थायी कर्मचारियों की अपेक्षा आकस्मिक श्रमिकों की मजदूरी कम होती है और इसमें वृद्धि भी कम होती है। हम देखते हैं कि हमारे आस-पास ठेकेदारी व्यवस्था के अंतर्गत काम करने वाले गार्ड, सफाई कर्मचारी इत्यादि अत्यन्त अमानवीय परिस्थितियों में काम करते हैं और उनका वेतन भी गुजारे लायक वेतन से कहीं कम होता है। इन्हें मजदूरी के अतिरिक्त कुछ और भत्ते इत्यादि भी नहीं मिलते। दूसरी ओर वेतनभोगी स्थायी मजदूरों को बोनस, मकान, किराया भत्ता, दवाई और इलाज के लिये खर्च, मुफ्त टेलीफोन, यातायात भत्ताकार बाजार मूल्य के आधार पर भरपाई होती है। आकस्मिक श्रमिकों की निम्न मजदूरी जिस मजदूरी पर आकस्मिक श्रमिकों का गुजारा चलता है वह भी बहुत ही निम्न स्तर की होती है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार तीन प्रकार के अस्थायी मजदूरों के लिये अलग-अलग मजदूरी की गणना की गई है। शहरी क्षेत्रों में स्थायी कर्मचारियों की मजदूरी औसत 365 रुपये और ग्रामीण क्षेत्रों में यह 232 रुपये आंकी गई है। जबकि निजी क्षेत्र के कार्यों के लिये भाड़े पर लिये गये आकस्मिक मजदूरों की मजदूरी शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में क्रमशः 122 रुपये और 93 रुपये ही है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि दिहाड़ीदार छद्म मजदूरों को वर्ष भर काम नहीं मिलता। ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत भी काम तो केवल 100 ही दिन मिल पाता है। शेष मजदूरों को तो उतना भी काम नसीब नहीं होता। वेतनभोगी

मजदूरों से काम के दिनों में एक चौथाई से एक तिहाई ही मजदूरी और वास्तव में वर्ष भर में मात्र 100 दिनों से भी कम रोजगार की स्थिति, देश में इन मजदूरों की बदतर स्थिति बयान करती है। नई आर्थिक नीति है दोषी। इसके साथ मजदूरों में बढ़ती आकस्मिकता और अस्थायीत्व अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। वास्तव में नई आर्थिक नीति के चलते कृषि, लघु और कुटीर उद्योगों में स्वरोजगार घट रहा है। इसके साथ सरकारों द्वारा किसानों की भूमि का जबरन अधिग्रहण, किसान से उसका परम्परागत रोजगार छीन रहा है। ऐसे में स्वरोजगार युक्त श्रमिकों में मात्र 5 वर्षों में 251 लाख की कमी और उन स्वरोजगार युक्त लोगों का आकस्मिक श्रमिक के रूप में बदलाव, देश में आम मजदूर और किसान की बदहाली की ओर इशारा कर रहा है। नई आर्थिक नीति के पैरोकारों को विचार करना होगा कि केवल जीडीपी आधारित आर्थिक संवृद्धि से आम आदमी के जीचन में सुधार नहीं हो सकता। लेकिन जब इस जीडीपी को बढ़ाने की कवायद में आम आदमी गरीबी की ओर जा रहा हो, तो उस नीति का परित्याग कर जनोन्मुखी आर्थिक नीति बनानी होगी। कृषि, लघु उद्योग और अन्य स्वरोजगार प्रदान करने वाले क्षेत्रों का विकास और बचाव ही एकमात्र उपाय है।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. भूमंडलीकरण, मिथक या यथार्थ, डा. गिरीश मिश्र डा. ब्रजकुमार पांडेय, पृ. 24.
2. वही, पृ. 24.
3. वर्तमान भूमंडलीकरण और लोककल्याणकारी राज्य, ले. जी. मिश्र, मित्र, पृ. 28, 2008 मई।
4. वही, पृ. 29.
5. पूर्वोद्धृत, पृ. 26.
6. वही, पृ. 27.
7. भूमंडलीकरण : मिथक या यथार्थ, पृ. 26.
8. वही, पृ. 27.
9. वही, पृ. 27.
10. वही, पृ. 27.
11. वही, पृ. 30.
12. भूमंडलीकरण और सामाजिक न्याय, मित्र, 2005, मई, पृ. 31.
13. वही, पृ. 31.
14. वही, पृ. 32.
15. भूमंडलीकरण : मिथक या यथार्थ, पृ. 53.
16. वही, पृ. 34.
17. वही, पृ. 36.
18. वही, पृ. 39.
19. ग्लोबलाइजेशन ग्रोथ एण्ड पावर्टी 2001, पृ. 3-7.

कथाकार शिवमूर्ति का कथा-संसार

• पंकज कुमार झा

सारांश- आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में समकालीन जीवन-परिवेश की वास्तविक सच्चाइयों को उजागर करने वाले रचनाकारों में कथाकार शिवमूर्ति अग्रणी रचनाकार हैं। विशेष रूप से सदियों से समाज के हाशिए पर रह रहे किसान, मजदूर और स्त्री-जीवन की त्रासदी, प्रतिगामी स्थितियों के बीच उनके जीवन संघर्ष और प्रतिरोध को उन्होंने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। दलित, शोषित और उपेक्षित ये वर्ग आज अपने अधिकार के लिए संघर्षरत हैं। विडंबना यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक से अधिक समय बीत जाने पर भी हम अपने संविधान में निहित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सके हैं। आज भी शोषण, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, असमानता और समाज के कमजोर वर्गों की उपेक्षा का दंश आज भी बरकरार है। शोषक शक्तियाँ कमजोर वर्गों की उन्नति में आज भी बाधक बनी हुई हैं।

मुख्य शब्द- जीवन-परिवेश, कथाकार, किसान, मजदूर, स्त्री

कथाकार शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में शोषण और अन्याय के विरुद्ध प्रतिकार की मुखर आवाज है। उन्होंने अपने जीवन में ग्रामीण-समाज के इस यथार्थ को निकट से देखा है, इसलिए उनके पात्रों का संघर्ष और प्रतिरोध इतना स्वाभाविक है कि वह पाठकों को कहीं से अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। ये पात्र हमारे आसपास के जीवन में आज भी उपस्थित हैं। संख्या की दृष्टि से उनकी रचनाओं की संख्या अधिक नहीं है, पर इनमें वर्तमान सामाजिक परिवेश की ज्वलंत समस्याओं का चित्रण हुआ है। अपनी कथा-रचनाओं में साम्प्रदायिकता और जातिवाद की ओट में चलने वाली राजनीतिक कुत्सा एवं संकीर्ण मानसिकता को उन्होंने अनावृत किया है।

शिवमूर्ति का कथा-संसार शोषित-उपेक्षित समाज के पात्रों के संघर्ष और प्रतिरोध से निर्मित हुआ है। “शिवमूर्ति अपने कथा-साहित्य में जो संसार रच रहे हैं उसके पीछे एक स्वप्न है। स्वप्न मुक्ति का है। पर मुक्ति किससे? किसको? किस कीमत पर? मुक्ति असमानता, अन्याय और शोषण से चाहिए। यह असमानता, अन्याय और शोषण हमारे समाज के ढाँचे में संस्थाबद्ध कर दिए गए हैं तो मुक्ति समाज और उसके विभिन्न संस्थाओं के पीछे छिपे असमानता के कारकों से चाहिए। असमानता कहीं प्रत्यक्ष है तो कहीं समता के छद्म के पीछे गोपन रूप में। यह असमानता धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार की हो सकती है।”¹ शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में दलितों और गरीबों के जीवन की त्रासद स्थितियों का वास्तविक चित्रण हुआ है। उनके पात्र अपने जीवन की इस नियति को चुपचाप स्वीकारने के पक्ष में नहीं हैं। वे इसका शक्तिभर प्रतिरोध और मुखर विरोध करते हैं। “शिवमूर्ति की कहानियों में सत्ता का जो रूप है, उसकी अनेक तहें हैं-राजसत्ता, धर्मसत्ता, पितृसत्ता, ब्राह्मणवाद (जाति-वर्ण व्यवस्था) और पूंजी की सत्ता। ये सब एक-दूसरे से

• शोध छात्र, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

जुड़कर जिस किस्म का विराट प्रपंच रचती है, उसके फंदे से बच निकलना सचमुच साधारण गरीब मनुष्य के लिए मुश्किल है। इस तहदार सत्ता का रूप खास भारतीय है और शिवमूर्ति की कहानियों में वह खास ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थिति में ऑपरेट करती दिखाई पड़ती है। यह समय-समाज है 20वीं सदी की आखिरी चौथाई और 21वीं सदी के उत्तर भारत का ग्रामीण समाज जो अवध का होते हुए भी काफी हद तक प्रातिनिधिक है।¹² शिवमूर्ति के पात्र सत्ता को चुनौती देते हुए न्याय के लिए संघर्षशील हैं।

कथाकार शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों 'केशर कस्तूरी', 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'भरतनाट्यम', 'सिरी उपमाजोग' आदि कहानियों में समय की ज्वलंत समस्याओं का चित्रण किया है। मूल रूप से शिवमूर्ति ग्रामीण-जीवन की विसंगतियों को उकेरने वाले कथाकार हैं। उनके पात्र पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे ग्रामीण समाज के हैं, दलित हैं, शहरी नहीं हैं, किन्तु अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष की चेतना से पूर्ण हैं। वे अपना फैसला खुद करते हैं, 'तिरिया चरित्तर' की विमली को जब पंच निरपराध होते हुए भी दागने का फैसला सुनाते हैं। तब मनतोरिया की माई इस फैसले का विरोध करते हुए कहती है- "ई अंधेर है। दगनी दागना है तो बिसराम और बोधन चौधरी के चूतर पर दागना चाहिए। कोई काहे नहीं पूछता कि बोधन की बेवा भौजाई दस साल पहले काहे कुँए में कूदकर मर गई थी। गाँव की औरतें मुँह खोलने को तैयार हो जाएँ तो बिसराम की घटियारी के वह एक छोड़ दस 'परमान' दे सकती है। वही आदमी बेकसूर लड़की को दागेगा? और वही बोधन बड़का पगड़ बाँधकर दगनी की सजा सुनाएँगे? यही नियाव है? ई पंचायत नियाव करने बैठी है कि अन्धेर करने?"¹³ कथाकार शिवमूर्ति के व्यापक कथा-संसार में सदियों से उपेक्षित वंचित वर्ग का संघर्ष और प्रतिरोध उनकी अदम्य जिजीविषा के रूप में प्रकट हुई है। उनके पात्र अपने संघर्ष में भले पराजित हो जाते हैं फिर भी इस वर्चस्ववादी शोषक शक्तियों के समक्ष कभी नतमस्तक होना स्वीकारते नहीं हैं।

प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ 'रेणु' के पश्चात शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में कृषक और ग्रामीण-समाज का विस्मृत धूल-धूसरित चेहरा पुनः हमारे समक्ष प्रकट हुआ है। "प्रेमचंद और 'रेणु' के गाँवों को शिवमूर्ति के गाँवों के साथ जोड़कर देखें तो बदलाव स्पष्ट रूप से सामने आता है। आज के गाँवों का बदला हुआ चेहरा, राजनीति, आर्थिक स्थितियाँ, जातियता, किसानों की स्थितियाँ, बेरोजगार युवकों की मानसिकता, रूढ़ियाँ, परम्परा और स्त्रियों के जीवन की सच्ची तस्वीर शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में दिखायी देती है। शिवमूर्ति का वैशिष्ट्य है कि उनके कथा-साहित्य में जीवन और जगत को सच्चे प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अपने आस-पास की जीवंतता को उठाकर वे अपने कहानी उपन्यास में भर देते हैं।"¹⁴ प्रेमचंद और रेणु के बाद शिवमूर्ति कथा-साहित्य में इसीलिए किसान, स्त्री, मजदूर, दलित और ग्रामीण समाज का वास्तविक चित्रण हुआ है।

लेखन के माध्यम से शिवमूर्ति उन तमाम विसंगतियों, अंतरविरोधों और विषमताओं पर कड़ा प्रहार करते हैं जो आज भी वर्तमान समाज में व्याप्त हैं। उनके लिए लेखन मनोरंजन या मन-बहलाव का साधन नहीं है। एक लेखक के रूप में अपनी भूमिका को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं- "हमारा समाज बहुत पहले से दो हिस्सों में बँटा रहा है। बहुत छोटा हिस्सा सब तरह की सुख-सुविधा और विशेषाधिकारों का भोग करता तथा एक बड़े समूह के हिस्से का सुख-चैन हड़पता है। बड़ा हिस्सा यदा-कदा इसके विरुद्ध आवाज उठाते हुए हर तरह का अन्याय और दुख झेलता-भोगता सहता आया है।

राजाओं-महाराजाओं और उससे भी पहले कबीलाई तब से लेकर आज के इस आधुनिक कहे जाने वाले दौर तक यह उसी तरह जारी है। सिर्फ उसका रूप बदलता रहा है।¹⁵ लेखन उनका व्यसन नहीं, एक उद्देश्यपरक मिशन है। वंचित वर्ग की भावनाओं, संघर्ष और प्रतिरोध को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। इसी के चलते वह (लेखक) समाज में व्याप्त दुख-दर्द, अन्याय व शोषण को ज्यादा गहराई से महसूस करता है और प्रतिक्रिया करता है। इसी के चलते वह अपने वर्ग के मूल्यों का अतिक्रमण करते हुए भी शोषित-पीड़ित आमजन की चिंता और सरोकार से खुद को जोड़ लेता है।¹⁶ शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में जन-सामान्य की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। वर्तमान समय की त्रासदी को उन्होंने अपनी कथा-रचनाओं में उजागर किया है।

साहित्य का लक्ष्य मानवीय संवेदना को सहेजना और उसका विस्तार करना है। जिस समय बड़ी आबादी विपन्नता का जीवन जी रही हो, रचनात्मक साहित्य की भूमिका उसके पक्ष में रही है। एक सच्चा रचनाकार ऐसे समय में निसंदेह इस वंचित वर्ग का पक्षधर होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान लेखक और आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है-“निरन्, निर्वसन जनता के बीच खड़े होकर आप परियों के सौंदर्य-लोक की कल्पना नहीं कर सकते। साहित्य सुंदर का उपासक है, इसलिए साहित्यिक को असामंजस्य को दूर करने का प्रयत्न पहले करना होगा; भय और ग्लानि से लड़ना होगा। सौंदर्य और असौंदर्य का कोई समझौता नहीं हो सकता। सत्य अपना पूरा मूल्य चाहता है। उसे पाने का सीधा और एकमात्र रास्ता उसकी कीमत चुका देना ही है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं है। हमारे देश का बाह्य रूप न तो आँखों को प्रीति देने लायक है, न कानों को, न मन को न बुद्धि को। यह सच्चाई है।¹⁷ आज जिस प्रकार दलित और स्त्री-विमर्श का कोलाहल है, उसमें विमर्श से अधिक शोर है। शिवमूर्ति इस कोलाहल से दूर रहकर अपनी रचनाओं में दलित और स्त्री-जीवन के विविध आयामों की पड़ताल करते हैं। दलित और स्त्री ही नहीं किसान और गरीब, इन सबके साथ दुख-दर्द से कथाकार शिवमूर्ति ने अपने कथा-साहित्य का ताना-बाना बुना है। कहा जा सकता है वे किसी जाति या वर्ग के नहीं समस्त वंचित, उपेक्षित और सदियों से शोषित समाज की पीड़ा को अनुभूति के स्तर पर अभिव्यक्त करने वाले कथाकार हैं।

‘मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है’ शीर्षक निबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-“मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है। मैं अनुभव करता हूँ कि हम लोग एक कठिन समय के भीतर से गुजर रहे हैं। आज नाना भाँति के संकीर्ण स्वार्थों ने मनुष्य को कुछ ऐसा अंधा बना दिया है कि जाति-धर्म-निर्विशेष मनुष्य के हित की बात सोचना असंभव-सा हो गया है। ऐसा लग रहा है कि किसी विकट दुर्भाग्य के इंगित पर इस दलगत स्वार्थ से प्रेम ने मनुष्यता को दबोच लिया है।¹⁸ इस जाति-धर्म, ऊँच-नीच के भेद ने मनुष्यों को बाँट रखा है तो अन्याय, शोषण और प्रपंच के कारण अधिसंख्य सामाजिक- संसाधन से वंचित हैं। “हमारा देश जाति-भेद का देश है। करोड़ों मनुष्य अकारण अपमान के शिकार हैं। निरन्तर दुर्व्यवहार पाते रहने के कारण उनके अपने मन में हीनता की गांठ पड़ गई है। यह गांठ जब तक निकल नहीं जाती, तब तक भारतवर्ष की आत्मा सुखी नहीं रह सकती। कर्म का फल तो मिलता ही है। उससे बचने का

उपाय नहीं है। जिन लोगों का अकारण अपमान के बन्धन में डालकर हमने अपमानित किया है, वे लोग सारे संसार में हमारे अपमान के कारण बने हैं। हमें सावधानी से उनकी वर्तमान अवस्था का कारण खोजना होगा।”⁹ स्वतंत्रता प्राप्ति से सामाजिक जीवन में व्याप्त जिन विषमताओं से मुक्ति का स्वप्न असंख्य लोगों ने देखा था, वह अब तक साकार नहीं हो सका है। शोषण व अन्याय का रूप और अधिक महीन हो गया है। महाजनों से भी क्रूर सरकारी बैंकों का आचरण अब आतंकित करने लगा है। ऋण न चुका पाने के भय से लाखों किसान अब तक आत्महत्या कर चुके हैं। शिवमूर्ति ने कृषक जीवन की इस त्रासदी को अपने उपन्यास ‘आखिरी छलांग’ में उजागर किया है। भूमण्डलीकरण के डेढ़-ढाई दशकों में कृषि के परम्परागत साधन बैल, हल की जगह ट्रैक्टर, अधिक उपज के लिए उन्नत बीज, सिंचाई, खाद और कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ा है। हरित क्रांति के लिए किसानों द्वारा लिया गया कर्ज आज उनके गले का फंदा बन गया है। शिवमूर्ति इस त्रासदी को उजागर करते हुए कहते हैं- “किसान किस-किससे विद्रोह करे, किस-किससे लड़े? उसका दुश्मन तो सारा जमाना है। लुटेरों से लड़ा, राजे-महाराजाओं से लड़ा, नवाबों से लड़ा, जमींदारों से लड़ा, सब उसका खून पीकर मोटे हो गए और वह ठठरी मात्र रह गया।”¹⁰

कथाकार शिवमूर्ति का किसान-जीवन पर केन्द्रित उपन्यास ‘आखिरी छलांग’ स्वतंत्रता प्राप्ति के छह दशक बाद सन् 2008 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कर्ज के बोझ तले पिसते विवश और असहाय सरकारी तंत्र के मकड़जाल में फँसे आम भारतीय किसान की व्यथा-कथा है। स्वतंत्र भारत में भी किसानों की शोषण-दमन की नियति परिवर्तित नहीं हो सकी है। ‘गोदान’ के रचनाकार का सेठ, साहुकार और जमींदार का शोषण-तंत्र स्वाधीन भारत के सरकारी बैंकों तथा अफसरशाही की लूट-खसोट के रूप में रूपान्तरित हो गया है। पहले वे महाजन और जमींदारों के शोषण-दमन के शिकार थे, जबकि आज बैंकों के ऋण के मकड़जाल में फँसकर आत्महत्या करने के लिए विवश हैं। प्रसिद्ध चिंतक और आलोचक रविभूषण भारतीय किसानों की भयावह दुरावस्था को प्रकट करते हुए कहते हैं- “स्वतंत्रता के बाद भारतीय किसानों की नियति निरंतर बदतर होती गयी है। कृषि प्रधान देश भारत अभी तक उद्योग और पूंजीप्रधान नहीं हो सका है, साठ प्रतिशत से अधिक आबादी आज भी गाँवों में निवास करती है। उद्योगपतियों और पूंजीपतियों के हित में नीति-निर्धारण करनेवाली सरकारों ने किसानों की समस्याओं से आँखें फेर ली हैं। एक दिन में चालीस अधिक किसान आत्महत्या कर रहे हैं।”¹¹ किसानों की तरह ही शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में स्त्री-जीवन की पीड़ा भी अभिव्यक्त हुई है। स्त्री-जीवन उनके कथा-साहित्य में वर्तमान स्त्री-विमर्श से कई मायने में भिन्न है। ये ग्रामीण-समाज की स्त्रियाँ हैं, जिनमें अधिकतर पढ़ी-लिखी नहीं हैं, परन्तु इनमें प्रतिरोध का साहस है। अपने श्रम और संघर्ष से ये पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता को कड़ी चुनौती देती हैं। अपने संघर्ष में ये स्त्रियाँ पराजित होकर भी शोषण, अन्यायकारी और परंपरावादी सोच पर कड़ा प्रहार करती हैं। इनका संघर्ष पाठकों के मन-मस्तिष्क में गहरी गूंज में सदा के लिए अंकित हो जाता है। “चाहे वह ‘कसाईबाड़ा’ की शनिचरी, लीडराइन या परधानिन हो, ‘तिरिया चरित्तर’ की विमली हो, ‘अकाल-दंड’ की सुरजी हो, ‘सिरी उपमा जोग’ की ममता हो, ‘केशर-कस्तूरी’ की केशर हो या ‘भरतनाट्यम’ की देहाती पत्नी, ये सभी ऐसे स्त्री कथा-पात्र हैं जो एक ऐसे समाज में रहते हैं, जहाँ उनके हिस्से में बस गरीबी है, अभाव है, भूख है, शोषण है, प्रेम की सीमित अभिव्यक्ति एवं वासना से प्रेरित छल-कपट है, रिश्तों की कड़वाहट है, आत्मसम्मान बचाने की लालसा है, प्रतिरोध

है, पराजय है, सामाजिक पतन है।”¹² यह अनायास नहीं है कि शिवमूर्ति की अधिकांश कथा-रचनाओं में स्त्री-जीवन की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। उनकी रचनाओं के ये स्त्री कथा-पात्र हमारे समाज में चारों तरफ उपस्थित हैं। इनकी आहें आज भी सामाजिक वातावरण में गूंज रही हैं। समाज से गहरे जुड़े कथाकार शिवमूर्ति इन स्त्री-पात्रों से भली-भाँति परिचित हैं। इनकी दुरावस्था के प्रति उनके मन में गहरा क्षोभ है, जो उनके कथा-साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है।

कथाकार शिवमूर्ति सामाजिक सरोकार के रचनाकार हैं। अपने उपन्यास ‘तर्पण’ में उन्होंने सदियों से शोषित, पीड़ित, दलित समाज द्वारा सवर्ण मानसिकता के विरुद्ध प्रतिरोध को उजागर किया है। सवर्ण वर्ग आज भी उनके श्रम का शोषण ही नहीं, दलित वर्ग की स्त्रियों का यौन-शोषण भी अपना अधिकार समझता है। उपन्यास का आरंभ सवर्णों और दलितों के बीच कम मजदूरी को बढ़ाये जाने के लिए हुए संघर्ष से शुरू होकर पियारे की बेटी रजमतिया पर बुरी निगाह रखने वाले पंडित के बेटे द्वारा बलात्कार के कोशिश के कारण दलित समाज में उत्पन्न आक्रोश के बड़े कैनवास पर फैल जाता है। इसी कारण रजमतिया की बड़ी बहन आत्महत्या करने के लिए विवश हुई थी। “तर्पण” हिन्दू समाज की वर्णश्रम व्यवस्था की सड़ी-गली मान्यताओं को परत-दर-परत उघाड़ देता है। इस उपन्यास में ‘बड़गाँव एक ऐसा गाँव है जहाँ ठाकुरों बाभनों के सैकड़ों सालों से चल रहे शोषण को दर्शाया गया है। बड़ी जातियाँ दलित स्त्रियों के यौन शोषण को हथियार के रूप में इस्तेमाल करती हैं। उनकी नजर में दलितों का कोई सम्मान नहीं है।’¹³ पहले इस तरह की घटनाओं को कमजोर दलित समाज अपनी नियति मानकर चुपचाप अपमान का विष पी लेता था। अब दलित समाज भी अपने आत्मसम्मान के प्रति जागरूक हुआ है, अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने लगा है।

‘तर्पण’ दलित मुक्ति का महाख्यान है। रजमतिया के साथ बलात्कार की कोशिश करने वाले सवर्ण जाति के युवक चन्दर की नाक पियारे का बेटा मुन्ना काट लेता है तो पियारे को लगता है जैसे उसकी बड़ी बेटी के साथ हुए जुल्म का बदला ले लिया है- “उस बार बेटी की लाश जब कुएं से निकाला था तो मन ही मन कसम खाई थी कि बेटी का सर्वनाश करनेवाले का पता लगाकर.....। लेकिन कुछ नहीं कर पाया। कब से जोर जुल्म सह रही है उसकी जाति। पीढ़ियाँ गुजर गईं सहते-सहते।”¹⁴ पियारे अपने पुत्र का अपराध अपने ऊपर लेकर थाना जाकर समर्पण कर देता है। वकील द्वारा अपने बचाव के तर्क को अस्वीकार कर वह कहता है- “नहीं वकील साहब ! मुझे जेल जाना है। जेल की रोटी खाकर पराश्रित करना है। इस पाप का पारश्रित कि कान-पूँछ दबाकर इतने दिनों तक उन लोगों का जोर-जुल्म सहता रह गया।”¹⁴ सदियों से सवर्ण वर्ग का शोषण, दमन और अपमान का दंश भी रहे दलित समाज के प्रतिरोध का मुखर स्वर ‘तर्पण’ में अभिव्यक्त हुआ है।

आज देश की एक बड़ी समस्या सांप्रदायिकता का फैलता जहर है, जिसने सामाजिक सद्भावना को तार-तार कर दिया है। सामान्य लोग आज भी आपस में मिलजुल कर रहना चाहते हैं, पर कुछ संकीर्ण मानसिकता के लोग झूठी अफवाहें फैलाकर, घृणा और नफरत का वातावरण बनाकर समाज को बांटने की साजिश कर रहे हैं। जिसके कारण देश में समुदायों के बीच अक्सर दंगा-फसाद होते रहते हैं, जिनमें अब तक हजारों निर्दोष लोगों की अकारण जानें गई हैं और एक-दूसरे के प्रति अविश्वास का भाव पनपा है। धार्मिक विद्वेष और भय के इस भयावह दौर में “लघु कलेवर में लिखा गया शिवमूर्ति का ‘त्रिशूल’ उपन्यास

साम्प्रदायिकता की विद्रूपता को उकेरने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद के मसले को लेकर हिन्दू और मुसलमान द्वेष, वैमनस्य और हिंसा-भाव से कितना उत्पन्न हो उठा है कि प्रेम, सौहार्द, सहयोग और बन्धुत्व की भावना उनके लिए बेमानी हो गई है कि वे हिंसक पशु की तरह क्रूर और बर्बर हो एक-दूसरे को नोच खाने के लिए मौके की तलाश में इस तरह बेखौफ और स्वच्छन्द घूम रहे हैं कि हिन्दू मुहल्ले का मुसलमान तथा मुस्लिम मुहल्ले का हिन्दू भय, आतंक, असुरक्षा के मद्देनजर किंकर्तव्यविमूढ़ है इस पर तीक्ष्ण दृष्टि उपन्यासकार की गई है।¹⁶ साम्प्रदायिकता के कारण किस प्रकार मनुष्य की संवेदना और जीवन-मूल्यों का क्षरण हुआ है, कथाकार शिवमूर्ति ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

उपन्यास में एक हिन्दू परिवार में वर्षों से काम कर रहा महमूद इस धार्मिक विद्वेष का शिकार बन जाता है। वह हिन्दू परिवार में इस तरह घुल-मिल गया था मानों इस परिवार का ही सदस्य हो। उसे परिवार का स्नेह प्राप्त है परन्तु मुहल्ले के संकीर्ण मानसिकता के हिन्दुओं को उसका मुसलमान होना अखर जाता है। उसे नौकरी छोड़कर जाना पड़ रहा है, महमूद नौकरी छोड़कर अपने घर वापस जा रहा है, पूरा परिवार उसे भरे मन से विदा कर रहा है। जिस परिवार में उसे अब तक कभी यह नहीं प्रतीत हुआ कि वह मुसलमान है जो किसी हिन्दू परिवार में नौकरी कर रहा है, यह आत्मीय संबंध साम्प्रदायिकता की तेज लपटों से झुलस चुका है। “लगता है महमूद के साथ ही हमारे युगों-युगों से संचित सहिष्णुता, उदारता और विश्व-बंधुत्व की पूंजी आज इस घर को हमेशा-हमेशा के लिए अलविदा करके जा रही है।”¹⁷ घृणा और विद्वेष का ‘त्रिशूल’ मानवीय संवेदना को क्षत-विक्षत करता हुआ पाठकों के मन में हमेशा के लिए गड़ जाता है। “साम्प्रदायिकता वह व्यवसाय है जिसके लिए सबसे मुफीद परिस्थिति होती है अनजानापन, इसी आधार पर अफवाहों के सहारे वह विस्तार पाती है। दोनों संप्रदायों के बीच आवाजाही इसके लिए घातक होती है। ‘त्रिशूल’ उत्तम पुरुष में लिखा गया उपन्यास है, इसलिए घटनाएँ महमूद के साथ घटती हैं, संत्रास लेखक और उसका परिवार भोगता है।”¹⁸ साम्प्रदायिकता के विष को समाप्त करने के लिए ‘त्रिशूल’ एक जरूरी उपन्यास है।

शिवमूर्ति सामाजिक सरोकार को सहेजने वाले कथाकार है। असमानता, सामाजिक विषमता, शोषण, अन्याय और उपेक्षा से प्रताड़ित मनुष्यता के पक्षधर शिवमूर्ति का कथा-साहित्य मनुष्य की मुक्ति का आख्यान है। “अगर हमारे समय और समाज को समझना है, लोगों को समझना है तो इसके लिए शिवमूर्ति जी एक आवश्यक कहानीकार हैं। उन्हें पढ़ना हमारे समाज को समझना है, लोगों को समझना है। शिवमूर्ति जी का दर्जा काफी ऊँचा है। वे शीर्ष रचनाकारों में एक हैं। हिन्दी साहित्य उन्हें उसी रूप में याद रखेगा।- (असगर वजाहत)”¹⁹ शिवमूर्ति के कथा-साहित्य की विवेचना करते हुए विद्वान आलोचक उमेश चौहान कहते हैं- “यहाँ लक्ष्य बड़े नहीं हैं, किन्तु आशय बड़े हैं। यहाँ अन्याय व शोषण के खिलाफ प्रतिरोध का दायरा व्यापक नहीं है, किन्तु अद्भुत गहराई है। यहाँ शक्ति के संचयन, सुनिश्चित संघर्ष और जीत हासिल करने का कोई रोडमैप नहीं है, किन्तु ये आख्यान अनुभूति की महसूस, अभिव्यक्ति की उनमुक्तता, प्रतिवार की तीक्ष्णता व यथार्थ सत्यापन से ओत-प्रोत है।”²⁰ उनका कथा-साहित्य हमारे सामाजिक-जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज है।

अपनी जीवंतता और सामाजिक जन-जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के कारण उनकी अनेक कहानियों के नाट्य रूपांतर भी हुए हैं और उनका मंचन देश के विभिन्न राज्यों

में हुआ है। अनेक रचनाओं पर फिल्मों का निर्माण हुआ है। देश-विदेश की अनेक भाषाओं में उनका कथा-साहित्य अनुदित होकर लाखों पाठकों तक पहुँचा है। सामाजिक यथार्थ और किस्सागोई के योग से अपनी कथा-रचनाओं का ताना-बाना बुननेवाले कथाकार शिवमूर्ति आधुनिक हिन्दी साहित्य को नया आयाम प्रदान करनेवाले अन्यतम रचनाकार हैं।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. इंडिया इनसाइड (साहित्य वार्षिकी-2016), संपादक-अरुण सिंह
सम्पादकीयकार्यालय-एल-1/57, सेक्टर-बी, अलीगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226024, अंक-
साहित्यवार्षिकी-2016, पृष्ठ-99
2. वही, पृष्ठ-121
3. केशर कस्तूरी (कहानी संग्रह), -शिवमूर्ति
प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1-बी, नेताजी सुभाषमार्ग, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002, दूसरा संस्करण : 2015, पृष्ठ-122
4. वंचितों के प्रवक्ता : शिवमूर्ति - संपादक-संजय नवले
प्रकाशक-अमन प्रकाशन, 104-ए/80 सी रामबाग, कानपुर-208012 (उ.प्र.)
संस्करण : प्रथम, सन् 2019, पृष्ठ-07
5. सृजन का रसायन-शिवमूर्ति
प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,
नईदिल्ली-110002, पहला संस्करण: 2014, पृष्ठ-121
6. वही, पृष्ठ-121
7. अशोक के फूल-हजारी प्रसाद द्विवेदी
प्रकाशक-लोकभारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, चौदहवां संस्करण
: सितम्बर 1982, पृष्ठ-164
8. वही, पृष्ठ-148
9. वही, पृष्ठ-151
10. इंडिया इनसाइड (साहित्य वार्षिकी-2016), संपादक-अरुण सिंह, पृष्ठ-118
11. नया ज्ञानोदय, संपादक-रवीन्द्र कालिया
प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नयी दिल्ली-110003, अंक-फरवरी 2009, पृष्ठ-179
12. सृजन, समाज और संस्कृति- उमेश चौहान
प्रकाशक-साहित्य भंडार, 50, चाहचंद, इलाहाबाद-211003
प्रथम संस्करण : 2014, पृष्ठ-35
13. वंचितों के प्रवक्ता : शिवमूर्ति, संपादक-डॉ. संजय नवले
प्रकाशक-अमन प्रकाशन, 104-ए/80 सी रामबाग, कानपुर-208012 (उ.प्र.)
संस्करण : प्रथम, सन् 2019, पृष्ठ-120
14. तर्पण- शिवमूर्ति
प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002, पहला संस्करण : 2010, पृष्ठ-112
15. वही, पृष्ठ-116
16. कथाकार शिवमूर्ति, संपादक-डॉ. कृष्ण कुमार श्रीवास्तव,
प्रकाशक-मानव प्रकाशन, 131, चितरंजन एवेन्यू, कोलकाता-700073, प्रथम संस्करण :
2017, पृष्ठ-116
17. त्रिशूल - शिवमूर्ति, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष
मार्ग, दरियागंज, नईदिल्ली-110002, पहला संस्करण : 2012, पृष्ठ-104

18. मंच, अतिथि संपादक- संजीव, संपादक-मयंक खरे
संपादकीय कार्यालय-ए-56, इंदिरा नगर, बांदा-210001,
अंक-जनवरी-मार्च 2011, पृष्ठ-76
19. संवेद-73-75, संपादक-किशन कालजयी,
संपादकीय संपर्क- एफ-3/78-79, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089, अंक : 2-4,
फरवरी-अप्रैल, 2014, पृष्ठ-243
20. लमही (शिवमूर्ति विशेषांक), सं.-सुशील सिद्धार्थ
संपर्क-3/343, विवेक खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010, अंक-अक्टूबर-दिसम्बर,
2012, पृष्ठ-57

अज्ञेय के उपन्यासों में भारतीयता

• अमलेन्दु कुमार अंजन

सारांश- जब मानव सर्वनाश की ओर अग्रसर होगा तभी उनके संरक्षण के लिए नूतन दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता होगी। प्रकृति को अपने प्राण में समाकर असाध्य वीणा का वादन करने वाला साधक भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता का परिचायक है। एकांत साधना बड़ी बात है, पर समूह को साथ लेकर चलना ही मानवता के लिए श्रेयष्कर है। प्रकृति के प्रत्येक अंग के सौंदर्य में अज्ञेय ने नूतनता की खोज की है। 'कलगी बाजरे की', 'नदी के द्वीप', 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे' जैसे उपमानों का प्रयोग करने वाले अज्ञेय हिन्दी साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं।

मुख्य शब्द-अज्ञेय, उपन्यास, वायुपुराण, भारतीय संस्कृति, अधुनातन, अध्यात्म

भारतीय एक भाववाचक संज्ञा है, जो भारत शब्द से बना है। भारत वह भू-खण्ड है, जिस पर भरत ने राज किया था और जिसकी सीमा का वर्णन करते हुए वायुपुराण (45-75) कहता है कि समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में जो वर्ष अर्थात् भूभाग है, वह भारत है, जहाँ भारती प्रजा निवास करती है। इस भारती प्रजा की जो विशिष्टता है, उसे भारतीयता कहते हैं। इसे भारतीय संस्कृति के नाम से भी पुकारा जाता है। यह भारतीयता स्वयं में एक जीवन दर्शन है, जीने की कला है, जो बिना किसी भेद-भाव के समूची मानव-जाति के उपयुक्त है। भारतीयता का अर्थ है भारत की समग्र परम्परा, भारत वर्ष का सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास, भारत वर्ष की पुरातन, अधुनातन पृष्ठभूमि, भारतवर्ष की संवेदना, भारतवर्ष की कला, भारत वर्ष का साहित्य। इन सबमें एक ही भाव है, जो भारतवर्ष के प्राचीन और भारत के अध्यात्म जीवन से जोड़ता है। भारतीयता पूरे इतिहास का निचोड़ है, हमारे दर्शन का निचोड़ है, हमारे जीवन के आदर्शों का प्रतीक है। भारतीयता एक ऐसी चीज है, जिसे पहचाना तो जा सकता है, महसूस भी किया जा सकता है किन्तु उसे शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता।

भारतीयता अत्यन्त व्यापक है। यह किसी एक धर्म, एक सम्प्रदाय, एक वर्ण या समुदाय पर आधारित नहीं है। भारत एक देश का नाम है। भारत में निवास कर रहे सभी व्यक्ति भारतीय हैं, इस कारण यहाँ के सभी निवासियों के धर्म, पंथ, विचारधारा भाषा का समन्वित नाम है, भारतीयता या ये कहें कि ये सब भारतीयता के अन्तर्गत हैं। भारतीयता से एक ध्वनि यह भी निकलती है - भारतीय जिन्हें भारत से प्रेम है, जो भारत के लिए समर्पित हैं, जिनमें भारत के प्रति निष्ठा है।

डॉ. लक्ष्मीकांत सिंधवी ने अपनी पुस्तक 'भारत और हमारा समय' में लिखा है कि "भारतवर्ष एक सनातन चिंतन, सनातन विचार, सनातन दृष्टि, सनातन प्रचार और सनातन यात्रा-पथ भी है। भारत मात्र एक भू-खण्ड ही नहीं, केवल एक भौगोलिक इकाई ही नहीं, केवल एक राजनीतिक सत्ता ही नहीं बल्कि मनुष्य की मनुष्यता का अभिषेक है। भारतीयता

• विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

की यह कल्पना धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। इसकी अनुभूति मुझे तब और भी गहरी हुई जब मैं सात वर्ष तक ब्रिटेन का उच्चायुक्त रहने के बाद भारत लौटा। जब लौटा तो मैंने एक बात परिहास में कहा था कि बाहर तो मैंने अप्रवासी भारतीय कई देखे हैं, उनसे मिलन हुआ है और उसकी भारतीयता से मैं बहुत गहरे तक प्रभावित भी हुआ हूँ, किन्तु यहाँ आकर एक बड़ी दुखद और दयनीय त्रासदी मुझे दिखाई देती है कि भारत वर्ष में ही कई प्रवासी अभारतीय हैं। सच बात यह है कि आजादी से पहले भी इतनी विकृतियाँ नहीं थी, जितनी आज हैं। हमारी भाषा का, हमारी राष्ट्रियता का जो आत्मसम्मान था, जो प्रतीति थी, जो अस्मिता अनुभूति थी, उसे हम भूलते जा रहे हैं। यह एक बड़ी कष्टमय स्थिति है। आनेवाली पीढ़ी किस सांस्कृतिक पौष्टिक आहार पर बन रही है? समझ नहीं आता। उसका सांस्कृतिक पौष्टिक बहुत कम भारतीय है। इसका कारण हमारी नीतियों में कमियाँ हैं। हमने अपनी नीतियों में बहुत सारी बातें जोड़ी हैं। हमने बच्चे पर काफी बोझ भी बढ़ा दिया है। किन्तु उन सब में भारतीयता की कमी है। संस्कृत भाषा को ही लें मेरी संस्कृत में बहुत निष्ठा है और मान्यता है कि संस्कृत भाषा के बिना भारत की सम्पूर्ण अनुभूति जरा मुश्किल से होती है।¹

डॉ. सिंधवी के विचारों का अनुक्रम में देखे तो हमारा देश एक इन्द्रधनुष है और साम्राज्य रहा है। भौगोलिक अखंडता हमारा नागरिक कर्तव्य है और वह हमारी संस्कृति और राजनीति से अलग नहीं है। किन्तु उससे भी कहीं परे, उससे भी कहीं अधिक, एक अपेक्षित है, राष्ट्रियता से ओतप्रोत एक दृष्टि। राष्ट्रियता से ओतप्रोत 'दृष्टि' का अर्थ है – भारत के लाखों में अन्तर्निहित, अन्तर्भूत सम्बन्ध, उनके प्रति प्रतिबद्धता, उनके प्रति सेवा की भावना – सम्पर्क, सहयोग और संस्कार ये चारों हमारी संस्कृति के मूल मंत्र हैं। इस मूलमंत्र को मानते हुए अगर हम राष्ट्रीय जीवन का निर्माण करें और राष्ट्र के प्रति भक्ति, राष्ट्र के प्रति निष्ठा, श्रद्धा को लेकर चलें, तो हमारे राष्ट्रीय जीवन में एक नया अध्याय निश्चित रूप से शुरू हो सकता है।

आज कई तरह के खतरे हमारे ऊपर मंडरा रहे हैं। ये खतरे बौद्धिक भी हैं और सांस्कृतिक भी। सांस्कृतिक खतरा कोई भौगोलिक खतरे से कम नहीं होता। भाषा का लुप्त हो जाना कोई कम खतरा नहीं है। अपने पंथों अथवा संप्रदायों की जानकारी न होना भी एक खतरा है। अपनी मान्यताओं के लिए निष्ठा न करना हो तो, उसकी संस्कृति नष्ट कर दी जाए। उसकी भाषा नष्ट कर दी जाए, अपने-आप वह समाज और जाति नष्ट हो जाएगी। हममें इतनी सामर्थ्य तो है कि हम इन खतरों का सामना कर सकें किन्तु इसके लिए इच्छाशक्ति होनी चाहिए। संकल्प होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने भी यही कहा था कि हमारे यहाँ सामर्थ्य की कमी नहीं है। संभावनाओं की हमारे यहाँ कमी नहीं है, कमी है संकल्प की, कमी है समर्पण की। ये सब भावनाएँ जगाने के लिए हमें अभियान चलाना होगा। इसके लिए लोगों को तैयार करना होगा। इसमें बहुत सारे लोग ऐसे हैं, जो इस बात को जानते हैं और तरीके से इसे आगे बढ़ा भी रहे हैं। एक दीप से हजारों दीप जल जाते हैं और ऐसे दीप जलेंगे इसे कोई रोक नहीं सकता।² भारत वर्ष का भविष्य बनाना है और वह भविष्य सांस्कृतिक दृष्टि पर आधारित होगा, भारतीयता पर आधारित होगा।

उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' में उपन्यासकार पात्रों के माध्यम से क्षण अर्थात् काल पर चर्चा करते हैं जो दृष्टव्य है – "हम समय की बात करते हैं, जो कि एक प्रवाह है। किसका प्रवाह है? क्षण का। लेकिन क्या है? यह जानने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है।"³

इस प्रसंग में उपन्यासकार का ध्यान केवल क्षण अर्थात् ईश्वर की ओर है। ईश्वर का निवास भी जो प्रत्येक घटते क्षण में होता है। समय की गणना करना और उस समय में स्वयं

को जीना ही तो भारतीयता की विशिष्ट कला है। समयानुसार स्वयं को ढालना भी मानवता का लक्षण है। जहाँ हम देखते हैं मेरे पास अब कोई चारा/उपाय शेष नहीं है तो अनायास ही ईश्वर की याद आती है यही तो भारतीयता है, वहीं पर आगे उपन्यासकार समय का अनुभव कराते दृष्टिगोचर होते हैं- “समय मात्र अनुभव है, इतिहास है। इस संदर्भ में ‘क्षण’ वही है जिसमें अनुभव तो है लेकिन जिसका इतिहास नहीं है, जिसका भूत-भविष्य कुछ नहीं है, जो शुद्ध वर्तमान है, इतिहास से परे, स्मृति के संसर्ग से अदूषित संसार से मुक्त। अगर ऐसा नहीं है, तो वह क्षण नहीं है, क्योंकि वह काल का कितना ही छोटा खण्ड क्यों न ही उसमें मेरा जीना काल-सापेक्ष जीना है, ऐतिहासिक जीना है। वह बिन्दु नहीं है वह रेखा है, रेखा परम्परा है और क्षण परम्परायुक्त होना चाहिए।”⁴⁴

यहाँ पर भी भारतीयता का प्रदर्शन करते हुए उपन्यासकार कहना चाहते हैं कि समय अर्थात् ईश्वर अनुभव के लिए है। समय-सापेक्ष में ईश्वर का साक्षात्कार हो जाना अत्यंत दुर्लभ है। मानव जीवन का कोई एक क्षण भी ईश्वर-सापेक्ष हो जाए तो जीवन कृत-कृत हो जाएगा। कथापात्र सेल्मा के जरिये इस प्रसंग में स्पष्ट किया गया है कि काल चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो उस छोटे से काल में भी भगवान की स्मृति को संजोकर रखा जा सकता है; क्योंकि प्रत्येक काल में क्षण में स्वयं ईश्वर का ही वास है।

‘अज्ञेय’ क्षणवादी हैं। वे क्षण में काल की संभावना स्वीकारते हैं। क्षणों के आग्रही हैं। क्षण में सब कुछ समेटना चाहते हैं। क्षणवादी दर्शन से प्रभावित अज्ञेय संवेदना पूर्ण क्षणों के दिनों से, वर्षों तथा युगों से भी महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका निष्कर्ष भी यही रहा है कि जीवन की सुख तथा समृद्धि व तृप्ति देनेवाला एक क्षण शेष जीवन से महत्वपूर्ण है-

“एक क्षण। होने का
अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण
होने के सत्य का
सत्य के साक्षात् का
क्षण के अखण्ड पारावार का
आज हम आचमन करते हैं।”⁴⁵

सत्य का साक्षात्कार हो जाने मात्र के लिए केवल एक क्षण ही पर्याप्त है। इहलोक से परलोक को सिधारने के लिए भी केवल समय का एक टुकड़ा ही काफी है। वास्तव में अज्ञेय कवि से पहले उपन्यासकार ही हैं। उनका कवि रूप जब चर्चित हुआ, उसके पहले वे उपन्यासकार के रूप में ‘शेखर’ के माध्यम से लोगों के सामने उपस्थित थे। कवि की भाँति उन्होंने उपन्यास के क्षेत्र में पहले अन्वेषण किये, राहों का अन्वेषण, शेखर का अन्वेषण। यह कार्य जैनेन्द्र कुमार और इलाचन्द्र जोशी ने भी किया। किन्तु वे अज्ञेय न हो सके। अज्ञेय का चिंतन मौलिक तथा उनके अनुभवों पर आधारित चिंतन था। तभी तो डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है - “मनोगुफाओं की तह में इतना गहरा घुसने वाला कलाकार हिन्दी उपन्यास ने दूसरा नहीं पैदा किया।”⁴⁶ हिन्दी में आधुनिकता के आयामों को उतारने वाले आरंभिक दौर के उपन्यासकारों में अपनी कुछ अन्यतम विशेषताओं के कारण अज्ञेय हमें सबसे अधिक आकर्षित करते हैं। उनकी रचनाओं के केन्द्र में व्यक्ति है। वह व्यक्ति स्वतंत्र है, बुद्धिजीवी है, चिंतनशील है, अपना मान-सम्मान है, गंभीर है और सबसे बड़ी बात है कि वह विद्रोही है। “अज्ञेय का यह व्यक्ति बाहर की व्यावहारिक दुनिया से अधिक, भीतर की दुनियाँ से मनोवैज्ञानिक स्तर पर जुड़ा है और पश्चिम को महसूस करता है तथा कृतियों में जीता हुआ भी अपने पैरों को पूरब

की जमीन पर जमाये रखता है। ऐसे व्यक्ति केन्द्रीयता और वैयक्तिक यथार्थ दर्शन के प्रकाश में सृजन करने वाला आधुनिक उपन्यासकार अज्ञेय है।⁴⁷ "योके तुम्हारा ध्यान हमेशा मृत्यु की ओर क्यों रहता है? मुझको हठात गुस्सा आ गया। मैंने रूखाई से कहा, 'क्योंकि वही एक मात्र सच्चाई है- क्योंकि हम सबको मरना है।'⁴⁸

यहाँ पर अज्ञेय मानव की मृत्यु से साक्षात्कार कराते हुए दिखते हैं। भारतीय और वैश्विक पटल पर भी मृत्यु ही एक मात्र सत्य है। जो जीव पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। यहाँ पर 'श्रीमती एके लोफ' और 'योके' के आपसी बात-चीत के द्वारा उपन्यासकार भारतीयता का परिचय देते हुए कहना चाहते हैं कि मानव की अंतिम यात्रा मृत्यु ही है। जगत् में सभी प्रकार के कार्यों के उपरान्त एक मात्र सत्य मृत्यु ही है। जहाँ पर सत्य ही प्रधान्य हो वहाँ भारतीयता है। उपन्यास पात्र योके द्वारा सत्य का उद्बोधन हुआ है। वो सत्य की धारण करती है। 'चाणक्यनीतिदर्पणम्' में भी सत्य का वर्णन किया गया है -

"सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः

सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।"⁴⁹

जहाँ पर सत्य ही शिव हो वहाँ पर भारतीयता अनिवार्य रूप से है। भारतीय दर्शन आस्था पर आधारित है। मृत्यु को जीवन की अंतिम बिन्दु न मानकर एक नवीन जीवन की ओर प्रवेश में विश्वास रखते हैं। इसलिए भारतीय लोग मृत्यु को खुले शांत हृदय से वरण करने की क्षमता रखते हैं। ईश्वर के प्रति आस्थावादी लोग उनके जीवन पर ऐश्वरीय शक्ति के प्रभाव पर विश्वास रखते हैं, इसलिए रात्रि के समय में भी इन लोगों के मन में भय-भावना का इतना गहरा असर नहीं पड़ता जितना की अनास्थावादी लोग दिन के उजाले की अपेक्षा रात्रि के समय में भयभीत हो जाते हैं। हर पल उन्हें एक अजीब सा लगा रहता है। सेल्मा और योके पात्र को दिन और रात के अनुभव से परे रखकर एक ऐसी समतुल्य वातावरण में जहाँ बर्फ के घर में आवृत कर दोनों पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को स्थापित किया है। योके की मनः स्थितियों के माध्यम से उस वातावरण से भलीभाँति परिचित हो उठते हैं जैसे कि यह उदाहरण इसकी पुष्टि करता है - "लेकिन मैं जहाँ हूँ क्या सूर्य वहाँ सचमुच नहीं है? क्या काल वहाँ सचमुच नहीं है? क्या दावे से ऐसा न कह सकना ही मेरी यहाँ की समस्या नहीं है? मैं मानो एक काल-निरपेक्ष क्षण में टँगी हुई है- वह क्षण काल की लड़ी में से टूटकर कहीं छिटक गया है और इस तरह अन्तहीन हो गया है- अन्तहीन और अर्थहीन।"⁵⁰

दोनों पात्रों के विचार, दर्शन में भिन्नता है। योके युवा है, मृत्यु को जीवन की समाप्ति मानती है, मृत्यु के आगे जीव, जगत, जीवन, आत्मा, परमात्मा इन सबका कोई अर्थ नहीं है, इसलिए वह मृत्यु भय से आक्रांत है, जीवन को खुले रूप से भोग करने के बदले पल-पल मृत्यु का क्षण गिनती है। दूसरी ओर वृद्धा सेल्मा जो कि कैसर जैसे घातक बीमारियों से लड़ रही है, मृत्यु उसके दरवाजे पर खड़ी है फिर भी वह जीवन का भरपूर आनंद ले रही है। मृत्यु का सच्चे हृदय से स्वागत करने के लिए तैयार है, क्योंकि ईश्वर की सत्ता का अनुभव करने के लिए अनिवार्य है मृत्यु से पहचान कर लेना, इसमें ही भारतीय दर्शन की आस्था समाहित है, यही भारतीय दर्शन की विशेषता है, जिस प्रकार लोग मलिन वस्त्र को उतारकर नए वस्त्र धारण करते हैं, ठीक उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा में विलीन हो जाती है। जिस प्रकार पतझड़ के समय पेड़ से पुराने पत्ते गिर कर उसमें नए पत्ते अंकुरित होते हैं, ठीक उसी प्रकार किसी के मृत्यु में ही नवीन सृजन का स्वरूप विद्यमान रहता है।

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देहि।”¹¹

मनुष्य में विवेक होता है। उसमें अच्छे-बुरे का ज्ञान होता है। मरते समय तक वह इस विवेक से स्वतंत्र नहीं हो पाता। उसमें नीतिबोध का दबाव होता है। उसका मस्तिष्क अंतिम समय तक इस बोझ से दबा रहता है कि संसार में उसका सब कुछ करना बाकी रह गया है, क्योंकि उसके कार्यों को जीवन काल में पूर्णता कभी प्राप्त नहीं होती, इसलिए वह अपूर्णता का बोध लिये हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। विवेक के आधीन मनुष्य की मृत्यु में भी अपूर्णता रह जाती है। मृत्यु का अंतहीन क्रम संसार में निरंतर चलता रहता है। उपन्यास में इसे गहराई और पूर्णता के साथ व्यक्त किया गया है।

आसन्न-मृत्यु का बोध मनुष्य में उदासीनता का भाव भी उत्पन्न कर सकता है। कैसर से पीड़ित सेल्मा अपने भविष्य की बात पर कहती है “उस दृष्टि से तो मेरा भविष्य बहुत आसान है। कुछ भी जानने को नहीं है - न उत्कंठा है।”¹² काठघर में बंद दो अजनबी के साथ परस्पर सम्बन्ध यही तो भारतीयता है। आण्टी सेल्मा और युवती योके के बीच आपस में रहते हुए मानवीयता के आधार पर एक आपसी सम्बन्ध-सा हो जाता है। दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति सम्मान, सद्भाव उजागर होता है। दोनों एक दूसरे का ख्याल रखते हैं दुःख-सुख के भागीदार होते हैं। आपस में मतभेद भी होता ही फिर भी दोनों के एक-दूसरे के प्रति समर्पण का भाव रखते हैं। यही तो मानवता का निचोड़ है। भारतीय विचारधारा इस लोक को अंतिम सत्य नहीं मानती भौतिक जगत् इहलौकिक संसार भारतीय दृष्टि में सत्य तो है पर उसकी दृष्टि इसके मध्य से पारलौकिक सत्यों पर पहुँचने की रही है। यहाँ की संस्कृति स्वकेंद्रित नहीं है बल्कि स्व की राह से लेकर पर तक पहुँचने की रही है। इसमें उदारता, सहिष्णुता के साथ ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की चिंतन समाई हुई है। यहाँ न यह लोक अंतिम सत्य है न स्व आश्रित कर्मशीलता ही। श्रीरामचरितमानस में स्वयं तुलसीदास भी स्वीकारते हैं-

”परहित सरिस धर्म नहीं भाई।

पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।”¹³

”यों तो मैं भी नहीं कह सकती कि मैं जानती हूँ, कि मैं सचमुच मानती हूँ कि मैं मरनेवाली हूँ और तब मुझे ध्यान आता है कि तुम यहाँ उपस्थित हो - जब मैं अपने से अलग एक सजीव उपस्थिति के रूप में तुम्हारी बात सोचती हूँ - तब मुझे एकाएक निश्चित रूप से लगता है कि ईश्वर है - कि सजीव उपस्थिति का नाम ही ईश्वर है- कोई भी उपस्थिति ईश्वर है। क्योंकि नहीं तो उपस्थिति हो ही कैसे सकती है? मैं चुप रही, थोड़ी देर बाद उसने (आण्टी सेल्मा) फिर कहा, ‘एपिकानिया ईश्वर की पहचान का दिन है। मैं सोचती है कि कल मुझे वह दिख जाता, मैं भी उसे पहचान लेती।’¹⁴

ईश्वर से मिलन की आतुर प्रतीत होती आण्टी सेल्मा अपने एकांकी जीवन में अपने आस-पास उनको महसूस करती है। उसे लगता है कि हम दोनों के अलावे तीसरा भी कोई है, जो कण-कण में वास करता है। प्रत्येक जीव में ब्रह्म की खोज ही तो भारतीयता है। सम्पूर्ण जीव-जगत को ही ब्रह्म की संज्ञा देना ही अध्यात्म है। जहाँ अध्यात्म है, वहाँ भारतीयता है। सेल्मा के मन में मृत्यु का भय अवश्य है लेकिन फिर वह स्वीकारती है कि मृत्यु रूपी ईश्वर मेरे पास आयेंगे तो मैं उसे पहचान लूँगी। मानव को मानव के प्रति अगाध श्रद्धा, अटूट

विश्वास निश्छल प्रेम, निस्वार्थ भाव यही तो मानवता है।

उपन्यासकार अज्ञेय अपने पात्रों के माध्यम से मृत्यु, भय, ईश्वर, क्षण और आत्मबोध पर विशेष चर्चा किये हैं जिससे उनकी भारतीयता स्पष्ट रूप से दीखती है। अज्ञेय मूलतः मानव मूल्यों के अन्वेषक हैं और इस अन्वेषण के मूल में वे व्यक्ति को मानते हैं और उसके मन को मानते हैं। हर व्यक्ति को अपना जीवन दर्शन अपने जीवन से ही पाना होता है। अज्ञेय की दृष्टि में “चरम आवश्यकता के, चरम दबाव से, निर्णय करने की चरम आवश्यकता के क्षण में हर व्यक्ति अकेला होता है और उस अकेलेपन में वह क्या करता है, इसी में उसकी आत्मिक धातु की कसौटी है।”¹⁵

“लेकिन भ्रम भी क्या कम ईश्वर है? और ईश्वर की कौन सी पहचान हमारे पास है जो भ्रम नहीं है? जब ईश्वर पहचान से परे है तो कोई भी पहचान भ्रम है। ईश्वर को हम कैसे जान सकते हैं? जो हम जान सकते हैं वे गुण हैं – और गुण हैं इसलिए ईश्वर के तो नहीं हैं। हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते हैं अन्तिम और चरम और सम्पूर्ण और अमोघ नकार जिस नकार के आगे कोई सवाल नहीं है और न कोई आगे जवाब ही इसलिए मौत ही तो ईश्वर का एकमात्र पहचाना जा सकने वाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर-ज्ञान है, बाकी सब सतही बातें हैं और झूठ हैं।”¹⁶

सेल्मा की ये बातें सुनकर योके को अनुभव होता है, जैसे ये सारी बातें उसे ही लक्षित करके कही जा रही हैं। उसे क्षण भर के लिए आत्मग्लानि होती है, और फिर एक अबाध आक्रोश उसके मन में फूट पड़ता है – “मैं अगर ईश्वर को नहीं मान सकती तो नहीं मान सकती। और अगर ईश्वर मृत्यु का ही दूसरा नाम है तो मैं उसे क्यों मानूँ? मैं मृत्यु को नहीं मानती, नहीं मान सकती, नहीं मानना चाहती! मृत्यु एक झूठ है, क्योंकि वह जीवन का खण्डन है और मैं जीती हूँ और जानती हूँ कि मैं जीती हूँ। कभी ऐसा होगा कि जीती न रहूँगी, लेकिन जब नहीं रहूँगी तब जानने वाला भी कौन रहेगा कि मैं जीवित नहीं है, कि मैं मर चुकी हूँ? मौत दूसरों को ही हो सकती है, जिनका होना और न होना दोनों ही हम जान सकते हैं, या मानते हैं। लेकिन अपनी मृत्यु का क्या मतलब है? वह केवल दूसरे को देखकर लगाया हुआ एक अनुमान है, कि दूसरे के साथ ऐसा हुआ इसलिए हमारे साथ भी होगा। लेकिन दूसरे ने अपने होने को जैसा जाना, क्या हमने भी उसके होने को ठीक वैसा ही जाना? क्या ‘वह है’ और ‘मैं हूँ’ ये दोनों बुनियादी तौर पर अलग-अलग ढंग के अलग-अलग जाति के, अलग-अलग दुनियाओं के ही बोध नहीं हैं? ‘वह है’ के जोड़ का बोध यह भी है कि ‘वह नहीं है’ लेकिन ‘मैं हूँ’ के साथ उसका उल्टा कुछ नहीं है; ‘मैं नहीं हूँ’ यह बोध नहीं है बल्कि बोध का न होना है।”¹⁷

यहाँ पर योके स्वयं विचार करती है कि मृत्यु का दूसरा नाम ही ईश्वर है। ईश्वर से मिलन का मार्ग मृत्यु ही प्रशस्त करेगा। यदि ऐसा है तो मैं नकारती हूँ मृत्यु को। लेकिन अटल सत्य तो यह भी है कि मृत्यु तो आनी ही है। जिसमें जीवन है, उसकी मृत्यु आवश्यकसंभावी है। इसी उहापोह की स्थिति में बार-बार योके मृत्यु को झुठलाने का प्रयास करती है, वह मृत्यु को केवल परम्परा समझने का प्रयास करती है। दूसरों को मृत्यु आई है तो मुझे भी निश्चित रूप से आएगी यही तो परम्परा है। यही तो मानव का अन्तिम लक्ष्य है जिसे प्रत्येक मानव को प्राप्त करना हो होगा। चाहे वह जिस किसी भी स्थिति या परिस्थिति में ही क्यों न हो। इस संदर्भ में मृत्यु और जीवन के बीच का जो क्षण होता है उस पर विचार किया जाए तो पाश्चात्य जगत में इसे अस्वीकार किया जाता है, लेकिन

भारतीय परिवेश में इस क्षण का स्वागत किया जाता है। उसके स्वागत के लिए मंगलाचरण की भी व्यवस्था की जाती है। भारतीय स्पष्ट रूप से जानते हैं कि इस जगत में आये हैं तो जाना भी निश्चित है। मानव भी ईश्वर का ही एक अंश मात्र है फिर उसी प्रकाशमान ईश्वर में जाकर मिल जाना है। इसमें मृत्यु से भय की कोई बात ही नहीं है।

”सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो

वेदान्त कृद्वेदविदेव चाहम्॥⁴¹⁸

सभी प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से मैं ही निवास करता हूँ। सभी प्राणी मुझसे ही पल्लवित, पुष्पित, व फलित होता है। मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सभी वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। अज्ञेय के उपन्यास में पाश्चात्य का प्रभाव है, लेकिन भारत भूमि में जन्मे इस कलाकार के अन्दर भारतीय हृदय है। उस भारतीय हृदय में भारतीयता का बोध होना अवांछनीय है। मैंने ‘अपने-अपने अजनबी’ लघु उपन्यास में मौजूद भारतीयता को उकेरने का प्रयास किया है। कथाक्रम में चलने पर एक प्रसंग दृष्टव्य है, “जीवन सर्वदा ही वह अन्तिम कलेवा है, जो जीवन देकर खरीदा गया है और जीवन जलाकर पकाया गया है और जिसका साझा करना ही होगा क्योंकि वह अकेले गले से उतारा ही नहीं जा सकता – अकेले वह भोगे भुगता ही नहीं। जीवन छोड़ ही देना होता है कि वह बना रहे और मर-मरकर मिलता रहे; सब आश्वासन छोड़ देने होते हैं कि घुवता और निश्चय मिले और इतर सब जिया और भरा जा चुका है, सबकी जड़ में अँधेरा और डर है; यही एक प्रत्यय है जो नये सिरे से जिया जाता है और जब जिया जाता है तब फिर भरा नहीं जाता, जो प्रकाश पर टिका है जिसमें अकेलापन नहीं है ...”⁴¹⁹

यहाँ पर अज्ञेय जीवन-दर्शन पर चर्चा करते हैं। कथाकार कहते हैं कि जीवन ही अंतिम पाथेय है जिसे स्वयं को समर्पण कर प्राप्त किया जा सकता है। जीवन के प्रति समर्पण का भाव है, जहाँ मानव स्वयं का समर्पण कर दे वहाँ भारतीयता है। ‘मैं जीवित हूँ’ की अखण्ड अनुभूति तभी हो सकती है, जब व्यक्ति उसके प्रति चेतन न हो। क्योंकि कोई भी किसी प्रकार की भी आत्मचेतना अपने को अपनी अनुभूति से अलग कर देती है, तटस्थ कर देती है, साक्षी बना देती है, और जो साक्षी है वह भोक्ता कैसे है? जीवन की अनुभूति तभी हो सकती है जब अनुभव कर रहे होने का बोध न हो⁴²⁰ मानव में जीवन का अनुभव चेतन कराता है। चेतना की अवस्था में सम्पादित कार्य का एक रेखाचित्र मस्तिष्क में कैद हो जाती है जिसे चिरकाल तक संजोये रखा जा सकता है। जो ज्ञानयुक्त हो वही चेतना है। जिसमें चेतन का संचार हो जाता है वही प्राणी परमेश्वर की संज्ञा पा लेता है। सम्पूर्ण जीवन अनुभव करने के योग्य है। अनुभव से ही आत्मचेतन की प्राप्ति हो जाती है। चेतन की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति है जिसके आधार पर मानव विवेकशील होता है और परमेश्वर के प्रति आसक्त हो जाते हैं। प्रयोगवादी कलमकार अपने नित नवीन प्रयोग के आधार पर ‘अपने-अपने अजनबी’ लघु उपन्यास में जीवन और चेतना पर प्रकार डालते हैं। जीवन में चेतन की अवस्था अनिवार्य हो तभी जीवन मानवमूल्यों को आत्मसात कर सत्य-असत्य की पहचान करता है। जीवन में जितने भी कार्य करता है उसका साक्षी भी स्वयं होता है, क्योंकि जीवन जगत में किये गये सही-गलत कार्यों का भोक्ता भी वह स्वयं ही होता है। ‘भारतीयता’ यानि जड़ों के साथ पल्लवन-पुष्पण। यहाँ भारतीयता का अर्थ उस जातीय जीवन पद्धति से है जहाँ

सभी संस्कृतियों का सार समर्थन भी है। यह संकुचन नहीं हमारा विस्तारण है। यहाँ जब हम 'भारतीयता' शब्द पर विशेष जोर देते हैं तो इसे भूगोल के मन से नहीं अपितु मन के संपूर्ण भूगोल तक विचरण करके ही जाना जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. इन्द्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, दक्षिण भारत प्रचार सभा मद्रास, नगर चेन्ई, वर्ष 1983, पृ. 72
2. वहीं, पृ. 14
3. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण, वर्ष 2007, पृ. 19
4. वहीं पृ. 19
5. अज्ञेय, सदानिरा भाग-1, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष 1936 पृ. 283
6. डॉ. नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, प्रकाशक गौतम बुक डिपो, दिल्ली, पृ. 150
7. डॉ. हितेन्द्र मिश्र, अज्ञेय के उपन्यास, संजय बुक सेन्टर वाराणसी प्रथम संस्करण वर्ष 1987, पृ. 03
8. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण वर्ष 2007, पृ. 21
9. चाणक्य, चाणक्यनीतिदर्पणम् श्लोक 5/11
10. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण वर्ष 2007, पृ. 20
11. प्रभुपाद श्रीमद् एक्म्सी भक्ति वेदान्त स्वामी, श्रीमदभगवद्गीता यथारूप, प्रकाशक भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, 39 वाँ मुद्रण वर्ष 2008, श्लोक 2/22
12. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण वर्ष 2007, पृ. 20
13. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस (सचित्र, सटीक, मोटा टाइप) गीता-प्रेस, गोरखपुर उत्तर काण्ड दोहा 40 चौथाई 01
14. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण वर्ष 2007, पृ. 38
15. डॉ. केदारनाथ शर्मा, अज्ञेय के उपन्यास, रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर वर्ष 1996, पृ. 7
16. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण वर्ष 2007, पृ. 40
17. वहीं पृ. 41-43
18. प्रभुपाद श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी, श्रीमदभगवद्गीता यथारूप, प्रकाशक भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट 39 वाँ मुद्रण वर्ष 2008 श्लोक 15/15
19. अज्ञेय, अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण वर्ष 2007, पृ. 72
20. वहीं, पृ. 74

महात्मा गाँधी के विशेष संदर्भ में स्वच्छता का दार्शनिक विश्लेषण

• विवेकानन्द मिश्र

समकालीन भारतीय दर्शन में सामासिक संस्कृति के प्रतीक महात्मा गाँधी को माना जाता है। महात्मा गाँधी का बौद्धिक ज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञान अत्यन्त ही व्यापक और उदार था। बचपन से ही उन्हें धार्मिक वातावरण में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उस पारिवारिक वातावरण के कारण सहज ही रामायण, महाभारत एवम् भारतीय संस्कृति के अनेक गाथाओं से परिचित होने का अवसर मिला था। आगे चलकर नन्दन प्रवास और दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में उन्हें विश्व के महान विद्वानों तथा समाज सुधारकों के विचारों से अवगत होने का अवसर प्राप्त हुआ। दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के क्रम में उन्हें तत्कालीन प्लेग नामक बिमारी से परिचित होने का अवसर मिला और यही वह बिन्दु है जहाँ वे व्यावहारिक ज्ञान से परिचित हुए। इस महामारी में उन्होंने एक स्वयंसेवक की तरह दिन और रात प्लेग के रोगियों को बचाने में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। दक्षिण अफ्रीका में फैले इस बिमारी की अनेक कारणों में गंदगी भी एक कारण था। पश्चात् भारत लौटकर उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में एक कार्यकर्ता के रूप में वे क्रियाशील हुए। अधिवेशन में उन्होंने देखा कि शौचालयों में इस तरह की गंदगी थी कि किसी व्यक्ति को उसके भीतर जाने का मन नहीं कर सकता था। उन्होंने मौन होकर स्वयं तथा कुछ साथियों के साथ अति प्रातः शौचालयों को स्वच्छ करने का कार्य प्रारंभ किया। आगे चलकर स्वतंत्रता आन्दोलन के क्रम में ट्रेन के तृतीय वर्ग में यात्रा करते हुए भी अनुभव किया ट्रेन के बोगी में विचित्र प्रकार की गंदगी व्याप्त है। इन अनुभवों के कारण उन्होंने सोचा कि अधिकांश बिमारियों का कारण गंदगी है और गंदगी मनुष्य के लिए घातक है। इन अनुभवों के परिणामस्वरूप महात्मा गाँधी के 'स्वच्छता दर्शन' का विकास हुआ। गाँधी जी आरोप-प्रत्यारोप में विश्वास नहीं करते थे। वे जहाँ भी गंदगी देखते थे वहाँ वे स्वयं कुछ साथियों को लेकर स्वच्छ करने में सक्रिय हो जाते थे। उनकी यह भाव प्रबलता तथा कार्यों में तल्लीनता के कारण 'मेरा जीवन, मेरा संदेश' संबंधी विचार का उदय हुआ। महात्मा गाँधी अपनी आत्मकथा तथा अन्यत्र इस संदेश को अपने कार्यों के द्वारा अभिव्यक्ति करने में अभ्यस्त हो गये थे।

मुख्य शब्द- प्रवास, स्वच्छता, अभिव्यक्ति

यह तथ्य है कि स्वच्छता का दर्शन कोई नई उद्भावना नहीं है। परन्तु महात्मा गाँधी की यह विशेषता है कि उसके लिए उन्होंने पद्धति विकसित किया। समाज, व्यक्तियों के परस्पर संबंधों पर निर्भर करता है अर्थात् व्यक्ति ही समाज की ईकाई है। अतएव उनका जीवन दर्शन इस बात के लिए मनुष्य को प्रेरित करता था कि प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि मनुष्य जहाँ भी है वे स्वयं तथा वहाँ के वातावरण को स्वच्छ रखने के लिए कार्यशील हो जायें। स्वच्छता का दर्शन भारतीय संस्कृति के हरेक संस्कारों में आचारों में तथा व्यावहारिकों में परिलक्षित होता है। किसी भी तरह के मांगलिक कार्यों में, यज्ञों में, पूजा-अर्चनाओं में तथा सामान्य जीवन में भी स्वच्छता को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। वास्तविकता तो यह

• अतिथि व्याख्याता, दर्शनशास्त्र विभाग, आर.एन.ए.आर. कॉलेज समस्तीपुर

है कि लौकिक व्यावहारों में कोई भी महत्वपूर्ण कार्य स्वच्छता से ही प्रारंभ होता है। किसी पर्व अथवा त्योहारों में, यज्ञों तथा पूजा-अर्चनाओं में कार्य का प्रारंभ स्वच्छता से ही होता है। योगसूत्र के प्रणेता पतंजलि ने योग के अष्टांग सोपानों में यम और नियम को स्थान दिया है। इससे पूर्व ही वेद और उपनिषद् में भी पवित्रता को जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। श्वेताश्वर उपनिषद् में कहा गया है-

समे शुचौ शर्करावह्निवाल्का विवर्जिते शब्दजला श्रयादिभिः।

मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणेप्रयोजयेत्॥1

योग दर्शन में स्वच्छता को नियम में ही एक नियम के रूप में स्वीकार किया गया है। नियम से संबंधित योगसूत्र का निम्नलिखित सूत्र उल्लेखनीय है-

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानियमाः।2

जल, मृशिकादि के द्वारा शरीर, वस्त्र और मकान आदि के मल को दूर करना बाहर की शुद्धि है, इसके सिवा अपने वर्णाश्रम और योग्यता के अनुसार न्यायपूर्वक धन को और शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक अन्न आदि पवित्र वस्तुओं को प्राप्त करके उनके द्वारा शास्त्रानुकूल शुद्ध भोजनादि करना तथा सबके साथ यथायोग्य पवित्र बर्ताव करना-यह भी बाहरी शुद्धि के ही अन्तर्गत है। जप, तप और शुद्ध विचारों के द्वारा एवम् मैत्री आदि की भावना से अंतःकरण के राग-द्वेषादि मलों का नाश करना भीतर की पवित्रता है।

श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान महात्मा गाँधी के जीवन में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना जाता है। महात्मा गाँधी ने स्वयं एक अत्यन्त ही विलक्षण और व्यावहारिक पुस्तक की रचना की है। वे स्वच्छता के दर्शन की संकल्पना में भी श्रीमद्भगवद्गीता से अनुप्राणित हुए थे। श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि-

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥3

गीता के उपर्युक्त श्लोक में स्वच्छता के दर्शन के संबंध में 'शुचिर्दक्ष' अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। शुचिर्दक्ष में दक्ष शब्द का प्रयोग बहुत ही मार्मिक है। दक्ष का तात्पर्य कुशलता से होता है, अर्थात् मनुष्य को मात्र बाह्य पवित्रता पर ही ध्यान न देकर अंतःकरण की शुद्धता पर भी ध्यान देना चाहिए। गीता का स्पष्ट संदेश है कि मनुष्य का अंतःकरण निर्मल तथा पवित्र होना चाहिए। इसी प्रकार कुशलतापूर्वक बाह्य पवित्रता के लिए भी यत्नपूर्वक सचेत रहना चाहिए तथा कार्य करना चाहिए। वस्तुतः गीता का यह संदेश ही महात्मा गाँधी के स्वच्छता के दर्शन का आधार वाक्य है। उन्होंने 'एकादश व्रत' की परिकल्पना की है। ये एकादश व्रत निम्नलिखित हैं- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अभय, अस्वाद, श्रम का महत्व, स्वदेशी, सर्वधर्म, समभाव, अस्पृश्यता। इन ग्यारह व्रतों के पालन में महात्मा गाँधी ने बाह्य तथा अन्तःकरण की पवित्रता को अत्यन्त ही आवश्यक माना है। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट किया है कि स्वच्छता मनुष्य के स्वभाव में होना चाहिए। वे जहाँ कहीं भी जाते थे स्वच्छता पर विशेषरूप से ध्यान देते थे। प्रारंभिक कार्यों में ही उन्होंने स्वच्छता का स्थान निरूपित किया था। साबरमती आश्रम में भी जब महात्मा गाँधी निवास करने लगे तो स्वयं वहाँ स्वच्छता के लिए प्रयत्नशील हुए। महात्मा गाँधी के इस स्वच्छता संबंधी प्रवृत्ति को देखकर तथा समझकर आश्रम में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति भी स्वतः ही स्वच्छता के लिए प्रयत्नशील हो गये। वस्तुतः महात्मा गाँधी ने दिनचर्या में ही स्वच्छता का महत्वपूर्ण स्थान माना है। स्वच्छता के कारण व्यक्ति अत्यन्त ही कार्य कुशल अर्थात् दक्ष होता है। स्वच्छ वातावरण में एक

सात्विक अनुभूति प्राप्त होती है। जिससे व्यक्ति और वातावरण दोनों ही आलोकित होने लगता है। मनुष्य की उर्जा में स्वच्छता के कारण वृद्धि होती है तथा जीवन में गति प्रदान करती है। गाँधी के जीवन दर्शन में आन्तरिक और बाह्य शुद्धता ही मूल आधार है। वस्तुतः मनुष्य का परिष्कार तथा व्यक्तित्व का नैतिक विकास पवित्रता से ही प्रारम्भ होता है।

महात्मा गाँधी का ज्ञान अत्यन्त ही व्यापक तथा उनका बहुआयामी अनुभव इस बात के लिए प्रेरित करता था कि मनुष्य की कार्यकुशलता के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। ट्रेन के तीसरे दर्जे में यात्रा करते हुए उन्होंने अनुभव किया था कि स्वास्थ्य और स्वच्छता में गहरा संबंध है। ऐसा कहा जा सकता है कि स्वच्छता और स्वास्थ्य में एक तार्किक संबंध है। तात्पर्य यह है कि अनेक रोगों का खासकर महामारी का संबंध गंदगी से है तथा विभिन्न प्रकार के रोगों एवम् महामारी के प्रतिरोध के रूप में स्वच्छता के बहुत बड़ा अस्त्र है। वे अपने अनुभव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं, “इस तरह की संकट की स्थिति में तो यात्री परिवहन को बन्द कर देना चाहिए लेकिन जिस तरह की गंदगी और स्थिति इन डिब्बों में है उसे जारी नहीं रहने दिया जा सकता, क्योंकि वह हमारे स्वास्थ्य और नैतिकता को प्रभावित करती है। निश्चित तौर पर तीसरे श्रेणी के यात्री को जीवन की बुनियादी जरूरतें हासिल करने का अधिकार तो है ही। तीसरे दर्जे के यात्री की उपेक्षा कर हम लाखों लोगों को व्यवस्था, स्वच्छता, शालीन जीवन की शिक्षा देने, सादगी और स्वच्छता की आदतें विकसित करने का बेहतरीन मौका गवाँ रहे हैं।”

वस्तुतः महात्मा गाँधी स्वच्छता को जीवन का एक अंग माना है। उनका कहना है कि मनुष्य का कर्तव्य है क्योंकि मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। किसी भी कार्य की सफलता स्वच्छता में अन्तर्निहित है। विवेकशील होने के कारण मनुष्य ही नैतिक कर्ता है। मनुष्य का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि मनुष्य स्वयं को तथा वातावरण को शुद्ध, सात्विक तथा पवित्र बनाने में खुद की भागीदारी सुनिश्चित करें। परन्तु मनुष्य का नैतिक कर्तव्य स्वयं तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य समाज का अंग है तथा स्वच्छता का अभियान एक मनुष्य तक सीमित रहने पर सफल नहीं हो सकता है। इसमें जन भागीदारी की अपेक्षा भी होती है। इस प्रकार के अभियान से ही वातावरण शुद्ध और पवित्र होता है तथा स्वास्थ्य से संबंधित व्यक्ति की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। महात्मा गाँधी कहते हैं कि समाज से अलग-थलग रहकर कोई मनुष्य न तो स्वयं का कल्याण कर सकता है और न ही समाज का। महात्मा गाँधी कहते हैं- "Unrestricted individualism is The Law of the best of the jungle. We have learnt to strike the mean between individual freedom and social restraint. Willing submission to social restraint for the sake of the well-being of the whole society, enriches both the individual and the society of which he is a member."⁴

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. श्वेताश्वर उपनिषद् 2।10
2. योगसूत्र
3. श्रीमद्भगवद्गीता
4. Harijan, May, 1939

ब्रिटिश काल में भारत की जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए किये गये कार्य

• मिथलेश केन

सारांश- दलित जिन्हें अनुसूचित एवं अस्पृश्य जाति के रूप में मानते हैं ये सदियों से हिन्दू वर्ण व्यवस्था का शिकार होते रहे तथा उनके साथ अनेक प्रकार का भेदभाव तथा क्रूरहिंसा को जाती थी। इसको दूर करने के लिए ब्रिटिश काल में अनेक समाज सुधारकों ने अपने आन्दोलनों से प्रमुख लक्ष्य जाति प्रथा उन्मूलन, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को अस्वीकार करना, मूर्ति पूजा, पाखण्ड एवं कर्मकाण्ड का विरोध, अर्न्तजातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन, बाल विवाह का विरोध, बहुईश्वरवाद के स्थान पर एकईश्वरवाद को स्वीकार करना आदि था। वर्णित ब्रिटिश कालीन समाज सुधारकों के अथक प्रयास के बाद जातीय व्यवस्था की कठोरता पूरी तरह समाप्त न हो सकी इतना परिवर्तन अवश्य हुआ कि जाति व्यवस्था में कुछ उदारता अवश्य आयी।

मुख्य शब्द- अनुसूचित जाति, अस्पृश्य जाति, वर्ण व्यवस्था, मूर्ति पूजा, पाखण्ड, कर्मकाण्ड

भारत में निम्न वर्ग के लोग कई प्रकार से धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक शैक्षिक तथा सामाजिक भेदभाव के शिकार होते रहे। निम्न जातियों का विकास भारत में सदियों से चली आ रही है वर्ण व्यवस्था के अनुसार है इस वर्ण व्यवस्था से निम्न जातियों से भेदभाव से घृणा और घृणा से अस्पृश्यता का जन्म हुआ था। भारत में सदियों से निम्न वर्ग विशेष को मानवीय अधिकारों से वंचित रखकर उनके ऊपर उनके प्रकार की सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक नियोग्यताएँ थोप कर उन लोगों को अस्पृश्य एवं दीन हीन बना दिया।¹

ब्रिटिश शासन की प्रथम जनगणना 1872 ई. में की गयी थी इसके आधार पर अंग्रेजों ने भारतीय हिन्दुओं को तीन भागों में बाँटो-प्रथम (सर्वर्ण), द्वितीय (पिछड़ा वर्ग) तृतीय में (दलित) लोग थे। उस समय भारत की उन सब दबी पिछड़ी जातियों की गणना दलित वर्ग के अन्तर्गत की गई। तथा समान अधिकार, सामाजिक समानता में लाने के लिए उनके महान लोगों ने प्रयास किये।

महात्मा ज्योतिबाबा फुले ने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना करके महाराष्ट्र में अस्पृश्यता उन्मूलन की गति प्रदान की।² 1884 में हंटर आयोग के समक्ष अस्पृश्यों के लिए अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था का प्रावधान किया गया।³ इस प्रकरण में महात्मा ज्योतिबाबा फुले, अछूतानंद एवं डॉ अम्बेडकर का महान एवं अविस्मरणीय योगदान है।⁴ पुणे में दलित लड़के एवं लड़कियों के लिए 1849 में एवं 1851 में प्रथम बार शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यालयों के स्थापना की गयी।⁵ 1854 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शिक्षा नीति में सुधार द्वारा अछूतों के प्रति मनोवृत्ति को उदार बनाया। 1859 में प्रशासनिक अधिकारी ने ब्रिटिश कम्पनी को इम्पेरियल क्राउन के हाथों सौंप दिया जिससे अछूतों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए कई नियम बनाये तथा उनके लिए स्कूल खोलने का प्रावधान किया गया।⁶ 1890 के दशक में गोपाल हरि देशमुख तथा गोपाल बाबा बलंगकर जी

• एम.एस.जे. कॉलेज भरतपुर (राज.)

द्वारा जातिवाद से लड़ने के लिए अनार्य दोष परिहारक संगठन बनाया गया। यह संगठन महार एवं जाटव संस्कृति चेतना का सर्वप्रथम संस्थागत प्रयास था। 1897 में एम. जी. रानाडे के नतृत्व में बने प्रार्थना समाज में दलितों के उत्थान के कई कार्य किये गये।⁷ 1898 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना करके समाज में छुआछूत का विरोध किया।

ब्रिटिश शासन काल में 1901 में जनगणना की गयी तो अस्पृश्य जातियों को हिन्दुओं से पृथक् वर्गीकरण किया गया। 1906 में श्री नारायण चन्द्रावर की अध्यक्षता में भारतीय दलित वर्ग मिशन सोसाइटी की स्थापना हुई। इस मिशन का प्रमुख कार्य दलितों की दशा में सुधार और शिक्षा का प्रचार प्रसार करना था।⁸ 1921 में की गई जनगणना में अस्पृश्य जातियों के लिए अंग्रेजों ने सरकारी तौर पर डिप्रेस्ड क्लासेज नाम का प्रयोग किया। 1922 में शासन की स्वीकृति के बाद अछूत एवं दलित कल्याण एवं उनके शिक्षा सम्बन्धी अधिकार राज्य के नियन्त्रण में दे दिया गया। मद्रास केन्द्रीय प्रान्त और बरार में दलित छात्रों को निशुल्क शिक्षा निशुल्क किताबें स्लेट एवं छात्रवृत्ति देने का प्रावधान कर शैक्षणिक सुविधा का प्रावधान किया गया।⁹ 1927 में कानपुर में घोषणा की स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, जिस प्रकार भारत में सवर्ण हिन्दू एवं मुसलमान आजादी चाहते हैं। उसी प्रकार दलितों को भी पूर्ण आजादी चाहिए।¹⁰ 1930 में जाटव युवक परिषद की स्थापना हुई।¹¹ 1931 में असम में जनगणना अधीक्षक ने अस्पृश्य जातियों के लिए एक्स्टीरियर कास्ट्स शब्द का प्रयोग किया गया। अम्बेडकर की गोलमेज कांग्रेस 1930-31 जो भारत की स्वतन्त्रता तथा दलित वर्ग के राजनैतिक अधिकारों के बारे में था। दूसरी गोलमेज कांग्रेस दलितों को भारतीय सेना में भरती किये जाने से सम्बन्धित था। सबने महत्वपूर्ण पूना पैक्ट-1932 था, जिसमें ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मेकडोनाल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा की इस घोषणा में हरिजनों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व एवं दोहरा मताधिकार प्रदान किया गया था। ब्रिटिश सरकार की इस घोषणा के विरुद्ध गांधीजी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया तथा 1932 को गांधी एवं अम्बेडकर के मध्य ऐतिहासिक पूना पैक्ट समझौता हुआ। इससे दलितों को आरक्षण सहित उनके लाभ प्राप्त हुए। अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के विरोध में निम्न हिन्दू जातियों के लिए अलग प्रजातन्त्रीय व्यवस्था की मांग रखी, जिससे दलित भी उच्च हिन्दू जातियों की तरह सामाजिक, सांस्कृतिक समानता का अधिकार प्राप्त कर सके। इस मांग से गांधी जी बहुत परेशान हुए और आमरण अनशन पर बैठ गये डॉ. अम्बेडकर अपने विचारों में परिवर्तन लाये और अलग निर्वाचन की मांग को छोड़कर दलितों के लिए अलग आरक्षण और विशेष सुविधा की मांग रखी। 1932 में इसी मांग पर गांधी और अम्बेडकर के बीच समझौता हुआ, जिस समझौते को 1932 पूना पैक्ट समझौता रहा जाता है।¹²

ब्रिटिश काल में जाति व्यवस्था को गहरा आघात पहुँचा। ब्रिटिश सरकार ने शासन को प्रभावी बनाने के लिए न केवल नये कानून बनाये अपितु नये ढंग की अदालतों का गठन किया। इन कानूनों और अदालतों की प्रक्रिया से जातिवाद प्रतिबन्धों और अत्याचारों से कुछ राहत अवश्य मिली। सब वैधानिक कदम प्रशासन की दृष्टि से उठाये गये थे, इसलिए ब्रिटिश शासन ने कुछ जातियों की उच्च स्थिति को निरन्तर प्रोत्साहित करने का काम किया। ताकि लोग जातियों एवं उपजातियों में बटे रहे और ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध संगठित नही हो सके। 1942 में ऑल इण्डिया शैड्यूलड कास्ट फेडरेशन की स्थापना हुई तथा उनकी विभिन्न शाखा की पंचायतों जय भीम के साथ संघर्ष के लिए संगठित हो चुकी है, जिसका उद्देश्य दलितों के लिए भवन एवं बस्तियां सरकारी खर्च पर बनायी जाये। इसके लिए फेडरेशन द्वारा देश व्यापी आन्दोलन चलाया गया, जिसका उद्देश्य दलितों के अधिकारों की रक्षा करना था एक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण नारा था - अधिकारों के लिए लड़ना होगा, जीना है तो मरना होगा।¹³ हट्टन ने अपने अध्ययन कास्ट इन इण्डिया 1946 में अस्पृश्य जातियों को बाहरी जातियों के नाम से सम्बोधित किया। स्टेफन फुच द्वारा 1949 में चिल्ड्रन ऑफ हरि

शीर्षक नाम से किया गया, जिससे मध्य प्रदेश के निमाड़ जिले की बलाई जाति के जीवन के समस्त पक्षों की गहनतम एवं विस्तृत जानकारी दी गई है।¹⁴

1861 उ.प्र. में शिवदयाल द्वारा राधास्वामी समाज की स्थापना की गयी। यह हिन्दुओं के कर्मकाण्ड, पाखण्डों तथा नियमों का विरोध करता था। इसके अतिरिक्त, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा आदि स्थानों पर भी संगठन का निर्माण हो चुका है। 1870 में प्रार्थना समाज ने रात्रि स्कूल स्थापित करना प्रारम्भ किया। इस तरह के दो स्कूल दलितों के लिए स्थापित किये गये। यह दलितों के बीच शिक्षा प्रसार का एक नया कदम था। सन् 1911 में एक कमेटी गठित की गई जो सामाजिक धार्मिक दृष्टि से निम्न स्तर पर थी। आगरा में प्रथम जाटव कॉन्फ्रेंस 28 अक्टूबर 1917 में आयोजित की गई। एक दलित जाति जाटव पर एक विस्तृत अध्ययन 1920 ब्रिग द्वारा किया गया। इस अध्ययन में उ.प्र. के जाटवों के जीवन विश्वासों एवं व्यवहारों की गहराई से अध्ययन एक ईसाई मिशनरी के द्वारा किया गया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ईसाई मिशनरियों ने उ.प्र. के जाटव समाज में एक संतोषजनक स्थान दिलाने तथा धार्मिक क्रियाकलापों में समान सहभागिता का अवसर प्रदान करने की महत्वपूर्ण कार्य किया गया।¹⁵ भारतीय शासन अधिनियम 1935 की पांचवी अनुसूची की धारा 19 में इस शब्द का अधिकारिक रूप में प्रयोग किया। यहाँ अनुसूचित जातियों से अभिप्राय उन जातियों से था, जिनको विशेष सुविधाएं देने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने अनुसूची में सम्मिलित किया इस अनुसूची में शामिल जातियों को दलितों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। तथा यह शब्द संवैधानिक बन गया है। 1937 में बम्बई सरकार ने पिछड़े वर्ग में 6-11 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था लागू की थी।¹⁶ 1958 में बेली ने उड़ीसा के एक गांव के अध्ययन से पता किया कि- जाति संस्तरण में अस्पृश्य निम्न है। सवर्ग जाति के लोग इनके हाथों से भोजन तथा जल ग्रहण नहीं करेंगे। उनका दर्शन भी सामाजिक अपराध है।¹⁷ स्वतन्त्रता के पश्चात 1966 में केन्द्र सरकार ने सामाजिक विभाग की स्थापना की, राज्यों में राज्य सामाजिक कल्याण बोर्ड बनाये गये। स्वतन्त्रोत्तर काल में जातीय व्यवस्था का एक नया स्वरूप विकसित हुआ जैसे जातीय गुट, जातिवाद, जाति दबाव आदि। जाति गुट के आधार पर राजनीति को प्रभावित करने लगी, जिसे राजनेताओं अपने हित में प्रयोग किया। इसके परिणाम स्वरूप विभिन्न जातीय संघों एवं महासंघों का जन्म हुआ। जातियों के बीच अपनी आपसी संदेह और असुरक्षा की भावना इस काल में अधिक पैदा हुई।

ब्रिटिश भारत में 1850 में जातीय विकलांगता हटाने के नियम xx (Caste disabilities removal Act xx) के अन्तर्गत जातियां भेदभाव तथा अस्पृश्यता के विरुद्ध कानूनी प्रतिबन्ध लगाया गया था, बाद में भारत सरकार अधिनियम 1935 ने अनुसूचित जाति के लोगों को विशेष संरक्षा प्रदान की। 1943 और 1950 के बीच जाति आधारित विकलांगता समाप्त करने के लिए विभिन्न भारतीय राज्यों द्वारा 17 कानून बनाये गये किन्तु, अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 कोई भी राष्ट्रीय कानून पारित नहीं किया गया, जिसे इसके प्रावधानों को कठोर करने के लिए 1976 में संशोधित किया गया तथा जिसका नाम बदल कर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम कर दिया गया।

निष्कर्ष- दलित जिन्हें अनुसूचित एवं अस्पृश्य जाति के रूप में मानते हैं ये सदियों से हिन्दू वर्ण व्यवस्था का शिकार होते रहे तथा उनके साथ अनेक प्रकार का भेदभाव तथा क्रूर हिंसा को जाती थी। इसको दूर करने के लिए ब्रिटिश काल में अनेक समाज सुधारकों ने अपने आन्दोलनों से प्रमुख लक्ष्य जाति प्रथा उन्मूलन, ब्राहमणों की श्रेष्ठता को अस्वीकार करना, मूर्ति पूजा, पाखण्ड एवं कर्मकाण्ड का विरोध, अर्न्तजातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन, बाल विवाह का विरोध, बहुईश्वरवाद के स्थान पर एकईश्वरवाद को स्वीकार करना आदि था। वर्णित ब्रिटिश कालीन समाज सुधारकों के अथक प्रयास के बाद जातीय

व्यवस्था की कठोरता पूरी तरह समाप्त न हो सकी इतना परिवर्तन अवश्य हुआ कि जाति व्यवस्था में कुछ उदारता अवश्य आयी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. यादव वीरेन्द्र सिंह:- नई सहस्राब्दी का दलित आन्दोलन मिथक एवं यथार्थ, ओमेगा पब्लिकेशन, 2010 नई दिल्ली, पृ.-21
2. 1873 वीर धनन्यज:- महात्मा ज्योतिराव फुले, फादर ऑफ इण्डियन, सोशियल रिवोल्यूशन बांम्बे, पापूलर प्रकाशन, द्वि.स. 1974, पे. 23-36, 127, 173
3. 1884 पुरी, शशिलता:- लेजिस लेटिव इलिट इन इण्डियन स्टेट, अभिनव पब्लिकेशन, 1978
4. पूरणमल:- अस्पृश्यता एवं दलित चेतना पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2007, पृ.-301
5. वीर धनन्यज:- डॉ. अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन, बांम्बे पापूलर प्रकाशन, 1954, पृ.-3
6. 1859 गोयल:- स्रोत-दी रिपोर्ट ऑफ दी डिस्चार्ज ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन बम्बई, फार दी ईअर 1881-81, पृ.-8
7. 1897 गुप्ता एस. के. - द शिड्यूल्ड कास्ट्स इन मर्दिन इण्डिया पॉलिटिक्स मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स 1985, पृ.0-171
8. 1906 चन्द्रा आर. चन्चरीक:- आधुनिक काल का दलित आन्दोलन यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2003 पृ.70-71
9. 1922 रिपोर्ट ऐजुकेशन इन इण्डिया अण्डर दी न्यू रिफॉर्मर्स, प्रोसिडिंग्स ऑफ ऐजुकेशन बिल नं० 201, 23 फरवरी 1920
10. 1927 दलित एशिया टूडे मासिक लखनऊ संयुक्तोंक जुलाई- अगस्त 1955, पृ.-331
11. 1930 पुजारी विजय:- डॉ बाबा साहब अम्बेडकर, समता प्रकाशन नागपुर पृ. संख्या-56
12. 1932 यादव वीरेन्द्र सिंह:- नई सहस्राब्दी का दलित आन्दोलन मिथक एवं यथार्थ ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली 2010 पृ.-561
13. 1942 दिन्कर डी.सी.:- स्वतन्त्रता संग्राम में अछूतों का योगदान वोधित्व प्रकाशन लखनऊ 1990 पृ.-117
14. 1946 हट्टन:- कास्ट इन इण्डिया, 1946
15. 1920 ब्रिग जी डब्लू:- दी चमार लंदन, मैक्सफोर्ट यूनीवर्सिटी, प्रेस
16. 1937 रिपोर्ट ऑफ द प्रोग्रेस इन इण्डिया (1930-31) गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया दिल्ली पृ. -149
17. 1958 बेली एफ.जी.:- कास्ट एवं इकरॉनामिक, फ्रन्टीयर, ए विपेज इन हालैण्ड ओरिसा मैन चेस्टर, मैन्चेस्टर प्रेस 1958, पृ.-8-9

रसखान काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति

• रेखा कुमारी

सारांश : ज्ञान, कर्म और उपासना की उपयोगिता प्रेम की उपस्थिति में ही है। समस्त विश्व को प्रेममय मानते हुए उन्होंने सच्चे प्रेम की प्राप्ति दुर्लभ तथा निर्वाह कठिन बताया है। वे प्रेम को मन का एक संकल्प मानते हैं। रसखान ने स्वयं कृष्ण से अनन्य प्रेम किया है। इसी कारण इन्होंने कृष्ण को ही एकमात्र अपना साध्य मानकर लोक-परलोक को भी चिन्ता नहीं की है। इसी पर उन्हें अटूट विश्वास है कि यही इनके दुःखों को हरेगा।

मुख्य शब्द- ज्ञान, कर्म, उपासना, प्रेम

काव्य-कला का संबंध मानसिक जगत से होता है। मनोवृत्तियों में प्रेम वृत्ति ही प्रधान है। अतः सर्वत्र उसे ही विशेषता दी जाती है। कवियों ने भी ऐसा ही किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रेम का विस्तृत एवं गंभीर विश्लेषण करते हुए लिखते हैं। “चित्त रूपी समुद्र में जब सत्व गुण का जल भर जाता है तो उसमें दृष्टि, परिचय, हार्द तथा प्रेम की चार प्रकार की तरंग उठा करती है। प्रेम का मूलोपादान आत्मा का सत्व गुण है, विषय तो केवल निमित्त कारण है। वह उद्दीपन है और भाव की जिस स्थिति में प्रेम कहते हैं। वह अनुभूति की चरम कोटि है। जीव में ही आत्मा का रूप जो रस है वह जिस उपाधि का आश्रय लेकर श्रृंगार बनता है वह उपाधि “प्रेम” है। अर्थात् प्रेम रसमय आत्मा के वही विकास का साधन है, उसी का अंग भूत तत्व है।”¹ शांडिल्य के अनुसार, “अंतःकरण का वह वृत्ति जिससे वस्तु के संयोगकाल में ही वियोग सा बना रहता है प्रेम है।”²

मध्यकाल में भक्त कवियों सूरदास, तुलसीदास के प्रेम का स्वरूप सगुण ही है। इन्होंने अपने आलंबन राम तथा कृष्ण सगुण साकार मूर्तियों के प्रति अपने प्रेमभाव से अभिभूत होकर अनेकानेक प्रकार से उसके गुणों तथा स्वरूप के वर्णन किये हैं। “सगुण” आलंबन के प्रति प्रेम का अभिव्यक्ति दास्य, साख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रूप में हुई है। तुलसीदास ने सेवक भाव के प्रेम को प्रधानता देकर अपने ईष्ट राम को शील, शक्ति तथा सौन्दर्य से मंडित किया। परंतु कृष्ण भक्तों में दास्य भाव कम मात्र में ही आया है। उन्होंने तो ईश्वर कृष्ण के प्रति सख्यभाव या माधुर्यभाव को ही प्रधानता दी है। इस माधुर्यपूर्ण प्रेम के कारण ही कृष्ण लौकिक भूमि पर उतर आए हैं। रसखान तथा धनानंद के सगुण आलंबन कृष्ण भी माधुर्य भाव से ही युक्त हैं। उन्होंने कृष्ण के प्रति उनके सौंदर्यकिन द्वारा प्रेम प्रदर्शन किया है। आगे हम रसखान और धनानंद की प्रेम विषयक दृष्टि और उनकी प्रेम-संबंधी धारणाओं पर विस्तार से विचार करेंगे।

रसखान के काव्य में प्रेम का स्वरूप - रसखान ने शुद्ध प्रेमाभिव्यक्ति की उपासना को सर्वोपरि माना है। उन्होंने अपनी रचना “प्रेमवाटिका” में प्रेमतत्व का निरूपण किया है। डॉ. माजदा के असद के अनुसार, “रसखान ने प्रेम का स्पष्ट चित्रण किया है, प्रेम की परिभाषा,

• समस्तीपुर, पिन-848101 (बिहार)

पहचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम प्राप्ति के साधन एवं प्रेम को पराकाष्ठा प्रेमवाटिका में दिखाई पड़ती है”। उनके परवर्ती और समकालीन कवियों ने इसे ग्रहण कर अनेक रचनाएँ की हैं, फिर भी रसखान का प्रेम-निरूपण अपने ढंग का अनोखा है, साथ ही उसमें ही व्यक्तिगत अनुभव और स्वाध्याय का पूरा प्रभाव है।³ रसखान का प्रेम किसी शास्त्रीय पद्धति पर आधारित नहीं, अपितु हृदय से अद्भुत अनुभवों से परिपक्व है। रसखान ने प्रेम का ईश्वर के समान बताते हुए उसे अकथनीय कहा है –

जग में सब जान्यो परे, अरू सब कहै कहाय।

पै जगदीस अरू प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय।⁴

भाव यह है कि प्रेम का स्वरूप भी ईश्वर की तरह सूक्ष्म होने के कारण अकथनीय है। रसखान के विचारानुसार प्रेम की उत्पत्ति श्रवण, कीर्तन और दर्शन से होती है –

श्रवण कीरतन दरसनहि, जो उपजत सोइ प्रेम।⁵

और साथ ही प्रेम को दो प्रकार का माना है – शुद्ध तथा अशुद्ध या निष्काम और संकाय।

सुद्धासद्ध विभेद ते द्वे विधि ताके नेम।।

रसखान ने प्रेम को साध्य माना है। इस विषय में सुख स्वरूप श्री वास्तव के विचार हैं कि, “रसखान ने प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया, उन्होंने स्वयं प्रेम को साध्य माना है –

जोहि पाए बैकुण्ठ अरू, हरिहू को नहि चाह।

सोहि अलौकिक सुद्ध सम, सासतु प्रेम कहाय।।⁶

शुद्ध प्रेम के स्वरूप को परिभाषित करते हुए रसखान ने स्पष्ट लिखा है –

रसमय स्वाभाविक बिना, स्वारथ अचल महान।

सदा एक रस सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान।।⁷

रसखान पूर्ण प्रेम की परिभाषा देते हुए अन्य भक्त कवियों की तरह उसमें वासना की गंध नहीं आने देते। वे प्रेम में मांसल रूप को गतानुगतिक होकर हेय नहीं कहते। उनमें आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। उनका प्रेम शास्त्रीय पद्धति पर आधारित नहीं है। उसमें मन और शरीर दोनों का समन्वय आवश्यक है। यही कारण है कि रसखान बारम्बार प्रेम करने का उपदेश देते हैं। प्रेमरहित जीवन तो व्यर्थ है। यह प्रेम, गुण, रूप, यौवन, धन सापेक्ष नहीं है, प्रेम तो प्रेम के लिए ही होता है। यह निष्काम एवं स्वार्थरहित होता है –

बिन गुन जीवन रूप धन बिन स्वारथ हित जानि।

शुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रसखानि।।⁸

साथ ही रसखान ने प्रेम को आनंद स्वरूप मानते हुए इसके दो भेद भी किए हैं – एक विषय आनंद तथा दूसरा ब्रह्म आनंद, लौकिक एवं अलौकिक। दूसरे प्रकार के प्रेम को उन्होंने उच्चकोटि का माना है। प्रथम प्रकार को निम्न कोटि का कहकर भी उसे प्रेम ही

आनंद अनुभव होत नहि, बिना प्रेम जग जान।

कै वह विषयानंद कै, ब्रह्मानंद बखान।।⁹

इस विषयानंद या लौकिक प्रेम को रसखान शुद्ध प्रेम के अंतर्गत नहीं लेते। शुद्ध प्रेम को इन्द्रियातीत बताते हुए उन्होंने कहा है –

दंपति-सुख अरू विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।

इनहे परै बखानियै, शुद्ध प्रेम रसखान।।¹⁰

शुद्ध प्रेम का एकांकी होना रसखान ने अनिवार्य बताया है अर्थात् प्रेम का एकमात्र धर्म यही है कि वह प्रिय को सर्वस्व समझता हुआ उसी से ही प्रेम करे -

इक अंगी बिनु कारनहि, इक रस सदा समान।

गनै प्रियहि सरवस्व जो, सोई प्रेम प्रमाण॥¹¹

रसखान ने सच्चे एवं शुद्ध प्रेम को उस अवस्था में माना है जिस अवस्था में दो मन ही नहीं, दोनों तन भी मिलकर एक हो जाते हैं। वे लिखते हैं कि दो मनो को एक होते हुए बहुत बार सुना है, किंतु वह प्रेम का सच्चा रूप नहीं है। सर्वोत्तम प्रेम वही है जिसमें दो तन भी मिलकर एक हो जाएँ -

दो मन इक होते सुन्यो, ये वह प्रेम न आहि।

होय जबहि द्वै तनहु इक, सोइ प्रेम कहाहि॥¹²

रसखान ने इस शुद्ध एवं सरल प्रेम के अंतर्गत नियमों के पालन का निर्णय किया है, क्योंकि नियम तो वहाँ होता है जहाँ प्रेम के लिए कोई कारण अपेक्षित रहता है।

लोक वद मरजाद सब, लाज काज संदेह।

देह बहाये प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह॥¹³

शुद्ध प्रेम का हृदय के अन्य विकारों से बड़ा विरोध है। किसी एक भी विकार के रहते हुए हृदय में शुद्ध प्रेम नहीं टिक सकता, साथ ही हृदय में शुद्ध प्रेम की स्थापना हो जाने पर फिर कोई विकार नहीं टिक सकता। रसखान ने मुनिवरों का प्रमाण देकर इस बात का कहा है कि प्रेम सब विकारों से रहित है -

काम, क्रोध, मद लोभ भय, लोभ द्रोह मात्स्यं।

इन सबही ते प्रेम है, परै कहत मुनि वयं॥¹⁴

अतः रसखान ने सर्वत्र शुद्ध प्रेम के दर्शन किए थे और स्वाभाविक है कि उनके काव्य में शुद्ध प्रेम ही वर्णित हुआ है।

प्रेम की सर्वप्रधानता का महत्व - रसखान ने प्रेम की सर्वप्रधानता का महत्व बतलाते हुए प्रेम तथा हरि को एक कहा है, दोनों का संबंध सूर्य और धूम की तरह प्रतिपादित किया है -

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।

एक होइ है यों लसै, ज्यों सूरज अरू धूप॥¹⁵

इतना ही नहीं, प्रेम की प्रधानता को दर्शाते हुए उन्होंने प्रेम को हरि से भी श्रेष्ठ माना है क्योंकि सृष्टि को अपने अधीन रखनेवाले हरि भी प्रेम के अधीन रहते हैं -

हरि के सब अधीन पै, हरि-प्रेम आधीन।

याही ते हरि आपुही, याति बड़प्पन दीन॥¹⁶

रसखान की दृष्टि में प्रेम ज्ञान, कर्म और उपासना से श्रेष्ठ है वे केवल प्रधानता स्वीकार करते हैं

ज्ञान करम अरू उपासना सब अहमिति को मूल।

दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन, किये प्रेम अनुकूल॥¹⁷

प्रेम में बहते हुए रसखान यहाँ तक कह जाते हैं कि प्रेम के बिना मनुष्य का सारा ज्ञान, बुद्धि, वैभव एवं अपार संपत्ति धूल के समान है -

ज्ञान ध्यान विद्यामती, मत बिसवास विवेक।

बिना प्रेम सब धूरि है, अंग जग एक अनेक॥¹⁸

समस्त जगत को प्रेममय बताते हुए रसखान ने बीज, खेत, जल, वृक्ष, पात, फूल-फल, कार्य-कारण सबको ही प्रेम कहा है -

वही बीज, अंकुर वही, सेक वही आधार
डाल पात फल फूल सब, वही प्रेम सुखसार॥
कारज कारन रूप यह, प्रेम अहै रसखान।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करन, आपहि प्रेम बखान॥¹⁹

रसखान द्वारा सृष्टि के अणु-अणु में प्रेममय बनाना निश्चित रूप से यह सिद्ध करता है कि रसखान के हृदय में प्रेम का अथाह सागर तरंगित हो रहा था। ऐसा वर्णन करने के कारण ही कुछ आलोचकों ने रसखान पर सूफी प्रभाव को बतलाया है। प्रेम मार्ग -रसखान ने प्रेम-मार्ग को सीधा और टेढ़ा दोनो प्रकार का कहा है। वे इसे कमल चाल से क्षीण तथा खड़ग की धार से भी कोमल कहते हैं -

कमलतंतु सों छीन अरू कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ी बहुरि प्रेम-पथ अनिवार॥²⁰

अर्थात् प्रेम पथ अनिवार्य रूप से विलक्षण है। यह कमल के रेशे के समान पतला और तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होता है। यह अत्यन्त सीधा भी है और टेढ़ा भी है। रसखान ने अपने कवित्त-सवैयाओं में गोपिकाओं के आदर्श-प्रेम की अभिव्यक्ति किया है। जिसमें कभी कृष्ण वंशी बजाते हुए ब्रज की गली से निकल पड़ते हैं और राधा को व्यंग्य कसते हैं। राधा की सखियां राधा की रक्षा के लिए नंद के द्वार पर हलाहल पीने को तैयार हैं -

बंसी बजावत आनि कढौ सो गली मैं अली, कछु टोना सो डारै।
हेरि, चितै, तिरछी करि दृष्टि चलौ गयौ मोहन मूठी सी मारै।
ताही धरी सौ परी धरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहूँ वारै।
राधिका जी है तौ जीहैं सबै न तो पी है हलाहल नंद के द्वारे॥

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रसखान ने प्रेम का ईश्वर के समान अकथनीय तथा आनंद स्वरूप मानते हुए उसकी उत्पत्ति, दर्शन, श्रवण तथा कीर्तन से मानी है। प्रेम की दो कोटियाँ निर्धारित करते हुए यद्यपि उन्होंने निष्काम प्रेम को श्रेष्ठ कहा है तो भी सकाम प्रेम को उन्होंने प्रेम की संज्ञा के अंतर्गत ही रखा है। प्रेम को एकांगी एवं विकार रहित मानते हुए उन्होंने प्रेम के चरमावस्था तक पहुँचकर प्रेमी को ईश्वर तक की चिन्ता नहीं रह जाती। ज्ञान, कर्म और उपासना की उपयोगिता प्रेम की उपस्थिति में ही है। समस्त विश्व को प्रेममय मानते हुए उन्होंने सच्चे प्रेम की प्राप्ति दुर्लभ तथा निर्वाह कठिन बताया है। वे प्रेम को मन का एक संकल्प मानते हैं। रसखान ने स्वयं कृष्ण से अनन्य प्रेम किया है। इसी कारण इन्होंने कृष्ण को ही एकमात्र अपना साध्य मानकर लोक-परलोक को भी चिन्ता नहीं की है। इसी पर उन्हें अटूट विश्वास है कि यही इनके दुःखों को हरेगा। गोपियाँ भी इसी कृष्ण से अनन्य प्रेम करती हुई लोक-मर्यादा का त्यागकर अपने तन-मन की सुध-बुध भी भूल जाती हैं। इसी कृष्ण के प्रेम में वे इतनी व्याकुल रहती हैं कि इन्हें भूख भी नहीं लगती और न ही इन्हें आभूषण भाते हैं। इसी कृष्ण के वशीभूत होकर ये वन-वन डोलती फिरती हैं। उसी के रंग में रंगी रहना चाहती हैं जिस तरह कृष्ण नचाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान ने प्रेम-महिला का अखंड कीर्तन किया है और यही कारण है कि प्रेम-प्रधान कवियों में सिरमौर माने गये हैं।

सन्दर्भग्रंथ सूची-

1. धनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, गौड़, मनोहर लाल से उद्धृत, पृ.-333
2. शांडिल्य सूत्र, गौड़ से उद्धृत, पृ.-334
3. मध्यकालीन प्रेम साधना, चतुर्वेदी, परशुराम, पृ.-217
4. प्रेमवाटिका, छं.सं.-17
5. वही, छं.सं.-40
6. रीतिकाव्य में श्रृंगार-निरूपण, श्रीवास्तव, सुखस्वरूप, पृ.-93 से उद्धृत।
7. प्रेमवाटिका, छं.सं.-42
8. वही, छं.सं.-15
9. वही, छं.सं.-11
10. वही, छं.सं.-19
11. प्रेमवाटिका, छं.सं.-21
12. वही, छं.सं.-34
13. वही, छं.सं.-07
14. वही, छं.सं.-14
15. प्रेमवाटिका, छं.सं.-24
16. वही, छं.सं.-36
17. वही, छं.सं.-12
18. वही, छं.सं.-25
19. प्रेमवाटिका, छं.सं.-47
20. वही, छं.सं.-06

नवगीत के आविर्भाव की पृष्ठभूमि

• अरुण कुमार

सारांश- आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा में 'नवगीत' संज्ञा की स्वीकृति का कालखंड बीसवीं शताब्दी का छठा दशक है। यह कालखंड देश के समसामयिक जीवन में नवीन जीवन-मूल्यों के विकास का कालखंड है। देश को आजाद हुए अब एक दशक बीत चुका था और जन-सामान्य का इस अल्प अवधि में ही आजादी से मोहभंग होने लगा था। ज्ञान-विज्ञान एवं औद्योगिक केन्द्र के रूप में नगरों के विकास के साथ ही गाँवों के टूटने-बिखरने का जो सिलसिला शुरू हो चुका था। इस कालखंड को भारतीय समाज की पुनर्रचना का काल भी माना जा सकता है। इस पुनर्रचना का केन्द्र गाँवों में नहीं नगरों में विकसित हो रही पाश्चात्य प्रभाव की औद्योगिक सभ्यता थी, जिसकी चपेट में छोटे शहर, कस्बा और गाँव आते जा रहे थे। इस औद्योगिक सभ्यता का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। आधुनिकतावाद के प्रभाव से हिन्दी काव्य-क्षेत्र में अकवितावादी आन्दोलन चल रहा था। हिन्दी में 'गीत' लिखने की परंपरा पुरानी है, परन्तु इस काव्य आन्दोलन के समय तक सामान्यतः कविगण गीत लिखना छोड़ चुके थे, किन्तु कुछ कवि 'नवगीत' नाम से अब भी गीत लिख रहे थे। साहित्य में 'नवगीत' की अवधारणा 1960 के दशक में हुई। इस संबंध में लगभग सभी समीक्षकों का मत एक जैसा ही प्रतीत होता है, कहा जा सकता है कि 'नवगीत' युगसापेक्ष साहित्य की काव्य-धारा है जिसमें जीवनाबोध की अटल गहराई और स्वर्णिम भविष्य का स्वप्न है। गीत परम्परा में अभिव्यक्ति की संभावनाओं की तलाश में नवगीत ने अनेक नवीन आयामों का उद्घाटन किया है।

मुख्य शब्द- प्रवास, स्वच्छता, अभिव्यक्ति

साहित्य में जीवन-बोध की उत्पत्ति युगीन संदर्भों और समकालीन समय के अंतर्संबंधों के बीच सहयोग एवं तनाव के द्वन्द्व से होता है। रचनाकार इस द्वन्द्व से गुजर कर अपने समय के प्रश्नों का उत्तर तलाशता है, इसलिए दो अलग कालखंड की रचनाओं का केन्द्रीय भाव ही नहीं, स्वरूप भी अलग होता है, क्योंकि प्रत्येक कालखंड की समस्याएँ अलग होती हैं। समकालीन समय और रचना के अंतर्संबंध की विवेचना करती हुई राजी सेठ कहती है- "समकालीन समय ही हमारा वास्तविक समय है जिसके चलते हम उसके संबंधों, आहटों, जटिलताओं, खुशियों और उद्वेलनों को जीवनगत रूप में झेलते हैं और अपनी नियतिगत विवशताओं से लड़ते हैं। यही समय वास्तविक समस्याएँ खड़ी करता और चुनौतियाँ फेंकता है। इन संबंधों की कसमसाहट में घुटते हम विकल्पों को ढूँढने का उपक्रम करते हैं। रचना एक ऐसा ही उपक्रम है, ऐसी ही तलाश है।"

सन् 1950 के आस-पास हिन्दी गीतों में एक नवोन्मेष दिखाई देता है। वैसे निराला के परवर्ती गीतों में इसके संकेत स्पष्टतः परिलक्षित होने लगे थे। ये गीत पारंपरिक गीतों के कथ्य, शिल्प एवं दर्शन सभी में भिन्न थे। अतः परम्परा से भिन्न इन गीतों को एक नये अभिधान की आवश्यकता पड़ी। डॉ. रामदरश मिश्र, सियाराम शरण प्रसाद ने गीत के इस नव

• सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), संत कबीर महाविद्यालय, समस्तीपुर

रूप को 'आज का गीत' कहा। वातायन पत्रिका ने अपने गीत विशेषांक (1965) में इस सम्बोधन के प्रति अपनी सहमति प्रकट की। बालस्वरूप राही तथा शलभ रामसिंह ने गीतों के इस नवोत्थान को 'नयागीत' कहा। गंगा प्रसाद विमल और ओंकार ठाकुर ने गीतों के नये तेवर को 'आधुनिक गीत' की संज्ञा से अभिहित किया।

नवगीत की स्वीकृति का कालखंड स्वातंत्र्योत्तर भारत का प्रथम दशक (1947-1958) है। इस दशक में भारतीय जनमानस देश विभाजन, सांप्रदायिक दंगों, गृह-कलह और शरणार्थी समस्या से चिन्तित था। आजादी के प्रथम दशक में ही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी आपाधापी शुरू हो गयी थी। "राष्ट्रीय और राजनीतिक ह्यस के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी विघटन उपस्थित हुआ है। नैतिक क्षेत्र में अब परम्परागत आदर्शों का कोई मूल्य नहीं रह गया है। पुरानी पीढ़ी के सारे उपदेश और आदर्श अब पाखंड लगने लगे हैं।"²

इसके बाद की स्थिति तो और भयावह होती चली गई। जीवन के सभी क्षेत्रों में मूल्यों का तेजी से क्षरण हुआ। सन् 1962 ई. में चीन के आक्रमण ने एक झटके से नेहरू युग के समस्त भ्रमों पर से पर्दा उठा दिया। "सन् 1962 ई. में चीन के आक्रमण ने भारत के प्रबुद्ध वर्ग को घोर ग्लानि और जड़ता से भर दिया। एक साथ ही प्रेम, सहानुभूति, सह-अस्तित्व, पंचशील, भाई-भाई जैसे नारों की सारी हवा निकल गयी। सन् 1962 ई० के बाद देश में मूल्यों के विघटन का एक चिन्तनीय दौर प्रारंभ हुआ।"³ इन्हीं दिनों गीतकार राजेन्द्र प्रसाद सिंह के संपादन में पारंपरिक गीतों से भाव, भाषा और शिल्प के स्तर पर भिन्न आधुनिक गीतों का संकलन 'गीतांगिनी' (वर्ष-1958) में प्रकाशित हुआ, इसके संपादकीय में इन नये गीतों को प्रथम बार 'नवगीत' की संज्ञा दी गयी।

समसामयिक जीवन-बोध की पृष्ठभूमि में नवगीत की जड़ें गहरी धँसी हुई हैं। नवगीत ने अपने समकालीन समय के यथार्थ को चित्रित किया है, नवगीत में युग-संदर्भ का प्रतिबिम्ब कई आयामों में प्रतिबिम्बित होता है। परिवेश और युग-जीवन के प्रति उसकी सजगता उसके स्वर की नवीनता के रूप में प्रकट हुई है।

साहित्य में आये किसी भी बदलाव को रेखांकित करते हुए उसे एक विशिष्ट नाम से अभिहित करना या उसकी साहित्यिक अवधि का निर्धारण करना आसान कार्य नहीं है, क्योंकि ये बदलाव साहित्य में अचानक प्रकट नहीं होते। समय के साथ बदलते सामाजिक परिवेश एवं समकालीन जीवन-संदर्भों की गूँज धीरे-धीरे रचनाओं में शामिल होती रहती है, जो आगे चलकर स्पष्ट स्वर में फूटकर एक नये बदलाव का स्पष्ट संकेत देती हैं। नवगीत भी इसी तरह समय सापेक्ष साहित्यिक परिवर्तन का प्रतिफलन है।

बीसवीं सदी के छठे-सातवें दशक में हिन्दी साहित्य में आधुनिकता-बोध के साथ नवलेखन अभियान से एक नयी प्रवृत्ति का उदय हुआ था जो कहानी और कविता के क्षेत्र में अपनी पहचान छोड़ गया। "हिन्दी काव्य-क्षेत्र में छायावाद के बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और आधुनिक गीत शीर्षकों से कई प्रकार की कविताओं का प्रवर्तन हुआ। इसी क्रम में आधुनिक गीत को कुछ गीतकारों ने 'नवगीत' नाम देकर परम्परा से पृथक् स्वतंत्र गीत-विधा की जोरदार वकालत की। इनका मत था कि गीत को रोमानी वातावरण से निकाल कर समाज से जोड़कर युग-संदर्भ में परखना चाहिए। यदि आधुनिक बोध को गीत में स्थान दिया जाय और सामाजिक संदर्भों से उसकी गहरी सम्पृक्ति रहे तो वह गीत 'नवगीत' की श्रेणी में रखा जायेगा।"⁴ सन् 1950 तक आते-आते स्वाधीन भारत में गणतंत्रीय चेतना

पैदा हुई और मार्क्सवाद का उथला प्रभाव जो आन्दोलन बनकर आकाश में छा गया था, धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा था और इस प्रकार कवि रचनाकार पहले की अपेक्षा कुछ अधिक चैतन्य होकर जनमानस के बीच उपस्थित हुआ था। “गीत व्यक्तिगत रागात्मक क्षणों का उच्छ्वास नहीं रह गया। बल्कि जन-जीवन से जुड़कर उसमें यत्किंचित बौद्धिकता आयी, लोकधुनों का प्रवेश हुआ, लोक जीवन की धड़कन आयी और इस तरह इसका विषय अपनी सीमित परिधि को लांघकर बंधे-बंधाये चौखटों को तोड़ने लगा, यद्यपि इस चेतना की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम छायावादी कवि निराला के गीतों में हुई थी। उन्होंने पहले-पहल गीत के छन्द, राग और लय में बहुत कुछ तोड़ा और नया जोड़ा था लेकिन बौद्धिक दुःस्वता के कुहरे में यह धारा नैरन्तर्य नहीं पा सकी और सन् 1950 तक आते-आते इस चेतना को मुखरता मिल पायी।”⁵ वीरेन्द्र मिश्र ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है- “निराला के परवर्ती गीत-संकलनों ने भी ‘नवगीत’ की भूमिका निर्मित कर दी थी।”⁶ वे आगे लिखते हैं- “सबसे पहले सन् 1958 में इलाहाबाद में सम्पन्न साहित्यकार सम्मेलन में मैंने गीत के नये स्वरूप की ओर ध्यान खींचते हुए और उसे नयी कविता की ही तरह महत्वपूर्ण मानते हुए उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया था।”⁷

गीतकार चन्द्रदेव सिंह भी नवगीत के आविर्भाव का काल छायावादोत्तर कालखंड को मानते हैं- “छायावादोत्तर गीतकारों ने ‘निराला’ जी के परवर्ती गीतों से प्रेरणा लेकर हिन्दी गीत विधा को एक नये आकार, एक नये रूप में प्रस्तुत किया, छायावाद की कल्पना-बहुलता से अलग परवर्ती गीत जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद के अधिक निकट है और इसीलिए विशेष स्वाभाविक तथा प्रेरक सिद्ध हुए।”⁸ डॉ. नगेन्द्र नवगीत का समय नयी कविता आन्दोलन के उत्तरार्द्ध मानते हैं। अवधेश नारायण मिश्र इसका काल निर्धारण करते हुए लिखते हैं- “उत्तर छायावादी गीत चेतना से संसिक्त, प्रयोग-सूत्रों के समानान्तर और फिर उनसे आगे बढ़कर नए रूप-विधान और गीत मानकों की खोज द्वारा पारम्परिक विषयगत गीतों से गीत, राष्ट्रगीत, प्रयाणगीत आदि की संवेदनाओं का समेकीकरण गीत तत्व के व्याकरण का पुनर्निश्चयन करके स्वातंत्र्योत्तर काव्य-चेतना का अभिव्यंजन करती हुई ‘नवगीत’ संज्ञा अर्जित करती है।”⁹

छायावाद के बाद युगीन परिस्थितियों ने काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को जन्म दिया-वैयक्तिक, प्रगतिवादी, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा प्रयोगवादी, प्रयोगवाद का यही विकसित रूप नयी कविता है। नई कविता के अन्तर्गत एवं समानान्तर कुछ ऐसे गीतों की रचना हुई जो पूर्व की गीत-परम्परा से भिन्न थे। “गीतों की बदली हुई दिशा और आन्दोलन के स्वर को स्वीकृति देते हुए बीकानेर की ‘वातायन’ मासिक पत्रिका के सम्पादक श्री हरीश भदानी ने 1964, 1965, 1966 तीन वर्ष तक एक-एक अंक प्रकाशित किये। 1965 के वातायन गीत अंक में डॉ० रमेश कुंतल मेघ ने ‘नवगीत’ को इतिहास बोध के परिवर्तन से संयुक्त कर उसमें आगत बदलाव को इतिहास का अनिवार्य संदर्भ सिद्ध किया है।”¹⁰

कुछ विद्वानों का मत है- ‘नवगीत’ का प्रारंभ अलवर (राजस्थान) से प्रकाशित होने वाली पत्रिका ‘कविता’ के ‘नवगीत’ अंक (1964) से माना जाना चाहिए, जिसे नवगीत के प्रथम समवेत संकलन के रूप में विज्ञापित भी किया गया। उसके संपादकीय में नवगीत के संदर्भ में, नवगीत क्या है? से लेकर आधुनिकता संसक्ति, चेतना, सामर्थ्य जैसे दसाधिक प्रश्न उठाये गये हैं। शंभुनाथ सिंह नवगीत का आरंभ नई कविता के युग से अर्थात् 1950 के बाद से मानते हैं।”¹¹

नवगीत आन्दोलन के शुरूआती दौर में जिन कवियों की गीत रचनाएँ संकलित की गयीं, इनमें ज्यादातर वे ही थे, जो छायावाद और नयी कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो चुके थे। “इसलिए नवगीत का प्रारंभ 1964 से न मानकर उसके पूर्व अर्थात् उत्तर छायावाद काल (1947-1952) से माना जाना चाहिये। एक ओर जहाँ निराला के ‘बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु/पूछेगा गाँव बन्धु/और, मानव जहाँ बैल घोड़ा/ कैसा तन-मन का जोड़ा है, तथा पंत के ‘बाँध दिये क्यों प्राण प्राणों से ?’ जैसे गीतों को नवगीत मानकर नवगीत के तथाकथित प्रवक्ताओं ने नवगीत आन्दोलन खड़ा करने की कोशिश की।”¹²

मधुसूदन साहा हिन्दी काव्य विधा का वर्तमान पड़ाव नवगीत को मानते हैं। नयी कविता के दौर में जिस काव्यान्दोलन के अपनी ओर सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया और जिसके अन्तर्गत प्रचुर संख्या में उल्लेखनीय रचनाएँ प्रस्तुत की गईं उसे बिना किसी विवाद के ‘नवगीत’ के रूप में अंकित किया जा सकता है। “सन् 1960 ई० के आसपास नवगीत, नया गीत अथवा आज का गीत नामक नारा कतिपय गीतकारों की ओर से आया था जिनमें शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदार नाथ सिंह, डा० रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, नईम, महेन्द्र शंकर, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, ओम प्रभाकर, चन्द्रदेव सिंह आदि उल्लेखनीय हैं, नवगीत नयी कविताधारा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।”¹³

नवगीत का अनुभव संसार इसी कारण समकालीन संवेदना का व्यापक संसार है। इसमें लोक-जीवन और लोकानुभूति का स्वर है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तेजी से उभरी शहरीकरण की प्रवृत्ति ने ग्रामीण समाज के परम्परित मूल्यों को लहलुहान कर दिया। मानवीय रिश्तों के बिखराव ने भीड़ में मनुष्य को अकेला और असहाय बना दिया। नवगीत ने इसी अस्त-व्यस्त व्यवस्था से ऊपजे अपने संत्रास, व्यक्ति के अकेलेपन और टूटते मानव संबंधों के बीच मानव मन को सहेजने का काम किया। मूल्यों के क्षरण के इस काल-खंड में नवगीत की भूमिका को रेखांकित करते हुए चन्द्रसेन विराट कहते हैं- “शिक्षा के प्रसार, टूटते परिवार, आजीविका की तलाश आदि कई-कई तत्वों ने मिलकर सामाजिक संरचना में द्रुतगामी परिवर्तन किया। गांवों का उजड़ना और शहरों का आबाद होना तथा शहरों में नई ग्रामीण बस्तियों का बसना, व्यक्ति का अपने परिवेश और घर-गाँव से कटना, संवेदना तथा संस्कृति के स्तर पर महत्वपूर्ण बदलाव है। शहर में रहते हुए भी व्यक्ति अपने घर-गाँव की स्मृति को पोंछ नहीं पाया। लोगों के भीतर बसी इन स्मृतियों की बगिया को ‘नवगीत’ ने सींचा। उसे हरा करने की जुगत में उसे सहलाया। बल्कि यों कहें कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को संघर्ष के स्तर पर और संवेदना के भावों के स्वर पर उभारने का उपक्रम नवगीत ने किया।”¹⁴

चेतना के स्तर पर नवगीत ने भारतीय संस्कृति के मूल्यों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर उन्हें प्रासंगिक बनाया। “नवगीत ने अपनी जमीन की सुगन्ध से नयी उर्जा ग्रहण कर मानवीय आस्थाओं को उकेरा है, जिससे मनुष्य की जिजीविषा प्रबल हुई। उसे संबंधों में टूटने से बचाया है। भले ही वह गीत के स्तर पर हुआ हो लेकिन नवगीत के भीतर का मनुष्य अपनी जीवत में दमदार है, और अपनी परम्परा में संयत है।”¹⁵

नवगीत ने अपने समसामयिक जीवन-बोध को पूरी व्यापकता में अभिव्यक्त किया है। अनास्था, निराशा, संशय, तनाव, ऊब, संत्रास, कुंठा, रोजी-रोटी के संकट से उत्पन्न आपाधापी और जीवन की अस्त-व्यस्तता को चित्रित किया है। यह जीवनानुभूति सम्पन्न काव्य-धारा है। अपने समसामयिक परिवेश के यथार्थ को उसने पूरी ईमानदारी से

हमारे समक्ष रखा है। अपने समकालीन परिवेश में कहीं कुछ न तो उसने जोड़ा है न घटाया है, बस इस यथार्थ को लयात्मक स्वरूप में चित्रित किया है जो उसका युग-धर्म है। “सन् साठ के बाद का अधिकांश साहित्य एक भिन्न स्तर का ही नहीं, सर्वथा भिन्न परिवेश और भिन्न संदर्भ का साहित्य है। ‘विद्रोह’, ‘क्रांति’, ‘विसंगति’, ‘विघटन’ और ‘आतंक’ उसके लिए अनुभव न रहकर जीवित संस्कार बन गये हैं। इन संस्कारों को जन्म देने के लिए समसामयिक परिवेश बहुत कुछ उत्तरदायी है।”¹⁶ ज्ञातव्य है कि-“मानव की रचना छायावादी काव्य-धारा में व्यक्ति का विशिष्ट स्वरूप ही अभिव्यक्ति पा सका है। मैंने मैं शैली अपनाई द्वारा छायावादियों ने व्यक्ति की सत्ता सर्वोपरि माना था।”¹⁷

“छायावादोत्तर युग के युगीन प्रवाह में जिन नवीन काव्य-प्रवृत्तियों का उदय हुआ, वे गौण विधा के रूप में तिरोहित हो गई, किन्तु वैयक्तिक प्रणय की धारा के उपरान्त नवगीत ही है जो विशुद्ध रूप में गीतात्मक चेतना से अनुस्यूत है। नवगीत में एक तरफ जहाँ एकान्त क्षणों का निजी अहसास मिलता है वहीं उसकी कल्पना के पंख अपने आस-पास के अभावगत दर्द को छाया भी देते हैं।”¹⁸ मानव का आधुनिक मन जिस भयानक अन्तर्विरोध से ग्रस्त है, वह एक कलान्त प्रत्यक्षवाद और उतने ही दुर्दान्त पूर्णतावाद के बीच का अन्तर्विरोध है। यह अन्तर्विरोध एक ओर कला तथा दर्शन में तथा दूसरी ओर राजनीति के क्षेत्र में प्रतिफलित हुआ है, एक जगह उसकी परिणति असीमित व्यक्तिवाद में हुई है तो दूसरी जगह सर्वसत्तावाद में। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समसामयिक नगरीय जीवन-बोध में हो रहे परिवर्तन के संकेत हमें आश्वस्त नहीं करते हैं।

परिवर्तन के इन संकेतों को स्वतंत्रता-प्राप्ति से जोड़ कर देखें तो देश के विभाजन का कारुणिक प्रसंग भी दिखता है। भारतीय जन-मानस में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजनीति में आयी मूल्यहीनता के कारण मोहभंग की प्रक्रिया इसी समय शुरू हो जाती है। सत्ता के मात्र हस्तांतरण के कुचक्र ने राजनेताओं से जन-सामान्य की मोहभंग की स्थिति को उत्पन्न किया। राजनीतिक नेतृत्व देश के नवयुवकों के सामने कोई स्पष्ट आदर्श नहीं रख सका, इससे जन-सामान्य में निराशा का भाव घर कर गया और शहरी मध्यवर्ग के जीवन में अस्त-व्यस्तता का प्रवेश हुआ। यह स्थिति कई अन्य तात्कालिक राष्ट्रीय समस्याओं के कारण और अधिक गहराई से पसरती चली गयी। पंचवर्षीय योजनाओं की धीमी गति और प्रशासनिक दुलमुल रवैया के कारण इन योजनाओं को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। मूल्यों के विघटन ने शीघ्र ही पूरे देश को अपने शिकंजे में कस लिया, इसके साथ ही प्रशासन का अमानवीय चेहरा उजागर हुआ। इस अवमूल्यन से हमारी सांस्कृतिक चेतना भी प्रभावित हुई। “नेहरू के समाजवादी मॉडल में समाज को सामूहिक रूप से सपने दिखाये गये, आजादी के लगभग चार दशक तक। बाद में समाजवाद की सीमाएँ भी साफ नजर आने लगीं। आजादी के बाद केन्द्र सरकार के खिलाफ 1967 में कुछ राज्यों में विरोध के संगठित स्वर उभरे और वहाँ संविद सरकार का गठन हुआ। वास्तव में यह केन्द्र सरकार के खिलाफ आम लोगों का आक्रोश था। उसी समय पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी में किसानों का विद्रोह हुआ। इन दोनों घटनाओं को आजादी और उसके बाद भारत के निर्माण के प्रति संजोये गये सपनों को पूरा नहीं हो पाने की नाकामी के प्रतिफलन के रूप में रेखांकित किया गया।”¹⁹ इस निराशाजनक परिस्थितियों ने जीवन और साहित्य की गहरे रूप से प्रभावित किया। साहित्य मनुष्य की समय सापेक्ष प्रतिक्रिया है।

डॉ. शंभुनाथ सिंह ‘नवगीत’ शब्द को सापेक्षिक बतलाते हुए नवगीत के सृजन की

संभावना को हर युग में संभव मानते हैं- “नवगीत एक सापेक्षिक शब्द है। नवगीत की नवीनता युग सापेक्ष होती है। किसी भी युग में नवगीत की रचना हो सकती है। गीत रचना की परम्परा, पद्धति और भावबोध को छोड़कर नवीन पद्धति और विचारों के नवीन आयामों तथा नवीन भाव तरणियों को अभिव्यक्त करनेवाले गीत जब भी और जिस युग में भी लिखे जायेंगे, नवगीत कहलायेंगे।”²⁰ प्रसिद्ध नवगीतकार बुद्धिनाथ मिश्र नवगीत को सार्वभौम आन्दोलन की संज्ञा देते हुए कहते हैं- “जिसे आज नवगीत नाम से जाना जाता है, वह हिन्दी कविता की मुख्य धारा है, जो नये छन्द और नये तेवर में आधुनिक जीवन के यथार्थ का सकारात्मक स्वर और सटीक शब्द देने का सामर्थ्य रखती है।”²¹ प्रत्येक युग का काव्य अपने समय में का प्रतिबिम्ब होता है, नया होता है, आधुनिक होता है अपना स्व होता है, लेकिन परिस्थितियाँ बदलते ही वह अपने आंतरिक और बाह्य लय को तोड़ता हुआ आधुनिक अथवा ‘नव’ बन जाता है। छायावादोत्तर काल से ही अन्य विधाओं की भांति गीत विधा में भी बदलते सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव लक्षित हुए। युग-आग्रह के इस प्रभाव से नवगीत का भी अपना एक अलग स्वरूप प्रकट हुआ। इसमें भाषा, लय और छन्द की प्रधानता न होकर जीवन के यथार्थ से निकटता और अर्थ के लय की प्रधानता है।

‘नवगीत’ लोक-चेतना, लोक-संस्कृति, आत्मीयता और समष्टि से जुड़ी निजी विशेषता युक्त सृजन-धारा है। प्रारंभिक दिनों में नवगीत को नयी कविता के समर्थक रचनाकारों द्वारा उपेक्षा का शिकार भी होना पड़ा। इस पर छायावाद के उच्छिष्ट, रूमानी, नयी कविता की नस्ल आदि के आरोप भी लगे। किन्तु ‘नवगीत’ वस्तु और शिल्प के स्तर पर जीवन के यथार्थ बोध, अनुभूति की प्रधानता, मानवीय संबंधों के बदलते रूप, मन की सूक्ष्म अनुभूतियों का उद्घाटन और नवीन सौंदर्य-बोध आदि नवीन विषयों का प्रकाशन कर अपने पर लगाये गये सभी आरोपों को निर्मूल साबित कर एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकृत हुआ। नवगीत के बिम्बों, प्रतीकों, छन्दों, उपमानों एवं उसके कलात्मक उपादानों में व्यक्तिवादी स्वर न होकर जीवन-यथार्थ का प्रस्फुटन हुआ है जो समसामयिक जीवन-बोध से युक्त है। साहित्य में समसामयिकता की अवधारणा समय-सापेक्ष है, नवगीत मानव जीवन की जटिल वास्तविकताओं, चिंतन, मनन और विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरते हुए समसामयिक यथार्थ को उसकी सम्पूर्ण जटिलता के साथ उजागर करती है। 1960 तक आते-आते नयी कविता बिखराव और लक्ष्यहीनता के कारण अपने समय-सत्य से कट गई थी। युगीन सच्चाइयों को प्रकट करने की शक्ति उसमें नहीं रह गयी थी। इसी शून्य में समकालीन जीवन-परिवेश से सृजनधर्मी चेतना ग्रहण कर समकालीन कविता की प्रबल धारा के रूप में ‘नवगीत’ का उदय हुआ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. वागर्थ, सं.-प्रभाकर श्रोत्रिय,
प्रकाशक- भारतीय भाषा परिषद्, 36ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता-700017,
अंक-नवम्बर 1997, पृ.-48
2. नयी कविता-कांति कुमार
प्रकाशक-मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण-1975, पृ.-36
3. वही, पृष्ठ-39
4. नवगीत इतिहास और उपलब्धि-डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. वीणा गौतम
प्रकाशक-शारदा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990, पृष्ठ-18

5. वही, पृष्ठ-18
6. पंख और पांखुरी- वीरेन्द्र मिश्र, पृ.-185
7. वही- पृष्ठ-185
8. पांच जोड़ बाँसुरी - चन्द्रदेव सिंह
प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, संस्करण-1969, पृ.-1
9. सबके दावेदार, सं.-पंकज गौतम
आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश), अंक-अगस्त-1993, पृ.-19
10. वातायन (गीत अंक), संपादक-हरीश भदानी
बीकानेर, राजस्थान, वर्ष-1965, पृ.-36
11. अलाव, संपादक-रामकुमार कृषक
दिल्ली, अंक-5, अक्टूबर-1993, पृ.-43
12. वही, पृष्ठ-45
13. नयी कविता - डॉ. कांति कुमार, पृष्ठ-24
14. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, संपर्क-हिन्दुस्तान टाइम्स हाउस, 18-20, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली-110001, अंक-4 जून 1967, पृष्ठ-38
15. अक्षरा, सं. - प्रभाकर श्रोत्रिय
संपर्क-हिन्दी भवन, शामला हिल्स, भोपाल-462002
अंक : अप्रैल-जून 1995, पृ.-70
16. हिन्दुस्तानी, भाग-40, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश,
अंक : जनवरी-मार्च, 1980, पृ.-70
17. छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य - डॉ. सुरेश गौतम
प्रकाशक-प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1985 पृ.-59
18. वही, पृष्ठ : 236-237
19. हिन्दुस्तान (दैनिक समाचार-पत्र) पटना संस्करण
15 अगस्त, 2001 (स्वाधीनता दिवस परिशिष्ट), पृ.-01
20. 'कविता' - शंभुनाथ सिंह
राजस्थान, वर्ष - 1964, पृष्ठ-78
21. ऋतुराज एक पल का- बुद्धिनाथ मिश्र
प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003,
प्रथम संस्करण : 2013, पृष्ठ-12

भारत में पंचायती राज का इतिहास

● राजकुमार वर्मा
●● अखिलेश शुक्ल

सारांश- भारत ग्रामों का देश है। यहाँ की जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग ग्रामों में रहता है। महात्मा गांधी का विचार था कि असली भारत या भारत की आत्मा गाँवों में रहती है। महात्मा गांधी के समूचे चिंतन एवं दर्शन का केन्द्र गाँव ही रहे हैं। आज भी भारतीय गाँव एक ओर अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी रूढ़िवादिता से ग्रस्त है तो दूसरी ओर इन गाँवों में मूलभूत आवश्यक सुविधाएँ तथा चिकित्सा, संचार, विद्युत, पेयजल एवं शिक्षा का अभाव है। आज भी महती आवश्यकता है, कि विकास की समूची संरचना गाँव को केन्द्र मानकर की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में विकास की समस्त योजनाएँ ग्रामों से केन्द्र की ओर बनना अति आवश्यक है। पंचायत राज प्रजातंत्र और विकास में गाँवों की सहभागिता और सक्रियता को सर्वाधिक ताकतवर माना गया है। एकदम गाँव से जुड़े जनप्रतिनिधि जब अपने क्षेत्र की विकास योजनाओं और कार्यक्रमों में प्रभावशाली भूमिका निभा सकेंगे।

मुख्य शब्द- संरचना, गाँव, चिंतन, दर्शन

भारत में पंचायती राज का इतिहास अति प्राचीन है, वैदिक साहित्य, स्मृति ग्रंथों, कौटिल्यीय अर्थशास्त्र तथा शुक्रनीतिसार जैसी कृतियाँ प्राचीन भारत में विकेन्द्रीकृत व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। अथर्ववेद के पांचवे और अठारहवें श्लोकों में “जनता, विश, व प्रजा शब्द तथा 7वें और 12वें श्लोक में सभा और समिति का उल्लेख किया गया है। सभा शब्द को अंग्रेज विद्वान “हवीर” द्वारा “संसद” तथा ग्रिफिथ द्वारा ग्राम के लोगों की सभा अर्थात् ग्रामसभा या ग्राम पंचायत कहा गया है।

रामायण, भारत की आर्य संस्कृति का आदर्श ग्रंथ माना जाता है इसके विस्तृत अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि राजसत्ता निरंकुश नहीं थी अपितु सभाओं, संघ और ‘जनपद’ संस्थाएँ स्थान-स्थान पर बनी हुई थीं। इन स्वशासी संस्थाओं का शासन कार्य में सीधा हस्तक्षेप था तथा ये जनकल्याण कार्यों के संदर्भ में ऐसी स्थानीय संस्थाएँ थी जो शासन और जनता के मध्य महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती थी। रामायण काल में “गण” नामक संस्थाएँ बनाई गईं जिसके प्रधान को ‘गणवल्लभ’ कहा जाता था। भावी राजा की नियुक्ति में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। “गणों” के संगठन व कार्यों का विस्तृत संकेत प्राप्त नहीं होता है। मात्र इतना ज्ञात होता है कि “गण” राजनैतिक संस्थाओं के रूप में संगठित हो चुके थे।”

महाभारत के शांति पर्व में प्रत्येक ग्राम में एक अधिकारी नियुक्त किए जाने तथा क्रमशः दस, बीस, सौ और हजार ग्रामों के शासक नियुक्त किए जाने का उल्लेख मिलता है। ग्राम शासक को “ग्रामिक”, दस ग्रामों के शासक को “दशिक”, बीस ग्रामों के शासक को

- अतिथि विद्वान, समाजशास्त्र, शासकीय स्नातक महाविद्यालय, करैरा, जिला शिवपुरी (म.प्र.)
- प्राध्यापक, समाजशास्त्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश

“विशाधिप”, सौ ग्रामों के शासक को “शतपाल” और एक हजार ग्रामों के शासक को “सहस्रापति” की संज्ञा थी। ‘विष्णु’ स्मृति एवं ‘मनुस्मृति’ में गांव को राज्य के ढांचे की सबसे छोटी राजनैतिक इकाई माना गया है, तथा ग्रामिक के रूप में गांव के मुखिया का उल्लेख किया गया है।” मनु द्वारा गांवों की शासन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। गांव के अधिकारी को ‘ग्रामिक’ दस गांवों के स्वामी को ‘दशी’ बीस गांवों के स्वामी को ‘विंशति’ सौ ग्रामों के स्वामी को ‘शत ग्रामाधिपति’ कहा जाता था। ये समस्त पदाधिकारी राज्य द्वारा नियुक्त किए जाते थे। महाभारत काल में ग्राम्य शासन या स्थानीय स्वशासन, शासन इकाई का एक महत्वपूर्ण भाग था। इन संस्थाओं का शासन कार्य में सीधा हस्तक्षेप था।

मौर्य शासन काल को तीन केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय भागों में विभक्त किया गया था। गांवों के प्रशासन को ग्राम सभायें चलाती थी। ग्राम सभा प्रमुख ‘ग्रामिक’ की नियुक्ति शासन द्वारा होती थी। ‘ग्रामवृद्ध’ जो ग्रामसभा के सदस्य होते थे, ग्रामवासियों द्वारा निर्वाचित किये जाते थे ग्रामसभाओं के कार्य, ग्राम के झगड़े निपटाना, अपराधियों को दंडित करना, सड़के एवं पुल बनवाना थे। 100 ग्रामों के संघ को संग्रहण, 200 ग्रामों के संघ को ‘क्वार्टिका’, 400 ग्रामों को ‘द्रोणमुख’, तथा 800 ग्रामों के संघ को ‘महाग्राम’ कहा जाता था। प्रशासकीय दृष्टि से महाग्राम को स्थानुजा कहते थे। यह इकाई उस समय मेला एवं व्यापार का केन्द्र थी। ग्राम के प्रशासकीय स्टाफ में एक अध्यक्ष, एक शंखायम स्थापिका और जंघादिका आदि होते थे। ग्राम की सफाई के लिए एक अधिकारी होता था। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने बड़े साम्राज्य का शासक होते हुए भी एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की थी फिर भी स्थानीय ग्राम में स्वायत्त-शासन में हस्तक्षेप की नीति अपनाई गई। ग्राम अपने विषयों के अंतर्गत पूर्ण स्वतंत्र एवं स्वायत्तशासी थे। उनकी सभा ग्रामों में वृक्षों के नीचे चबूतरे पर होती थी। मौर्यकाल में ग्राम संस्था को एक सशक्त स्थानीय संस्था का स्वरूप प्राप्त था। मौर्यकालीन ग्राम संस्थायें भी आधुनिक भारत की ग्राम सभा जैसी थी। और इसे पर्याप्त प्रशासकीय, वित्तीय एवं न्यायिक अधिकार प्राप्त थे।”

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। गुप्त कालीन स्थानीय प्रशासन के अंतर्गत साम्राज्य को मुक्तियों में, तथा मुक्तियों को विषयों अथवा जिलों में बांटा गया था। प्रत्येक मुक्ति में दो या तीन जिले होते थे। ‘मुक्ति’ के अध्यक्ष को उपरिक जिले या विषय का अध्यक्ष ‘विष्यापति’ कहलाता था। जिले गांवों में विभक्त होते थे जो शासन तथा स्वशासन की सबसे छोटी इकाई होते थे। गांव के मुखिया को ग्राम सेवक कहते थे। गुप्तकाल में शासन व्यवस्था को विकेंद्रित किया गया। उस समय अनेक स्वशासी जनजातीय राज्य थे, और अनेक सामंत थे। राज्य मुख्यतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित थे। स्थानीय विभिन्नताओं के आधार पर जिले और गांव की संस्थाओं को प्रशानिक शक्तियां प्राप्त थी, इन संस्थाओं का कार्य स्थानीय संसाधनों का विकास करते हुए अपने अधिकार क्षेत्र में शक्ति एवं सुव्यवस्था बनाए रखना था।

गुप्तकाल से लेकर हर्षवर्धन के समय तक लगभग समान व्यवस्था चलती रही। हर्ष ने अपने शासन प्रबंध में सुधार की दृष्टि से राज्य को ‘मुक्तियों’ (प्रान्तों), ‘विषय’ (जिलों) और गांवों में बांटा था, विषयों के अन्तर्गत पाठक होते थे जो ग्राम की आज की तहसील या “तालुके” के समान होते थे। गांव का प्रमुख “क्षपटलिक (मुखिया)” था, उसके अधीन बहुत से लिपिक “करणिक” कहलाते थे। हर्ष के शासन प्रबंध में

लोकप्रिय सिद्धांतों एवं निरंकुश शासन का बड़ा सुन्दर समन्वय था। केन्द्रीय अधिकारियों और ग्रामीणों की लोकप्रिय संस्थाओं में बराबर तालमेल रखा जाता था। हर्ष के समय राज्य की आय का प्रमुख साधन “भूमिकर” था, जो उपज का छटवां भाग होता था, जिसे “भाग” कहा जाता था, और संभवतः अन्न के रूप में लिया जाता था, नगद लिए जाने वाले कर “हिरण्य” कहलाते थे। स्वेच्छा से भेंट या उपहार के रूप में दिए गए कर को “बलि” कहा जाता था। इनके अतिरिक्त चुंगी, पुलों, आदि पर भी कर लिए जाते थे, फिर भी प्रजा पर कर भार अधिक नहीं था।

इस प्रकार मौर्यकाल से लेकर हर्षवर्धन के समय तक शासन की आधारभूत इकाई ग्राम रहा था। ग्राम तथा नगरों का प्रशासन व लोक कल्याण के कार्यों के साथ पंचायतों को न्यायिक कार्य जैसे छोटे-छोटे मुकदमों में निपटाने जैसे कार्य भी सौंपे गए थे। लोग सुखी और प्रसन्न थे तथा स्वतंत्र रूप से अपना व्यापार करते थे। पंचायतों को स्थानीय मामलों के पर्याप्त स्वायत्ता प्राप्त रही।

मध्यकाल में मुहम्मद बिन कासिम के बाद कई विदेशी आक्रमण हुए, जहाँ तक देश की राजनैतिक व्यवस्था का प्रश्न है, मुस्लिम शासकों ने उसके मूल को बदलने की कोई चेष्टा नहीं की इसलिए इतिहासकार हैबेल ने लिखा है कि “मुस्लिम सुल्तानों ने भारत की परम्परागत ग्राम संस्थाओं का उपयोग करना ही उचित समझा।” मुगलकाल भारतीय इतिहास में ग्राम्य प्रणाली के विनाश का काल कहा जा सकता है। पंचायत प्रणाली की परम्परा जो दीर्घकाल से चली आ रही थी उसे जैसा आघात इस युग में लगा संभवतः कभी नहीं लगा। यद्यपि अकबर महान शासक था किन्तु उसने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया, फिर भी साम्राज्य जिलों, परगनों और गांवों में विभक्त था और इन स्तरों पर प्रशासनिक इकाइयाँ कार्यशील बनी रही थी, गाँव में मुखिया भी होते थे। मुगल शासक विदेशी होने के साथ-साथ शहरी रुचि के थे, वे अधिकाधिक विलासी जीवन का आनंद लेना चाहते थे। जनकल्याण की भावना से कहीं अधिक उन्हें राजस्व वसूली की चिंता रहती थी। मुगलकाल में निःसंदेह बहुत से नगरों को समुन्नत एवं सुसज्जित किया गया क्योंकि शासकों का उन्हीं से लगाव था, स्वाभाविक रूप से ग्राम, उन शासकों की दृष्टि को नगरों की अपेक्षा कम ही आकर्षित कर सके थे। ग्राम पंचायतों का उपयोग सामान्यतः कर वसूली के लिए ही किया जाता था। प्रत्येक गाँव में एक मुखिया या मुकद्दम होता था। वही गाँव और सरकार के बीच की कड़ी था। उसी के माध्यम से सरकार कृषकों से व्यवहार करती थी। आवश्यकतानुसार समय-समय पर उसके अधिकारों और दायित्वों में परिवर्तन किया जाता रहा। ग्राम का मुखिया या मुकद्दम गाँव की अर्थ-नीति में निश्चय ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था। इस प्रकार मुगलकाल में भी ग्राम पंचायत कार्य करती रही। यद्यपि उनकी प्रतिष्ठा एवं प्रभाव को काफी धक्का लगा। केन्द्रीय करण बदलता गया और स्थानीय स्वशासन केन्द्रीय प्रशासन की सहगामी (अनुगामी) के रूप में कार्य करता रहा। स्थानीय स्वशासन सरकारी तंत्र प्रणाली के साथ सहयोग से कार्य करता रहा, और उन्हीं मामलों में इसी का अंग बना रहा।

मुगलकाल के आगमन तक भारत में स्थानीय स्वशासन पद्धति जीवित अवस्था में थी। इस प्रकार ग्राम पंचायतें मुगलकाल में भी जीवित रही थी किन्तु उन्हें विकास कार्य जैसे महत्वपूर्ण दायित्व तो नहीं सौंपे गये थे, फिर भी न्यायिक क्षेत्र में स्थानीय विवादों के निपटाने जैसे मामलों में उन्हें शासन की ओर से भी सम्मान दिया जाता था। मुगल शासक प्रारंभ में साम्राज्य विस्तार में लगे रहे और उन्होंने प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं किया, बाद में उन्होंने

जागीरदारी प्रणाली स्थापित की। मालगुजार ठेकेदारी से भू-राजस्व वसूल करने लगे, इस प्रथा ने गाँव समुदाय को बहुत कमजोर कर दिया। भारत में 11 वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मुगलों का स्थायी शासन रहा। मुगल शासकों में अपवाद स्वरूप अकबर का शासन अच्छा रहा, किन्तु वह भी संवैधानिक तानाशाह था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में “शिवाजी योजना” प्रशासन के लोकप्रिय संघ के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के पूर्व तक हिन्दू-मुस्लिम एवं पेशवा शासकों के समय में भारतीय ग्रामीण गणराज्य विकसित होते रहे, किन्तु ईस्ट इण्डिया कंपनी के अत्यधिक एवं अनैतिक लोभ के कारण ग्राम पंचायतें क्रमशः विघटित होती रही। गांव की कास्तकारी पद्धति के स्थान पर रैयतवारी पद्धति के जान बूझकर किए गए प्रवर्तन ने ग्रामीण गणराज्यों के सामूहिक जीवन का अंत ही कर दिया। ब्रिटिश नौकरशाही द्वारा समस्त न्यायिक एवं प्रशासनिक अधिकारों का केन्द्रीयकरण किया गया, और युगों से चली आ रही ग्रामीण पद्धति अपने अधिकार एवं प्रभाव से वंचित हो गई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विशेष स्वार्थ के कारण ही भारतीय ग्रामीण समुदाय के जीवन को आघात लगा एवं कर भार के आर्थिक शोषण से ग्रामीण अर्थव्यवस्था चकनाचूर हो गई। जमींदारी रैयतवारी प्रथा ने जोर पकड़ा, क्योंकि उनकी स्वयं की स्थापित यह प्रथा उनके ही हित में थी। प्राचीन भारतीय ग्राम पंचायत प्रणाली को गहरा आघात लगा। इसकी क्षतिपूर्ति के रूप में ऐसे अधिकारी नियुक्त किये गये जो अधिकाधिक आर्थिक शोषण करके अंग्रेजी शासक को अपनी चाटुकारिता से प्रसन्न रख सकें।

ब्रिटिश शासन काल में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की दिशा में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के महत्व को समझाते हुए पंचायत प्रणाली के विकास हेतु सर्वप्रथम “बंगाली गाँव चौकीदार अधिनियम” 1870 में बनाया गया था, जिसके अनुसार पंचायतें केवल अपना औपचारिक अस्तित्व ही बनाये रख सकी। ब्रिटिश भारत में लार्ड रिपन के शासनकाल 1880-84 में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का विस्तार किया गया, किन्तु शक्तिशाली ब्रिटिश नौकरशाही व्यवस्था ने ग्राम स्तर पर पंचायत व्यवस्था के प्रभाव को विफल कर दिया। 1907 में एक शाही आयोग का गठन किया गया, जिसने पंचायत व्यवस्था की युक्तियुक्तता को प्रतिपादित किया। 1919 के भारत शासन अधिनियम में भी पंचायत व्यवस्था का उल्लेख कर विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया गया, किन्तु राजनीतिक गतिरोध एवं अर्थाभाव में यह व्यवस्था क्रियान्वित नहीं हो सकी। इस शताब्दी (20वीं) में पंचायती राज और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के संभवतः महानतम प्रवक्ता गांधीजी रहे। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी ने स्पष्ट किया था कि-“सर्वोपरि कांग्रेस तत्त्वतः उनमें कोटि-कोटि अर्ध-क्षुधितों की प्रतिनिधि है जो सारे देश में बिखरे सात लाख गांवों में बसते हैं। ऐसा प्रत्येक हित जो संरक्षण के योग्य है, उनके अधीन ही रह सकता है।”

गांधी जी ने ग्रामीण विकास हेतु पंचायती राज एवं विकेन्द्रीकरण की अपरिहार्यता को स्वीकार किया और स्पष्ट किया कि आदर्श लोकतंत्र की सफलता का आधारभूत तत्व ग्रामीण स्वयत्तता है। उन्होंने घर-घर एवं ग्राम-ग्राम तक लोकतंत्र पहुँचाने का प्रयत्न किया, उनके अनुसार-“यदि आदर्श गाँव का मेरा स्वप्न पूर्ण हो जाए तो भारत के सात लाख गांवों में से हर एक-एक समृद्ध प्रजातंत्र बन जाएगा। स्थानीय स्तरों पर शक्तियों का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण ही गांवों को आत्म-निर्णय की चेतना प्रदान कर उसे विकास की मुख्य धारा से जोड़ सकता है। गांधीजी ने “ग्राम-स्वराज्य” की अपनी अवधारणा में इस तथ्य को स्वीकार

किया कि-“प्रत्येक ग्राम को पूर्ण गणतंत्र होना चाहिए, जो अपनी जीवन संबंधी आवश्यकताओं के लिए एक दूसरे से स्वतंत्र हो और फिर दूसरी बहुत सी बातों के लिए जिसमें आश्रितता जरूरी हो वह एक दूसरे पर निर्भर रहें।

ग्राम गणराज्य की गांधीवादी अवधारणा का मूल उद्देश्य था-गांवों को आत्म निर्णय की स्वतंत्रता प्रदान करना, व्यक्ति के पास अपने व्यक्तित्व के अभिव्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता का होना, जो भारत की वास्तविक स्वतंत्रता की पूर्व शर्त है। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय सामाजिक व्यवस्था सामन्तवादी थी, जो व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण की प्रतीक थी, गांधी जी जानते थे, कि जब तक 2400 कि.मी. की चौड़ाई में फैले गांवों को पूरी तरह ध्यान नहीं दिया जाएगा, भारत की अर्थनीति संबंधी लम्बी चौड़ी बातें निरर्थक होंगी। गांधीजी ने गांवों के जीवन को पुनर्गठन करने की बात कही, “जो अधिकतम संभव मात्रा में आत्मनिर्भर होगी। देश की भूमि संबंधी नियमों को इस आधार पर संशोधित किया जाएगा कि भूमि पर अधिकार सचमुच जीवन स्तर के अनुरूप अपने परिवार के भरण पोषण के लिए आवश्यकता से अधिक किसी कृषक के पास न होगी। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि स्वतंत्रता का आरंभ निम्नतम तल से होना चाहिए। अतएव प्रत्येक गांव एक शक्ति संपन्न गणराज्य या पंचायत होगा। इसका अर्थ है-प्रत्येक गांव को आत्म-संतुष्ट एवं अपनी व्यवस्था करने में यहाँ तक संपन्न होना होगा कि सारी दुनिया से मुकाबला करके भी वह अपनी रक्षा कर सके।

भारतीय स्वाधीनता का स्वप्न जिस जर्जर और कमजोर अर्थ-व्यवस्था की नींव पर साकार हुआ उसे एक नवीन दिशा एवं नया आयाम देना निर्वाचित सरकारों की प्रथम आवश्यकता थी। संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता, समानता, विश्व-बन्धुत्व तथा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय का जो ताना-बाना बुना था, उसे मूर्तरूप देना तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में असंभव नहीं पर दुरूह कार्य अवश्य था। संविधान में लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना के जिस स्वरूप का समावेश किया गया था, उसके लिए किसी विशेष कार्य की योजना संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क में नहीं थी। इतना अवश्य था कि स्वतंत्र भारत में विधि पूर्वक निर्वाचित प्रथम सरकार ने देश के नागरिकों को श्रेष्ठ जीवन स्तर प्रदान करने के उद्देश्य से आर्थिक और सामाजिक नियोजन की आवश्यकता को महसूस किया। संविधान निर्माताओं ने गांधीवादी समाज व्यवस्था के प्रारूप को अपनाते हुए संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 40 में “स्वशासन की इकाई के रूप में निश्चित शक्ति-सत्ता संपन्न ग्राम पंचायतों के गठन का प्रस्ताव समाविष्ट किया था। ग्रामीण स्वायत्तता की अवधारणा क्योंकि राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का विषय था, अतः सरकार के पास इसे लागू करने की विधिक प्रबिद्धता नहीं थी। इसी कारण स्वाधीनता के एक दशक बाद ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया का प्रारंभ करते हुए पंचायती राज का प्रारंभ किया जा सका। गांधीजी ने भारतीय स्वाधीनता से पूर्व जिस समृद्ध और आत्मनिर्भर राष्ट्र की कल्पना की थी उसका बीजारोपण ग्रामीण गणतंत्र की उर्वर भूमि में ही हो सकता था। किंतु यह भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया का दुःखद पक्ष ही कहा जाएगा कि युगदृष्टा गांधीजी के इस विचार का प्रस्फुटन बहुत बाद में हुआ जिसके पीछे प्रशासन की उदासीनता अथवा एक विशुद्ध नियोजन नीति का अभाव ही हो सकता है।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् शासन द्वारा ग्रामीण विकास हेतु सामुदायिक विकास का प्रारंभ 1952 में हुआ। जिसका उद्देश्य सामाजिक पुनर्निर्माण एवं आर्थिक नियोजन की योजनाओं के प्रति भारत के ग्रामीण जनमानस में सकारात्मक रुचि जागृत

करना था। यह योजना लोगों के अधिकतम कल्याण के उद्देश्य से प्रारंभ हुई।

ग्रामीण स्तर पर जनता के अधिकतम सहयोग को प्राप्त करने के उद्देश्य से खण्ड परामर्शदायी समितियों की स्थापना की गई। इन समितियों का गठन गांव की जनता, उस क्षेत्र के विधायक और सांसद को मिलाकर किया जाता था। ग्रामीण विकास के लिए यह व्यवस्था आदर्श और उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी। सामुदायिक विकास परियोजनाओं का उद्देश्य ग्रामीण जनता में प्रगतिशील दृष्टिकोण विकसित करना, उत्पादन और ग्रामीण स्वरोजगार में वृद्धि हेतु शिक्षण व प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, उन्नत कृषि उपकरणों की व्यवस्था करना, आवास, शिक्षा सुविधाएं, स्वास्थ्य सेवाएं, कुटीर और ग्रामीण उद्योगों का विकास, परती और बंजर भूमि सुधार इत्यादि था। इन योजनाओं में ग्रामीण जनता के अधिकतम सहयोग को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही खण्ड परामर्श दात्री समितियों की व्यवस्था की गई थी। किंतु इन समितियों द्वारा ग्रामीण विकास संबंधी उपरोक्त उद्देश्यों के प्रति उचित और सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित नहीं की जा सकी। सामुदायिक विकास के साथ-साथ उसके एक वर्ष के उपरान्त ग्रामीण पुर्ननिर्माण का एक अन्य कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। जिसे राष्ट्रीय प्रसार सेवा का नाम दिया गया।

1957 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा की ग्रामीण विकास का क्षेत्र में उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय प्रसार सेवा की असफलता का मूल कारण उसमें प्रतिनिधित्वक स्वरूप का अभाव होता है बताया। और यह सुझाव दिया कि ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को अधिकाधिक सफल बनाने हेतु स्थानीय स्तरों पर अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधित्वक स्वरूप का जनप्रतिनिधि संस्थाओं का निर्माण किया जाना चाहिए। बलवन्त राय मेहता समिति ने “ग्राम गणतंत्र” के गांधीजी के स्वप्नों को साकार करने के उद्देश्य से स्थानीय स्तर पर ग्राम सरकार के गठन को प्रस्तावित किया जिसे उन्होंने “पंचायत राज” नाम दिया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में एक त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था प्रस्तावित की गई, जिसमें ग्राम स्तर पर “ग्राम पंचायत” मध्यस्तर पर पंचायत समिति तथा शीर्ष स्तर पर जिला परिषद की स्थापना का प्रस्ताव किया।

जनवरी 1959 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने जिला तथा ब्लाक स्तर पर पंचायत व्यवस्था का अनुमोदन कर दिया तथा यह सुझाव भी दिया कि प्रत्येक राज्य को उस राज्य में विद्यमान विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप “पंचायत व्यवस्था का विकास करना चाहिए। पंचायती राज व्यवस्था के पीछे यह अवधारणा थी कि जनता को स्वशासन का अपना दायित्व समझना चाहिए तथा ग्रामीण विकास की विविध कार्यक्रमों जैसे-कृषि, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सिंचाई, पशुपालन इत्यादि में सक्रिय सहभागिता करना चाहिए। इसके साथ ही स्थानीय स्तर पर नीति निर्माण संबंधी कार्यों में जनसहभागिता के प्रति सार्वजनिक उत्साह में वृद्धि होनी चाहिए। 1959 से प्रारंभ होकर पंचायती राज व्यवस्था 3-4 वर्षों तक देश के अधिकांश राज्यों द्वारा अपनी परिस्थितियों के अनुरूप अपनाने का प्रयत्न किया गया।

1959 से 1964 के मध्य पंचायती राज और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रति प्रशासनिक और राजनीतिक उत्साह चरम पर रहा। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों ने पंचायती राज व्यवस्था के प्रति पर्याप्त सक्रियता दिखाई। किंतु 1965 से 1969 का काल पंचायत राज व्यवस्था के लिए ठहराव का काल रहा। प्रशासनिक उदासीनता, वित्तीय

अनुदान की कमी, पंचायतों द्वारा अनेक निजी वित्तीय संसाधनों के प्रति उदासीनता, समयबद्ध चुनाव का न हो सकना इत्यादि गतिरोधों के कारण पंचायती राज की यह अवधारणा पतनोन्मुख होने लगी। 1970 से 1977 के मध्य पंचायती राज संस्थाओं का बहुत ह्रास हुआ। 1977 में जनता सरकार ने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवन प्रदान करने हेतु अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। जिसने द्विस्तरीय पंचायत प्रारूप का सुझाव दिया। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट किया कि राज्य स्तर से नीचे स्थानीय स्तर पर विकेन्द्रीकरण का प्रथम बिन्दु जिला है जहां ग्रामीण विकास के लिये उच्च कोटि का तकनीकी ज्ञान उपलब्ध है। जिले के निचले स्तर पर मंडल पंचायत का प्रस्ताव किया गया, किन्तु जनता सरकार के असामायिक निपात से इस प्रतिवेदन को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। प्रधानमंत्री राजीव गांधी के काल में श्री जी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति (1985) का गठन किया गया। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस साहसिक योजना के अंतर्गत जिला स्तर को विशेष महत्व का प्रतिपादित किया गया। इसी प्रकार 1986 में ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रेरणा से प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के महत्व का मूल्यांकन करते हुए एल.एम. सिंधवी समिति ने पंचायत व्यवस्था की निम्नवत इकाई “ग्राम” की महत्वपूर्ण स्थिति का प्रतिपादन किया गया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ग्रामीण विकास के साधन के रूप में पंचायती राज व्यवस्था का क्रियान्वयन एक सार्थक एवं सफल प्रयास होता किन्तु पंचायती राज व्यवस्था के प्रति शासन के पास विधिक प्रतिबद्धता का न होना तथा संवैधानिक उपबंधों में पंचायती राज व्यवस्था का स्पष्ट विधान न होना इस आदर्श व्यवस्था के क्रियान्वयन में गतिरोध उत्पन्न करता रहा है। शायद यह उन कारणों में से एक रहा है, जिसमें शासन द्वारा चलाये जा रहे ग्रामीण विकास के अनेकों कार्यक्रम सफलता के सोपान नहीं चढ़ सके। सामुदायिक विकास परियोजना 1952 के अध्ययन भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास से संबंधित अनेकों योजनाएं लागू की गई, जिस पर दृष्टि निपात आवश्यक है। सन् 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम, खादी एवं ग्रामोद्योग कार्यक्रम (1957), ग्रामीण आवासीय परियोजना (1960), व्यवहारिक आहार कार्यक्रम (1962), ग्रामीण उद्योग परियोजना (1962), गहन कृषि कार्यक्रम (1964), बहुउद्देशीय अनुसूचित जनजाति कार्यक्रम, (1960), गहन जिला कृषि कार्यक्रम (1966), ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम (1969), सूखा क्षेत्र पीड़ित कार्यक्रम (1970), ग्रामीण स्वरोजगार नगदी योजना (1971), लघु कृषक विकास एजेंसी (1971), जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1972), ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1972), विशेष दुग्ध उत्पादक कार्यक्रम (1975), बीस सूत्रीय कार्यक्रम (1977), काम के बदले अनाज कार्यक्रम, संपूर्ण ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1976), अन्त्योदय कार्यक्रम (1979), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1979), स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, (ट्राइसेम) (1979), राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम व महिला और ग्रामीण बाल विकास कार्यक्रम (1983), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम इत्यादि योजनाएं प्रारंभ की गई।

उपरोक्त योजनाओं के अतिरिक्त इंदिरा आवास योजना, ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम, अग्नि बीमा योजना, सामाजिक सुरक्षा कोष, सामूहिक बीमा योजना, जवाहर रोजगार योजना, को भी ग्रामीण विकास योजना के रूप में क्रियान्वित किया गया। किन्तु उचित प्रशासनिक दिशा निर्देश और क्रियान्वयन अभिकरण के अभाव में इन योजनाओं को

ग्रामीण विकास से जोड़ा नहीं जा सका। इन्हें सफल बनाने हेतु पूर्व से ही पंचायती राज संस्थाओं से जोड़ने की आवश्यकता महसूस की गई, और वर्तमान में इन योजनाओं को सफल और सार्थक बनाने के उद्देश्य से पंचायती राज संस्थाओं के अधीन करने की शासन की योजना है। इस सन्दर्भ में पहल करते हुए म.प्र. शासन के ग्रामीण विकास के समस्त कार्यक्रमों को पंचायती राज संस्थाओं के अधीन कर दिया गया है। प्रधानमंत्री राजीव गांधी के काल में प्रारंभ की गई जवाहर रोजगार योजना के क्रियाशील बनाने हेतु इसे ग्राम पंचायतों के अधीन रखा गया था। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार को प्रोत्साहित करना था। ग्रामीण रोजगार की अन्य योजनाओं-जैसे राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई. पी.) तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का इस कार्यक्रम में विलय कर दिया गया। 1988-89 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) तथा एन.आर.ई.पी. की एक उपयोजना के रूप में 10 लाख कुंआ योजना का प्रारंभ किया गया। एक अप्रैल सन् 1989 से इस योजना को जरोयो के अंतर्गत चलाया जा रहा है। 1985-86 में आर.एल.ई.जी.पी. की एक उपयोजना के रूप में इंदिरा आवास योजना का प्रारंभ किया गया। जिसका उद्देश्य अनुसूचित जाति, जनजाति के सबसे गरीब लोगों तथा मुक्त कराये गये बंधुआ मजदूरों के लिये निःशुल्क आवास का निर्माण कराना है। 1989 में इस योजना को जवाहर रोजगार योजना में मिला दिया गया। जवाहर रोजगार योजना की विशिष्टता इस बात में है कि प्रथम बार ग्राम पंचायतों को इतने महत्वपूर्ण वित्तीय साधनों द्वारा महत्वपूर्ण परियोजनाओं के क्रियान्वयन का दायित्व सौंपा गया है, जो निश्चय ही ग्रामीण स्वयत्तता और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम है।

1990 का दशक पंचायती राज और ग्रामीण विकास की अन्यान्याश्रितता के लिए महत्वपूर्ण रहा है। प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा प्रारंभ की गई अधिकतम ग्रामीण स्वयत्तता से संबंधित पंचायती राज योजना 1992 में मूर्त रूप धारण कर सकी, जब 73 वां संविधान संशोधन पारित कर 24 अप्रैल 1993 में इसे लागू किया गया। इस महत्वपूर्ण संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भगा जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत 243 वें अनुच्छेद में 15 उप अनुच्छेदों को जोड़कर पंचायती राज व्यवस्था को प्रथम बार संवैधानिक स्तर प्रदान कर एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया गया है। इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 243 जी और 11 वीं अनुसूची जोड़कर पंचायती राज व्यवस्था को ग्रामीण विकास के साधन के रूप में स्वीकार करते हुए 29 विषयों में उनके व्यापक अधिकारों का समावेश किया गया है। इस संविधान संशोधन की विशिष्टता कई कारणों से है। यह एक त्रि-स्तरीय व्यवस्था होने के साथ-साथ (ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्यवर्ती स्तर पर जनपद पंचायत और जिला स्तर पर जिला पंचायत) अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं हेतु आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त पंचायतों को शुल्क, चुंगी, फीस लगाने और संग्रहित करने के अधिकार देकर तथा राज्य सरकार की आकस्मिक निधि से वित्तीय व्यवस्था कर पंचायतों को वित्तीय विषयों में अधिकाधिक आत्म-निर्भर बनाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा हेतु वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था, नगर पंचायतों द्वारा खातों के लेखा परीक्षण संबंधी प्रावधान स्वागत योग्य कदम है।

73 वें संविधान संशोधन द्वारा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की जो व्यवस्था स्थानीय स्तर के निम्नतम स्तर पर की गई है उसे निश्चय ही ग्रामीण गणतंत्र की गांधीवादी अवधारणा का आधारबिन्दु कहा जा सकता है। साथ ही पंचायतों की स्थिति राज्य के समानांतर, शक्ति

की महत्वपूर्ण सहयोगी संस्था की हो गई है। नियमित चुनावों की व्यवस्था और पंचायतों को संवैधानिक स्तर प्रदान कर राज्य सरकारों पर जो विधिक बाध्यता लागू की गई है वह निश्चय ही एक सकारात्मक सोच है। इसी प्रकार पंचायतों की आत्म निर्भरता हेतु वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था उनकी स्वायत्तता और स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बढ़ावा देती है। इस अधिनियम के अंतर्गत राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा ग्राम पंचायतों के निर्वाचन का प्रावधान निष्पक्ष और समयबद्ध चुनाव, को संपन्न कराना सुनिश्चित करता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण दृष्टव्य बिन्दु यह है कि पंचायतों को ग्रामीण विकास कार्यक्रम की दृष्टि से अधिकाधिक अधिकार संपन्न बनाया गया है। जो ग्रामीण विकास की विविध योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिए अपरिहार्य है। 11 वीं अनुसूची में जिन 29 विषयों का पंचायती राज के कार्यक्षेत्र में रखा गया है। उनमें कृषि प्रसार सहित कृषि सुधार व मृदा संरक्षण, लघु सिंचाई, जल प्रबंध, मस्त्य पालन व पशु पालन, सामाजिक वानिकी व फार्म वानिकी, लघु वनोपज, खाद्य संसाधन उद्योगों सहित पशु उद्योग, खादी ग्राम एवं कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईंधन, सड़कें, पुल, सेतु, घाट और संचार के साधन, ग्रामीण विद्युतीकरण, गैर परंपरागत ऊर्जा के स्रोत, गरीबी उन्मूलन, प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा तकनीकी प्रशिक्षण और शिक्षा, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय और सांस्कृतिक कार्यक्रम बाजार एवं मेले, प्राथमिक चिकित्सा एवं उपचार केन्द्रों सहित स्वास्थ्य एवं सफाई, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, सामाजिक कल्याण, कमजोर वर्गों विशेष रूप से अपंग और मानसिक रूप से विकलांगों का कल्याण, अनुसूचित जाति, जनजाति का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सामुदायिक संपत्ति का अनुरक्षण है।

स्थानीय संस्थाएँ सरकार के दूसरे अंगों से बढ़कर जनता को लोकतंत्र की सुरक्षा देती हैं। साथ ही विकेन्द्रीकरण एवं शक्ति से भागीदारी के प्रति निष्ठा व्यक्त करती हैं। पंचायती राज, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक रूप है, जिसमें लोगों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करके पूर्व-निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयास किये जाते हैं। अच्छी शासन-व्यवस्था के मुख्य लक्ष्यों के अंतर्गत व्यवस्था को अधिकाधिक क्षमतावान बनाने हेतु जन-आवश्यकताओं को पूर्ण करना, जन-समस्याओं का निराकरण, तीव्र आर्थिक प्रगति, सामाजिक सुधारों की निरंतरता, वितरणात्मक न्याय एवं मानवीय संसाधनों का विकास आदि शामिल हैं। पंचायती राज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण विकास करना है। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन में वृद्धि, ग्रामीण उद्योगों का विकास, परिवार कल्याण कार्यक्रम, सामाजिक वानिकी एवं वृक्षारोपण कार्यक्रम, पशु संरक्षण, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, शिक्षा व्यवस्था आदि का उचित प्रबंधन करके, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करना भी पंचायती राज का मौलिक उद्देश्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने उदारवादी लोकतंत्र अपनाया। भारतीय लोकतंत्र पूर्णतः ब्रिटिश संसदीय मॉडल पर आधारित है, किन्तु इसमें कुछ भारतीय मूल्यों का भी समावेश किया गया है। प्राचीनकाल में भारत में जिस पंचायती राज की व्यवस्था का विकास हुआ था, उसका स्वरूप राजनीतिक कम, सामाजिक अधिक था। ग्राम पंचायतें गाँवों के संपूर्ण जीवन को दिशा देती थीं तथा भारतीय ग्रामीण जीवन स्वावलंबी था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- अग्रवाल, एस.एन. (1946) - गाँधीयन कन्स्टीट्यूशन फार फ्री इण्डिया, इलाहाबाद,

किताबिस्तान।

- बंग, ठाकुर दास (1997) - हमारे गांव में हम सरकार, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।
- बेटिले एन्ड्रे (1969) - “कास्ट क्लास एण्ड पावर”, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई।
- चैम्बर्स, आर., (1983) - सरल डेवलपमेन्ट, पुटिंग द लास्ट फास्ट, लण्डन, लांगमैन।
- चौहान, बी.आर. (1967) - लीडरशिप इन राजस्थान व्हिलेज, लीडरशिप इन इण्डिया में संकलित।
- दत्त, विजय रंजन (2009) - ग्राम स्वराज योजना और पंचायती राज की आधारशिला, योजना, मासिक पत्रिका, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अक्टूबर, पृ. - 43-46।
- दत्त, विजय रंजन (1997) - पंचायती राज संकल्पना और वर्तमान स्वरूप, सर्व संघ प्रकाशन, वाराणसी।

वर्तमान विश्व में गांधी जी के विचारों की प्रासंगिकता

• शालिनी चतुर्वेदी

सारांश- महात्मा गांधी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के प्रमुख उपासक, कर्मशीलता के अवतार एवं तपस्या के एक ऐसी प्रतिमूर्ति थे जिन्हें प्राचीनकाल के ऋषि, मध्यकाल के संत और आधुनिक युग के महात्मा के रूप में जन-जन का सम्मान प्राप्त है। वे एक ऐसे विश्व आख्यान हैं जिनके नाम से विश्व की तीन पीढ़ियां सुपरिचित हैं। विश्व के कल्याण की बात सोचने वाले और उसी उद्देश्य से अनुप्राणित महात्मा गांधी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वह दृष्टा व उपदृष्टा थे, गांधीजी एक ऐसी महान विभूति थे जिन्होंने दीर्घ अवधि तक चलने वाले आंदोलनों के माध्यम से राज्य सत्ता प्राप्त करने की राजनीति विकसित की और उसका सफल प्रयोग भी किया। गांधीजी निसन्देह: एक महान रणनीतिज्ञ होने के साथ-साथ सत्य व अहिंसा के पुजारी भी थे, वे एक ऐसी नवीन व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जिस पर भारतीय समाज का पुनर्गठन किया जा सके। प्रस्तुत शोध पत्र गांधीजी के जीवन दर्शन, चिंतन, मनन के विविध आयामों व उसकी उपादेयता का वर्तमान वैश्विक संदर्भ में महत्व और उसकी प्रासंगिकता का वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक विवेचन करने का प्रयास है। नवीन सहस्राब्दी की चुनौतियों के संदर्भ में गांधी जी के द्वारा प्रतिपादित किये गये सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, अपरिग्रह, सर्वोदय, ग्राम स्वराज्य जैसे सिद्धांतों का परीक्षण व मूल्यांकन करने के साथ-साथ प्रस्तुत शोध पत्र भविष्य में गांधीजी के दर्शन की उपादेयता को भी वर्णित करता है।

मुख्य शब्द- एकांतवास, अपरिग्रह, वैश्विक, लोकतांत्रिक, प्रतिमूर्ति, प्रकारेण, आध्यात्मिक, सात्विक, कालजयी, सर्वोदय, रणनीतिकार

गाँधी जी मात्र विचारक, नेता, समाजसुधारक नहीं थे अपितु राजनीति, चिन्तन एवं दर्शन को नया स्वरूप देने वाले सक्रिय राजनीतिज्ञ, संत एवं विचारशील चिन्तक थे। गाँधी जी के चिन्तन का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं बहुआयामी है। वे भारतीयता के सांचे में ढले सत्य, अहिंसा, विश्वशांति, प्रेम की प्रतिमूर्ति एवं संत होने के साथ-साथ एक बहुत बड़े रणनीतिकार थे। शांति, प्रेम और अहिंसा के दूत महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन में मानवता के उच्चतम आदर्शों का समावेश निहित है। उनके जीवन दर्शन में ही उनका प्रेम, शान्ति, आत्मनिर्भरता एवं सहिष्णुता का अमर संदेश झलकता है।

वर्तमान समय में गाँधी के विचारों, चिन्तन की प्रासंगिकता पर विचार करें तो निसन्देह उनकी विलक्षण राजनीतिक दूरदृष्टि और सात्विक विचारों में आज 21वीं शताब्दी के राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत सभी द्वंदों का समाधान निहित है। महात्मा गाँधी जी के कालजयी विचार, सामाजिक एवं धार्मिक समन्वय, सहयोग, समभाव, सत्य, अहिंसा एवं व्यक्ति का आत्मसम्मान यह सब आज विश्वस्तरीय मान्यता प्राप्त सिद्धांत हैं। उन्होंने अपना जीवन भारत के स्वाधीनता संग्राम तथा मानवता के उद्धार को समर्पित किया। जीवन के अंतिम क्षणों तक मानवीय और आध्यात्मिक सिद्धांतों में उनकी दृढ़ आस्था रही। आज के

तेजी से परिवर्तित हो रहे विश्व परिदृश्य में जहाँ आपसी तनाव व मतभेद बढ़ते जा रहे हैं, तब उनकी अहिंसा की दी हुई शिक्षा अधिक प्रासंगिक और प्रभावशाली हो जाती है क्योंकि आज का मानव जिन कठिनाईयों से गुजर रहा है, गाँधी जी का मार्ग ही उसका पथ आलोकित कर सकता है तथा शांति, सुरक्षा, उन्नति एवं समृद्धि के पथ पर बढ़ता हुआ मानव एक घृणाविहीन युद्ध विहीन एवं प्रेमपूर्ण विश्व की रचना कर सकता है।

गाँधी जी क्रियाशील एवं व्यावहारिक दार्शनिक थे जो सिद्धांत एवं व्यवहार के एकीकरण पर बल देते थे वे एक ऐसे मार्ग अन्वेषक थे, जिनके निश्चित लक्ष्य थे। उनका दर्शन, एक व्यापक दर्शन था जिसके अनुसार मनुष्य के तीन अनिवार्य घटक हैं- आत्मा, बुद्धि एवं हृदय। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित किए गये दर्शन की बुनियाद सत्य और अहिंसा है, जो शाश्वत प्रासंगिकता लिए हुये हैं। गाँधी जी मात्र एक संत अथवा धार्मिक नहीं थे अपितु उनका प्राथमिक उद्देश्य भारत को स्वतंत्र करना था लेकिन वे स्वतंत्रता के लिये आध्यात्मिक साधनों के ही प्रयोग के पक्षधर थे। येन-केन प्रकारेण स्वतंत्रता प्राप्त करना उनका लक्ष्य नहीं था। वे सत्य अहिंसा तथा सत्याग्रह के पुनीत साधनों के प्रयोग से ही स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने एक पूरी रणनीति तैयार की, इस रणनीति में भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखा गया और तत्कालीन परिस्थितियों में जो भी साधन, तकनीकी तथा रणनीति सम्भव थी, उसे अपनाकर पुनीत लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया जिसमें अन्ततः गाँधी जी की रणनीति एवं प्रतिमान को सफलता प्राप्त हुई।

गांधीजी द्वारा स्थापित आश्रम ऐसी प्रयोगशालाएँ थीं जहाँ वे और उनके सहयोगी जीवन पद्धति के एक विकल्प के रूप में अहिंसा के साथ प्रयोग करते थे। आश्रम उनके द्वारा संचालित विभिन्न आंदोलनों के लिये आवश्यक अनुशासन एवं चेतना विकसित करने के साथ-साथ नैतिक समर्थन भी उपलब्ध करवाते थे। गांधीजी का विश्वास था कि पारस्परिकता, सादगी तथा कठोर परिश्रम पर आधारित आश्रम जीवन एक ऐसे संयमवाद को विकसित करेगा जो समाज सुधार के लिये उपयोग सिद्ध होगा। आश्रम की स्थापना, आश्रम का संगठन, आश्रम में प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रम निर्धारण, समय-समय पर उनका मूल्यांकन गांधी जी की प्रशासन एवं प्रबंधन में रुचि, कौशल एवं ज्ञान का परिचायक है। आश्रम एक प्रकार से गांधी जी की प्रयोगशालाएँ थीं और आश्रमवासी उनके यंत्र। निसन्देह वर्तमान विविध प्रशासन व प्रबंधन अध्ययन केन्द्रों में जिस पाठ्यक्रम को पढ़ाया जाता है तथा प्रशिक्षण की जिन विधाओं का प्रयोग किया जाता है वे गांधीजी की आश्रम व्यवस्था पर ही आधारित है। जो गांधीजी के विचारों व कार्यों को वर्तमान में भी जीवन्त बनाए रखता है।

वर्तमान की लोकतांत्रित शासन प्रणाली भी वस्तुतः हिंसा पर आधारित है। सम्पूर्ण विश्व में परमाणु अस्त्रास्तों में खतरनाक वृद्धि, विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों के रक्षा बजट में बेतहाशा वृद्धि तथा कानून तथा व्यवस्था की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती स्थिति इसकी मूक साक्षी देते हैं कि सम्पूर्ण विश्व स्वयं हिंसा के खतरनाक मोड़ पर पहुँच गया है। ऐसी परिस्थिति में गांधीय विचार दर्शन यह सोचने के लिये विवश करता है कि मनुष्य एक विवेकमय प्राणी होने के बावजूद भी एक पशु के रास्ते का चयन क्यों करता है? आज मानव सभ्यता ने पद्धति पर विजय प्राप्त कर ली है और विश्व तथा प्रौद्योगिकी अपनी पगति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुके हैं, मानव सृजन एवं सहअस्तित्व को विस्मृत करता जा रहा है वह अपने मन की हिंसक

प्रवृत्तियों पर नियंत्रण नहीं कर सका है। वर्तमान युग का मूल प्रश्न यही है कि क्या ऐसा कोई मार्ग है जो मानव के आत्मबल को जगाकर और उसकी आत्मशक्ति को प्रबल बनाकर उसे इन चुनौतियों का उत्तर देने में सक्षम बना सके। ऐसी विषम स्थिति में गांधीवादी चिन्तन ही वो सार है तो मुनष्य की प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

ज्यां पाल सार्त्र ने एक बार कहा था “यदि विश्व में रक्त की एक बूंद बहाए बिना ‘कुछ’ होने का एक सपना किसी दर्शन में है तो वह है गांधी दर्शन।”

गांधीजी की महानता इसी में है कि वे अन्य हिन्दू धर्मावलम्बियों की तरह कट्टर नहीं थे, वे उदारमना और सहिष्णू हिन्दू थे। वर्तमान में जिस तीव्र गति से समाज में कट्टरता बढ़ रही है उसे देखते हुए गांधीजी की सहिष्णुता के विचार सर्वाधिक प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। गांधीजी के समाज दर्शन एक विशिष्टता है कि वे समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्त मानव को मानते हैं और इसलिए मानव के पुनर्निर्माण पर बल देते हैं, वे मनुष्य को मात्र अस्थि मांस का समवाय नहीं मानते हैं बल्कि उनका मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का उच्चतम विकास कर सकता है। इसलिए उसे आदर्श मानव बनने का प्रयत्न करना चाहिए एक ऐसा मानव जो परोपकारी हो जो दूसरों के दुख में दुखी हो जाता हो, जो उसे दूर करने का प्रयास भी करता हो, जो अभिमान की भावना नहीं आने देता हो दिन प्रतिदिन समाज में मूल्यों का जिस प्रकार हस हो रहा है उसमें ऐसे ही मानव की आवश्यकता है।

गांधीजी राजनीतिक व्यवस्था में भी नैतिक मूल्यों की बात करते हैं गांधी जी इस सत्य को जानते थे कि राजनीतिक व्यवस्था ही समाज के बारे में सशक्त निर्णय लेने की एकमात्र सत्ता होती है उनके मत में यदि राजनीतिक व्यवस्था ही पतित हो जायेगी और नैतिकता से पृथक् हो जायेगी तो समाज के बारे में गलत निर्णय होने से समाज का भी पतन होने लगेगा और उसकी अद्योगति होनी प्रारम्भ हो जायेगी।

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण एवं निजीकरण में वातावरण में गांधीजी द्वारा प्रतिपादित स्वदेशी की अवधारणा वर्तमान पीढ़ी के लिये अव्यावहारिक और पुराना विचार बनती जा रही है परन्तु उदारीकरण व निजीकरण के परिणामस्वरूप भारत जैसे विकासशील देशों में बेरोजगारी तीव्र गति से बढ़ रही है वहीं दूसरी ओर नव स्वतंत्र राष्ट्र एक नए प्रकार की गुलामी के शिकर्जे में जकड़ते जा रहे हैं जिसे नव उपनिवेशवाद की संज्ञा दी जाती है। ऐसे में गांधीजी का दर्शन ही इससे निजाद दिला सकता है।

गांधीजी ने मानव जाति को यह शिक्षा दी कि सत्य विश्व की समस्त वस्तुओं से ऊपर है। गुलामी और हिंसा सत्य के प्रतिकूल है। गांधीजी की विरासत सत्य का मात्र सैद्धांतिक प्रतिपादन करना नहीं है बल्कि इसके विपरीत वह स्वतंत्र विश्व व्यवस्था की एक ऐसी झांकी है जो सुसंगठित और परस्पर सहयोग, सद्भाव व सम्मान पर आधारित है। उनकी विरासत मात्र भारत की ही नहीं बल्कि पूरे विश्व की धरोहर है।

गांधीजी की सर्वोदय विचारधारा जिसमें एक ऐसी समाज व्यवस्था की परिकल्पना की गई जो समस्त व्यक्तियों का उदय व उत्थान चाहती हो। गांधीजी एक ऐसा समाज चाहते थे जहां सभी व्यक्ति समभाव से रहें, न कोई उच्च हो और न कोई निम्न। वर्तमान समय में राज्यों द्वारा किए जा रहे कार्यों की प्रकृति का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा गांधी जी के दर्शन पर ही आधारित है।

इक्कीसवीं सदी में गांधीजी द्वारा प्रतिपादित की गई शिक्षा व्यवस्था की प्रासंगिकता यही है कि आज की शिक्षा पद्धति जो मैकाले दर्शन पर आधारित है, शिक्षित नवयुवकों का

एक ऐसा वर्ग पैदा कर रही है जो किसी भी कार्य को नहीं कर सकते। भारत सहित विश्व के विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में बेरोजगारी जिस तीव्र गति से बढ़ रही है और समाज में मूल्यों का ह्रास हो रहा है उसे देखते हुये गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली ही श्रेष्ठतम प्रतीत होती है और वही मनुष्य का चरित्र निर्माण करने में सक्षम है। गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा व्यवस्था चरित्र निर्माण पर ही विशेष रूप से बल देती है।

गांधीजी के दर्शन में गांव के विकास पर बल दिया गया है उनके अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण एवं कृषि प्रधान है। अतः गांधीजी ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर बल दिया और इसके लिये लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना की बात कही। इसके पीछे तर्क यह था कि एक तो गांव के व्यक्ति को गांव में ही रोजगार मिल जायेगा तथा जो लोग कृषि में लगे हैं वे अपने अतिरिक्त समय में अधिक उपार्जन करेंगे जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी। जिससे रोजगार की तलाश में गांवों से शहर की ओर जो पलायन हो रहा है वह रुक जायेगा क्योंकि ग्रामीण जनता के शहरों की ओर पलायन से शहरों के सीमित संसाधनों पर अवांछनीय दबाव पड़ता है। मशीनीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ेगी, प्रदूषण बढ़ेगा वर्तमान में गांधी जी के विचार दर्शन का यह स्वरूप जीवन्त दिखाई दे रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करने के लिये सरकार ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा दे रही है। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के अथक प्रयास भी किए जा रहे हैं।

गांधी-दर्शन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता जो उसे पूर्व की अन्य समस्त विचारधाराओं एवं विचार दर्शनों से भिन्न और परमोच्चता प्रदान करती है वह है इसका वीइज्म (weism) अर्थात् स्वयं आचरण करना अभिप्राय यह है कि गांधीजी द्वारा प्रतिपादित किए गये किसी भी सिद्धांत का परीक्षण करना है तो स्वयं वैसा ही आचरण करो। समय के प्रवाह से परे उसे सिद्धांत की सार्थकता और प्रासंगिकता स्वयमेव ज्ञात हो जायेगी। गांधीजी का दर्शन अन्य विचारधाराओं की भांति सरकार पर बिल्कुल भी निर्भर नहीं है। समस्त कार्य जनता को करना होगा ग्रामों को अपना उत्थान करना है तो सरकार की ओर निहारने की आवश्यकता नहीं है गांधीजी द्वारा दिये गये विचारों के अनुसार कार्य करिये स्वतः ही गांवों का उत्थान हो जायेगा।

गांधीजी के चिंतन का सर्वाधिक विलक्षण पक्ष यह है कि वे मानव को समस्त प्रकार के बंधनों से मुक्त करना चाहते हैं जबकि विश्व में प्रचलित अन्य विचारधाराएँ चाहे वह पूंजीवादी हो, समाजवादी हो अथवा साम्यवादी हो, ये व्यक्ति को मुक्त नहीं करती अपितु उसे बंधन में बांध देती हैं। वर्तमान में विश्व के अधिसंख्य राष्ट्रों में लोकतंत्र है जिसमें जनता को स्वामी माना जाता है लेकिन क्या वास्तव में जनता मालिक बन पाई है? इसका उत्तर नाकरात्मक है क्योंकि यदि ऐसा होता तो आज जनता भूखों न मरती, बेरोजगार नहीं होती। आज के समय की सच्चाई यह है कि विश्व में सभी जगह लोकतंत्र के नाम पर एक प्रकार का अभिजनवाद का विकास हो गया है जो सिर्फ अपने स्वार्थों की पूर्ति से मतलब रखता है उसे जनता की सुख-सुविधाओं, अधिकारों की पूर्ति से कोई सरोकार नहीं है। ऐसे में लोकतांत्रिक संस्थाएँ यथा व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका आदि सब निरर्थक हो जाते हैं। आज भी भय, भ्रष्टाचार, शोषण निर्धनता और नागरिकों के मानवाधिकार हनन जैसी प्रवृत्तियाँ समाज में विद्यमान हैं यदि हम इसे परिवर्तित करना चाहते हैं तो गांधीजी सदैव प्रासंगिक रहेंगे। सामाजिक परिवर्तन के दोनों ही प्रकार हिंसा और कानून इस समाज की समस्याओं का समाधान करने में पूर्णतया विफल रहे हैं। इसलिए मानव सभ्यता के समक्ष

एक ही मार्ग शेष बचा है वह है गांधीजी के तपस्यामय और करूणामय प्रेम का जो हालांकि कठिन है परन्तु उसमें समूची मानवता का हृदय परिवर्तित करने की क्षमता है।

वर्तमान समय में यह प्रश्न भी किया जा रहा है कि मानवता को गांधीजी की क्या देन रही है? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि उन्होंने मानव जाति को यह शिक्षा दी कि सत्य विश्व की समस्त वस्तुओं से ऊपर है गुलामी और हिंसा सत्य के प्रतिकूल है। गांधीजी की विरासत सत्य का मात्र सैद्धांतिक प्रतिपादन करना नहीं है बल्कि इसके विपरीत वह स्वतंत्र विश्व व्यवस्था की एक ऐसी झांकी है जो सुगठित और परस्पर सहयोग, सद्भाव व सम्मान पर आधारित है। उनकी विरासत मात्र भारत की ही नहीं बल्कि पूरे विश्व की धरोहर है। तीनों महाद्वीपों में व्यतीत किए गये जीवन के छः दशकों में गांधीजी ने ऐसे नवीन समाजिक और राजनीतिक वातावरण के लिये कार्य किया एवं विविध आंदोलनों का नेतृत्व किया, जहां समस्त व्यक्तियों में भातृ भावना हो एवं परिवर्तन के लिये क्रांतिकारी उत्साह हो, परिवर्तन भी सहमति पर आधारित हो, जिस पर अभी तक राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय राजनीति में कोई प्रयोग नहीं किए गये थे। बीसवीं शताब्दी के महानतम वैश्विक एवं सत्य और धर्म में गहन आस्था रखने वाले अल्बर्ट आइन्सटाइन ने गांधीजी के लिये कहा था “गांधीजी भारत के ऐसे नेता थे जिनका नेतृत्व सत्ता पर आधारित नहीं था। वे ऐसे राजनीतिज्ञ थे जिनकी सफलता, कूटनीति पर नहीं परन्तु अपने व्यक्ति के प्रभाव पर निर्भर थी। वे ऐसे विजयी योद्धा थे जिन्होंने हिंसा का सरल विरोध किया था। वे समझदार विनम्र और दृढ़निश्चयी थे और उनके जीवन में कोई असंगति नहीं थी। यूरोप की बर्बरता का मानवता से सामना करके उन्होंने हमेशा के लिये अपनी श्रेष्ठता साबित की। सम्भव है भविष्य की पीढ़ियाँ यह मानने को तैयार न हो कि ऐसा कोई व्यक्ति इस धरती पर विचरता हो।”

गांधीजी के व्यक्तित्व का यह मूल्यांकन उन्हें किसी सार्वभौम पहचान से परे ठहराता है। वर्तमान युग चुनौतियों से परिपूर्ण एक ऐसा युग है जहाँ मानवता ही मानवता को अभिशप्त कर रही है।

गांधीजी ने कहा था कि “मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि इन्सान-इन्सान के बीच इस तरह का भाईचारा कायम हो जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई पारसी और यहूदी सब एक समान शामिल हों, क्योंकि मुझे दुनिया के सब बड़े बड़े मजहबों की बुनियादी सच्चाई में विश्वास है। मुझे यकीन है कि यह सब मजहब ईश्वर के दिए हुए हैं और उन लोगों के लिये जरूरी थे जिन्हें ये ईश्वर से मिले। मुझे इस बात का यकीन है कि अगर हम अलग अलग मजहबों को मानने वालों की निगाह से पढ़े तो हमें पता चलेगा कि सब मजहबों की जड़ एक है। एक ईश्वर में विश्वास हर धर्म का मूल आधार है, लेकिन मैं भविष्य में ऐसे किसी समय की कल्पना नहीं करता जब इस धरती पर व्यवहार में केवल एक ही धर्म रहेगा। सिद्धांत की दृष्टि से क्योंकि ईश्वर एक है इसलिए धर्म भी एक ही हो सकता है, परन्तु व्यवहार में ऐसे कोई भी मनुष्य के मेरे जानने में नहीं आए, जो ईश्वर के विषय में एक सी कल्पना करते हों। इसलिए मनुष्यों के विभिन्न स्वभावों तथा विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों को जरूरत पूरी करने के लिये धर्म भी सदा भिन्न ही रहेंगे। गांधीजी निःसंदेह धर्मप्राण मनीषी थे जिन्होंने प्रार्थनापूर्ण शोध और अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि सभी धर्म सच्चे हैं और उन सब में कुछ दोष भी हैं और अपने धर्म का दृढ़ता से पालन करते हुये मुझे दूसरे सब धर्मों को हिन्दू धर्म के समान ही प्रिय समझना चाहिये। गांधीजी द्वारा धर्मों के प्रति समान भाव आज मानवता को उनकी सबसे बड़ी देन है।

धर्म व जाति के द्वेषभाव से पल्लवित राजनीति व उसके वर्तमान कर्णधार राजनीतिज्ञों के लिये चिन्तन व मनन का विषय है कि धर्म विहिन व अधर्म पर आधारित राजनीति को प्रचारित न करके सर्वधर्म समभाव पर आधारित राजनीति को पोषित व परिवर्धित करे। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व जहाँ एक ओर कोरोना जैसी महामारी से ग्रसित है वहाँ गांधीजी के विचार, दर्शन, एकांतवास, धैर्य, संयम, अनुशासन, ईश्वर में आस्था, मानव धर्म की सर्वोपरिता, उदारता, ग्राम स्वराज्य निसंदेह पूर्णतया औचित्यपूर्ण व्यावहारिक व उपयोग है वैश्विक स्तर पर इनकी यथार्थता, औचित्यता व प्रासंगिकता सिद्ध हो रही है।

निसन्देह: महात्मा गांधीजी का चिन्तन का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं बहुआयामी है। गांधीजी मात्र विचारक, नेता तथा समाज सुधारक ही नहीं अपितु राजनीति, चिन्तन एवं दर्शन को नया मोड़ देने वाले सक्रिय राजनीतज्ञ, संत एवं विचारशील चिंतक थे। वे सत्य, अहिंसा विश्वशांति, प्रेम की प्रतिमूर्ति एवं संत होने के साथ-साथ एक बहुत बड़े रणनीतिकार भी थे। वैश्विक संदर्भ में गांधीजी का चिंतन व दर्शन निसन्देह: प्रासंगिक व उपयोगी है। विश्व शांति व मानव सभ्यता के विकास में भविष्य में भी गांधी जी चिन्तन व दर्शन ही मार्ग प्रशस्त करेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

- महात्मा गांधी, आत्मकथा (गुजराती), नवजीवनट्रस्ट, अहमदाबाद, सन् 1956
- महात्मा गांधी, हिंद-स्वराज्य सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, सन् 1958
- महात्मा गांधी, ग्राम-स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, सन् 1998
- काका कालेकर, गांधीजी का जीवन दर्शन, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, सन् 1976
- रामजी सिंह, गांधी-दर्शन मीमांसा: बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, सन् 1973
- डॉ. बी एन पाण्डे, गांधी महात्मा, समग्र चिन्तन, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, सन् 2000
- आर. आर. दिवाकर, सत्याग्रह: शांति का पथ, पुस्तक भण्डार, पटना, सन् 1959
- दूधनाथ चतुर्वेदी, महात्मा गांधी का आर्थिक दर्शन, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, सन् 1965
- के. डी. नाग, टॉल्सरोय एण्ड गांधी, पुस्तक भण्डार, पटना, सन् 1950
- राम आहूजा, सोशियल प्रॉब्लम्स इन इण्डिया, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, सन् 1992
- बी. टी. पाटिल, स्टुडीज ऑन गांधी, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली सन् 1983

संसाधनों का चंद हाथों में जमा होने का राजनीतिक प्रभाव

• सिन्धु राय

सारांश- भूमंडलीकरण को लेकर जो लोग मगन हैं और इसे सभी बीमारियों की रामबाण दवा मानते रहे हैं, ऐसे लोग कभी भी दरिद्रता और वैमनस्य के संदर्भ में भूमंडलीकरण का विश्लेषण नहीं करते। भूमंडलीकरण की पूंजीवादी प्रक्रिया एक अनिवार्य और अपरिहार्य प्रक्रिया है। हम चाहें या न चाहें, हमें इसमें से गुजरना होगा। कुछ लोग भूमंडलीकरण को मानवीय शक्ति देकर इस प्रक्रिया से गुजरना चाहते हैं तो कुछ इसके अमानवीय चेहरे के साथ मिलकर गुजरना चाहते हैं। हकीकत में भूमंडलीकरण कोई नयी चीज नहीं है बल्कि यह तो पूंजीवादी व्यवस्था के चरित्र का अनिवार्य पहलू है। पूंजीवाद के उदय के बाद, समूची दुनिया में पूंजीवाद व्यवस्था ने अपने वैभव एवं आधार का विस्तार किया। एक विश्व व्यवस्था के रूप में अपने को स्थापित किया। इस विकास की प्रक्रिया में पूंजीवाद ने जहां आरंभ के वर्षों में सामंतीशाही को ध्वस्त किया वहीं कालांतर में उपनिवेशों के रूप में राष्ट्रों को गुलाम बनाकर साम्राज्यवाद की शक्ति भी ग्रहण की। जिन देशों को गुलाम बनाया वहां पर कमोबेश सामंती तत्वों एवं मूल्यों के साथ गठबंधन किया। इसके कारण कालांतर में विभिन्न देशों में आजादी के संघर्ष शुरू हुए। बड़े राष्ट्रों में ज्यादा से ज्यादा बाजार हथियाने और जनता का दमन करके गुलाम बनाने की प्रवृत्ति तेज हुई, साथ ही बड़े साम्राज्यवादी राष्ट्रों में बाजार पर कब्जा जमाने के लिए दो विश्वयुद्ध हुए। इन दोनों युद्धों से विश्व पूंजीवाद कमजोर हुआ। नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ। समाजवादी राष्ट्रों का जन्म हुआ। फासीवाद हारा। कमजोर फासीवाद की पराजय, पूंजीवाद शिविर का कमजोर पड़ना और समाजवादी शिविर का उदय, बड़े पूंजीवादी राष्ट्रों को रास नहीं आया। यही वजह थी कि युद्धोत्तर दौर में शीतयुद्ध की राजनीति शुरू हुई। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष का जन्म हुआ। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आक्रामक व्यापार रणनीति का विश्व स्तर पर विस्तार हुआ। नये सिरे से नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों को तकनीकी एवं आर्थिक सहायता के बहाने, विश्व पूंजीवादी शिविर में बांधे रखने की कोशिशें शुरू हुईं। वहीं दूसरी ओर समाजवादी शिविर के खिलाफ वैचारिक हमले तेज किए गए। इन देशों की आर्थिक नाकेबंदी की गई, हथियारों के निर्माण की होड़ शुरू की गयी, चौतरफा असुरक्षा एवं उपभोक्तावाद का माहौल बनाया गया। इस सबके प्रचार-प्रसार में टेलीविजन एवं विज्ञापनों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। विश्व पूंजीवादी शिविर को इन दो माध्यमों के जरिए अनुकूल परिणाम प्राप्त हुए। वैचारिक संघर्ष में शीतयुद्धीय राजनीति जीत गयी। बगैर युद्ध के समाजवादी शिविर धराशायी हो गया। टेलीविजन, रेडियो और विज्ञापनों की बाढ़ ने वैचारिक तौर पर वह कार्य करछद्म दिखाया जो सेना के हमलों से भी संभव नहीं था। यही वह विशेष संदर्भ है जिसमें भूमंडलीकरण की नयी प्रवृत्ति सामने आई है। भूमंडलीकरण की केन्द्रीय वैचारिक विशेषता है, पर-निर्भरता और आर्थिक गुलामी। अगर आप ताकतवर हैं तो इन दोनों प्रवृत्तियों को अपने पक्ष में बदल सकते हैं और यदि कमजोर हैं तो आपका ताकतवर के द्वारा शोषण किया जाएगा।

मुख्य शब्द- भूमंडलीकरण, दरिद्रता, वैमनस्य, पूंजीवाद, समाजवाद

विचारणीय तथ्य यह है कि भूमंडलीकरण ऐसे दौर में सामने आया है जब, 75 फीसदी राष्ट्रों में जनतांत्रिक व्यवस्था अपनी जड़ें जमा चुकी हैं। स्वाधीनता इस दौर का गुरुमंत्र बन चुका है। स्वाधीनता की आकांक्षा को वस्तुओं की प्राप्ति की आकांक्षा में

- राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

बदलना, नयी से नयी वस्तुओं की प्राप्ति की लालसा पैदा करना, यही मुख्य ध्येय होकर रह गया है। वस्तुओं को इच्छाओं का पर्याय बना दिया गया है। इच्छाओं-आकांक्षाओं का वस्तुकरण और उनका मुनाफे में रूपांतरण, यही भूमंडलीय संस्कृति की केन्द्रीय विशेषता है। आज समूचा कार्य व्यवहार, वैचारिक संघर्ष और वर्चस्व स्थापित करने की कोशिशें, पूर्णतः प्रतीकात्मक होकर रह गयी हैं। प्रतीकों और चिह्नों के जरिये भूमंडलीकरण अपनी इजारेदारी का विस्तार कर रहा है। इस प्रक्रिया में वास्तव को काल्पनिक या फैंटसी की शक्ल दी जा रही है और जो फैंटसी है, उसे वस्तु की शक्ल दी जा रही है। इस तरह मानवीय फैंटसी का वस्तुकरण हो रहा है। जो ठोस है उसे वायीय बनाया जा रहा है और जो वायवीय है उसे माध्यमों के निरंतर प्रचार एवं विज्ञापनों के जरिए मन में उतारा जा रहा है। पहले आम तौर पर लोग सामाजिक परिवर्तन के सपने देखते थे, परिवर्तन के सपनों का प्रचार-प्रसार करते थे। किन्तु आज यह संभव नहीं हो रहा है क्योंकि सपनों की दुनिया पर विज्ञापनों ने कब्जा जमा लिया है। पहले सपनों का संसार हमारा था, आज जनमाध्यमों एवं विज्ञापनों का है। यही वजह है कि हमारे खाली समय को जनमाध्यमों के विमर्श एवं चर्चाओं ने घेर लिया है। जब खाली समय को जनमाध्यम घेरे लेते हैं, तब विचारों एवं जीवन परिवर्तन की लड़ाई बेहद जटिल हो उठती है। पहले हमें मालूम था किससे लड़ना है। आज हमें मालूम ही नहीं है किस से लड़ना है। आज जिससे लड़ना है वही सबसे प्यारा है। पहले जिससे लड़ना था, उसके खिलाफ मन में घृणा पैदा होती थी, उसको पराजित करने के लिए कुर्बानी देने का जज्बा पैदा होता था। कुर्बानी को सम्मान की नजर से देखा जाता था। किन्तु आज वह अनभुति एक सिरे से गायब होती जा रही है। यही भूमंडलीकरण की वैचारिक प्रगति का लक्षण है। जिन प्रवृत्तियों को पराजित करना चाहिए, जिन मूल्यों के खिलाफ घृणा होनी चाहिए, वे ही मूल्य किसी न किसी बहाने हमारे जीवन में वर्चस्व बनाए हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि साम्राज्यवाद के दौर में, जब पूंजीवाद ने सीधे एवं बाहर से हमला किया था, हम उससे लड़ने में समर्थ थे। किन्तु द्वितीय विश्व युद्धोत्तर दौर में, यह हमला अंदर से हुआ है।

विचारणीय तथ्य यह है कि भूमंडलीकरण ऐसे दौर में सामने आया है जब, 75 फीसदी राष्ट्रों में जनतांत्रिक व्यवस्था अपनी जड़ें जमा चुकी हैं। स्वाधीनता इस दौर का गुरुमंत्र बन चुका है। स्वाधीनता की आकांक्षा को वस्तुओं की प्राप्ति की आकांक्षा में बदलना, नयी से नयी वस्तुओं की प्राप्ति की लालसा पैदा करना, यही मुख्य ध्येय होकर रह गया है। वस्तुओं को इच्छाओं का पर्याय बना दिया गया है। इच्छाओं-आकांक्षाओं का वस्तुकरण और उनका मुनाफे में रूपांतरण, यही भूमंडलीय संस्कृति की केन्द्रीय विशेषता है। आज समूचा कार्य व्यवहार, वैचारिक संघर्ष और वर्चस्व स्थापित करने की कोशिशें, पूर्णतः प्रतीकात्मक होकर रह गयी हैं। प्रतीकों और चिह्नों के जरिये भूमंडलीकरण अपनी इजारेदारी का विस्तार कर रहा है। इस प्रक्रिया में वास्तव को काल्पनिक या फैंटसी की शक्ल दी जा रही है और जो फैंटसी है, उसे वस्तु की शक्ल दी जा रही है। इस तरह मानवीय फैंटसी का वस्तुकरण हो रहा है। जो ठोस है उसे वायीय बनाया जा रहा है और जो वायवीय है उसे माध्यमों के निरंतर प्रचार एवं विज्ञापनों के जरिए मन में उतारा जा रहा है। पहले आम तौर पर लोग सामाजिक परिवर्तन के सपने देखते थे, परिवर्तन के सपनों का प्रचार-प्रसार करते थे। किन्तु आज यह संभव नहीं हो रहा है क्योंकि सपनों की दुनिया पर विज्ञापनों ने कब्जा जमा लिया है। पहले सपनों का संसार हमारा था, आज जनमाध्यमों एवं विज्ञापनों का है। यही वजह है कि हमारे खाली समय को जनमाध्यमों के विमर्श एवं चर्चाओं ने घेर लिया है। जब

खाली समय को जनमाध्यम घेरे लेते हैं, तब विचारों एवं जीवन परिवर्तन की लड़ाई बेहद जटिल हो उठती है। पहले हमें मालूम था किससे लड़ना है। आज हमें मालूम ही नहीं है किस से लड़ना है। आज जिससे लड़ना है वही सबसे प्यारा है। पहले जिससे लड़ना था, उसके खिलाफ मन में घृणा पैदा होती थी, उसको पराजित करने के लिए कुर्बानी देने का जज्बा पैदा होता था। कुर्बानी को सम्मान की नजर से देखा जाता था। किन्तु आज वह अनभुति एक सिरे से गायब होती जा रही है। यही भूमंडलीकरण की वैचारिक प्रगति का लक्षण है। जिन प्रवृत्तियों को पराजित करना चाहिए, जिन मूल्यों के खिलाफ घृणा होनी चाहिए, वे ही मूल्य किसी न किसी बहाने हमारे जीवन में वर्चस्व बनाए हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि साम्राज्यवाद के दौर में, जब पूंजीवाद ने सीधे एवं बाहर से हमला किया था, हम उससे लड़ने में समर्थ थे। किन्तु द्वितीय विश्व युद्धोत्तर दौर में, यह हमला अंदर से हुआ है।

पिछले एक दशक का अनुभव बताता है कि भूमंडलीकरण के कारण आमदनी, संसाधनों और संपत्ति का केन्द्रीकरण बढ़ा है। मसलन, ओइसीडी (आर्गनाइजेशन फार इकोनामिक कारपोरेशन एंड डवलपमेंट) के सदस्य राष्ट्रों में विश्व जनसंख्या का मात्र 19 फीसदी हिस्सा रहता है, जबकि माल एवं सेवाक्षेत्र में इनका 71 फीसदी विश्व व्यापार पर इजारा है। 58 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश इनके पास है और 91 फीसदी इंटरनेट उपभोक्ता इन देशों में हैं। दुनिया में सबसे समृद्ध 200 लोगों ने 1994 से 1998 के बीच अपनी आमदनी दुगुनी कर ली। सन् 1998 में इनकी कुल संपत्ति 1000 अरब डालर आंकी गयी। तीन सबसे बड़े खरबपतियों के पास इतनी संपत्ति है जो समस्त अविकसित राष्ट्रों और उनकी 60 करोड़ आबादी के पास भी नहीं है। हाल ही के वर्षों में संपत्तियों के विलय एवं खरीददारी के कारण विशालकाय कंपनियों का उदय हुआ है। सन् 1998 तक कीटनाशकों के क्षेत्र में सर्वोच्च 10 कंपनियों का 31 अरब डालर के विश्व बाजार से 85 फीसदी अंश पर कब्जा हो चुका था। 262 अरब डालर के दूरसंचार व्यापार के 86 फीसदी अंश पर, 10 कंपनियों का कब्जा है। सन् 1993 में विश्व अनुसंधान और विकास पर खर्च का 4 फीसदी हिस्सा 10 देशों के हिस्से में आता था। इसमें भी 95 फीसदी पेटेंटों को अमरीका नियंत्रित करता है विकासशील देशों के स्वीकृत किए गए 80 फीसदी पेटेंट, औद्योगिक देशों के वाशिंगटन के नाम हैं। लोगों की सांस्कृतिक अस्मिता के लोप का खतरा पैदा हो गया है। आज देशी एवं राष्ट्रीय संस्कृतियों की रक्षा का दायित्व सबसे प्रमुख स्थान अर्जित कर चुका है। इसी तरह व्यक्तिगत जीवन असुरक्षित होकर रह गया है। नशीले पदार्थों की तस्करी, औरतों का धंधा, और हथियारों की अवैध बिक्री ने, अपराध एवं हिंसा का ऐसा परिवेश निर्मित किया है जिसे देखकर दिल दहल जाता है।

आज विश्व में 20 करोड़ लोग हैं जो नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं। विगत एक दशक में अफीम का उत्पादन तिगुना हो गया है। कोक के पत्तों का उत्पादन दुगुने से ज्यादा हो गया है। बेलोरूस में 1990 में एक लाख की आबादी में 4 फीसदी मामले नशीले पदार्थों से संबंधित पाए गए जो 1997 में बढ़कर 28 फीसदी हो गए। ईस्टोनिया में 1990 में एक लाख की आबादी में ऐसे ही 1.5 फीसदी अपराध दर्ज किए गए जो 1997 में बढ़कर आठ फीसदी हो गए। सन् 1995 में अवैध नशीले पदार्थों की बिक्री 400 अरब डालर आंकी गयी थी। यह सकल विश्व व्यापार का आठ फीसदी है। इसी तरह अवैध हथियारों की बिक्री के परिणामस्वरूप, 1945 के बाद हुई 90 फीसदी युद्ध हत्याएं, इन्हीं हथियारों के इस्तेमाल से हुई हैं। साथ ही औरतों एवं लड़कियों की खरीद-फरोख्त एवं जिस्म की तिजारत का तेजी से विस्तार हुआ है।

अकेले पूर्वी यूरोप से 5 लाख औरतों एवं लड़कियों की अवैध ढंग से बिक्री की गई है। यह एक तरह से गुलामों की बिक्री जैसा मामला भी है। स्त्रियों के मामले को अपने गिरोहों के लिए भर्ती करने में बेकार युवाओं से सबसे ज्यादा युवा मिलते हैं। इस अपराध जगत को नयी सूचना एवं संचार प्रणाली ने असीमित अधिकार एवं अवसर प्रदान किए हैं। इंटरनेट, कम्प्यूटर, फ़ैक्स मशीन ने, अपराध जगत की धंधेखोरी को नई छ्वाड़ों पर पहुंचा दिया है। फिल्म, संगीत एवं साफ्टवेयर की चोरी-छिपे बिक्री ने, समूचे अपराध जगत के कारोबार में जबर्दस्त इजाफा किया है। इस तरह की अपराधी गतिविधियां, निजी पहलकदमी से पैदा होने वाले रोजगार के अवसरों को खत्म करती हैं या उनकी उपेक्षा करती हैं। ऐसे देश में कौन साझे का व्यापार करना चाहेगा, जहां साझीदार गुंडा हो जो बंदूक के बल पर व्यापार के फ़ैसले करे। विश्व में कौन ऐसा संगठन या राष्ट्र है जो भ्रष्ट सरकार को समर्थन देना पसंद करेगा जो अपराध रोकने में असमर्थ हो? तात्पर्य यह है कि संगठित अपराध को सख्ती से कुचलने को हमें सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। इसे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख मुद्दा बनाना होगा। भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर में पर्यावरण असुरक्षा का मुद्दा केन्द्र में आया है। पर्यावरण का निरंतर क्षय, वस्तुतः मौन आपातकाल है। इससे विश्व भर की जनता के लिए खतरा पैदा हो गया है। कम से कम आधा अरब लोगों की जिंदगी को हमने सीधे-सीधे खतरा पैदा कर दिया है। आज गरीब के पास बहुत कम विकल्प बचे हैं गरीबों की कीमत पर समृद्ध मलाई खा रहे हैं। कर वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि क्रमशः विश्व का तापमान एवं समुद्र का जल स्तर ऊपर उठ रहा है। इस के कारण बंगलादेश की 17.7 फीसद जमीन, मिस्र की 12 फीसदी जमीन और समूचा मालदीव प्रभावित होगा। पर्यावरणजनित क्षय से 1997 एवं 1998 में बाढ़ और तूफान के कारण जबर्दस्त तापमान बढ़ गया और भयानक वर्षा हुई। अलनीनो से तकरीबन 50 लाख लोग बेघर हुए हैं। 11 करोड़ 80 लाख लोग घायल हुए हैं, जबकि 22 हजार लोग मारे गए हैं। अलनीनो से हुए विध्वंस की विश्व भर में क्षति 33 अरब डालर आकी गयी है। अनेक वैज्ञानिक यह मानते हैं कि अलनीनो तूफान भूमंडलीय तापमान परिवर्तन के कारण आए। इसके कारण इंडोनेशिया से लेकर ब्राजील तक की फसलें जल गयीं, जब कि बाढ़ एवं समुद्री तूफान से अकेले निकारागुआ में 9 हजार लोग मारे गए और लाखों बेघर हो गए।

प्रश्न उठता है कि हम क्या करें? यह सच है कि भूमंडलीकरण के विकास ने मानवीय उत्थान की जबर्दस्त संभावनाएं पैदा की हैं किन्तु ये संभावनाएं अभी चंद हाथों तक ही सीमित हैं, जिसके कारण बहुसंख्यक जनता इसके लाभों से वंचित है। फलतः मानवीय सुरक्षा सुनिश्चित नहीं की जा सकती है। भूमंडलीकरण से अर्थव्यवस्था, संस्कृति और सरकार एकीकृत हुए हैं, किन्तु इस प्रक्रिया में हम समाज को भूल गए हैं। बाजार की शक्तियों के लिए भूमंडलीकरण आर्थिक क्षमता पैदा कर रहा है, जिससे वे विकास कर रही हैं, मुनाफे परिवारों में यह अनुपात 28 प्रतिशत है। कहना न होगा कि इस अंतर का मुख्य कारण आय की विषमता है। आज जब हम अपने गणतंत्र की महानता और जनतांत्रिक उपलब्धियों की चर्चा करते नहीं थकते हैं तब हमें नहीं भूलना चाहिए कि सरकारी आंकड़ों के अनुसार भी तीस करोड़ भारतीय गरीबी में जी रहे हैं और 40 करोड़ अपना नाम भी नहीं लिख सकते यानी पूरी तरह निरक्षर हैं।

प्रतिष्ठित अमेरिकी समाचार पत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' (20 अगस्त) के अनुसार बहुराष्ट्रीय निगमों और आउटसोर्सिंग से जुड़ी भारतीय कंपनियों में 86 प्रतिशत प्रौद्योगिक

कमी उच्च जातियों और धनी मध्यवर्ती जातियों के हैं। दलित जातियों तथा अति पिछड़े वर्गों के इक्के-दुक्के ही हैं। इतना ही नहीं, अमेरिका और ब्रिटेन में रहने वाले भारतीयों में भी उच्च जातियों का वर्चस्व है क्योंकि साधन संपन्न होने के कारण वे ही आधुनिक शिक्षा सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। और कार्य एवं शिक्षा के लिए जरूरी वीजा तथा हवाई यात्रा का खर्च उठा पाते हैं। इसी पत्र ने यह शोचनीय तथ्य उजागर किया है कि वर्ष 2006 में पाया गया कि स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े कमी देश के एक तिहाई दलित गांवों में नहीं जाते और 24 प्रतिशत दलितों को डाकिए चिट्ठी आदि नहीं पहुंचाते। आर्थिक विषमता को मापने के लिए सांख्यिकी में 'गिनी गुणांक' का इस्तेमाल किया जाता है। यदि यह गुणांक 100 है तो पूर्णतया के चरित्र में फर्क होता है। हरियाणा, पंजाब, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश आदि में बसने वाले गरीब इतने बेहाल नहीं हैं जितने उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में रहने वाले। पूर्वोत्तर राज्यों में नए देशी-विदेशी निवेश आ रहे तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की क्षमताओं का निर्माण होने से रोजगार के नए अवसर खुल रहे हैं। इतना ही नहीं, वहां प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं की स्थिति बेहतर है तथा स्वास्थ्य सेवाएं भी सार्वजनिक क्षेत्र में अच्छी स्थिति में हैं। राज्य द्वारा नए सार्वजनिक उपक्रमों को लगाने से हाथ खींचने तथा अनेक स्थापित उपक्रमों को बेचने के कारण रोजगार के अवसरों की उपलब्धता घटी है। सेवाओं के क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर आए या आ रहे हैं उनका लाभ उन्हें ही मिल रहा है जिनके पास उच्च शिक्षा और कौशल है जिन्हें धनवानों के बच्चे ही आमतौर से प्राप्त कर पाते हैं।

आज दुनिया में 85 करोड़ से अधिक लोग भूख से किसी न किसी प्रकार त्रस्त हैं। इनमें से लगभग 82 करोड़ विकासशील देशों, दो करोड़ 80 लाख पूर्व समाजवादी देशों और 90 लाख औद्योगिक देशों में हैं। इस प्रकार भूख का आतंक विकासशील देशों में सबसे अधिक है। उपर्युक्त आंकड़े संयुक्त राष्ट्र की संख्या खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) की ताजा रिपोर्ट 'द स्टेट ऑफ फूड इनसिक्यूरिटी इन द वर्ल्ड 2004' में दर्ज हैं। पिछले दशक के दौरान आर्थिक भूमंडलीकरण बड़े जोर-शोर से शुरू हुआ। हमारे अपने देश में भी जन्म के समय से ही लग जाता है। वे शैशवावस्था में नहीं मरे तो शेष जीवन में दुर्बलता और काम करने और कमाने की अल्प क्षमता के शिकार रहते हैं। उनमें शामिल महिलाएं अधिकतर कम वजन के बच्चों को ही जन्म देती हैं। सामान्य वजन के नवजात शिशुओं की अपेक्षा ढाई किलोग्राम से कम वजन वालों को मरने का खतरा 18 अधिक गुणा अधिक होता है। इतना ही नहीं, जो जिंदा रह गए वे जीवन पर्यन्त कुपोषण और अवरुद्ध विकास से पीड़ित रहते हैं। उनकी लंबाई अपनी उम्र के सामान्य जनों की तुलना में कम होती है। उनमें से अधिकतर रुग्ण और मंदबुद्धि होते हैं। उनकी उत्पादकता और अर्जन शक्ति भी कम होती है। खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में एक तिहाई बच्चे बौनेपन के शिकार हो जाते हैं। भूख से न सिर्फ उससे ग्रस्त लोगों की बल्कि समाज की भी भारी हानि होती है। भूख से पीड़ित लोग बीमारियों के चंगुल में बहुत जल्द फंस जाते हैं। इलाज पर न सिर्फ उन्हें बल्कि समाज को भी व्यय करने पड़ते हैं। अगर वे स्वस्थ रहते तो यह व्यय राशि विकास के कार्यों में लगाई जाती। इस मद में विकासशील देशों को लगभग 30 अरब डालर की रकम औसतन हर साल खर्च करनी पड़ती है। यह रकम एड्स, क्षयरोग और मलेरिया से निबटने के लिए खर्च की जानेवाली राशि की पांच गुनी है। यह तो रहा प्रत्यक्ष नुकसान। इसके अलावा समाज को अप्रत्यक्ष नुकसान भी उठाना कुपोषण के खिलाफ लड़ाई में खर्च की गई रकम व्यर्थ नहीं

जाएगी। खाद्य एवं कृषि संगठन के महानिदेशक के शब्दों में भूखे लोग प्रतीक्षा नहीं कर सकते और न ही शेष मानव परिवार। अगर हमारे नेता और संगठन मंदिर-मस्जिद, धर्म, जाति और सम्प्रदाय के व्यर्थ के झगड़ों को छोड़ भूख और कुपोषण से लड़ने में अपनी शक्ति और ध्यान लगाएं तो देश का बड़ा कल्याण हो। यही आशा संतों और साधुओं से भी की जानी चाहिए। अब समय आ गया है कि बिना देर किये संविधान के अनुच्छेद 37 को संशोधित किया जाय और राज्य के लिए निर्धारित नीति निर्देशक तत्वों के प्रावधानों का अवलंबन सरकार के लिये अनिवार्य बना दिया जाय। अगर ऐसा नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं कि भारतीय संविधान की उद्देशिका में घोषित लोकतंत्र, समाजवाद, स्वतंत्रता, समानता, न्याय आदि के उदात्त आदर्श धूल-धुसरित होकर इतिहास की भूली-बिसरी यादें बनकर रह जायेंगे और देश में पूंजी की निरंकुश सत्ता अक्षुण्ण हो जायेगी।

आजादी के 65 साल बाद भारतीय संविधान के लागू होने और उसके छः दशकों के क्रियान्वयन में उत्पन्न समस्या आज जो दरपेश है, वह मूल रूप से संविधान की उद्देशिका और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों को राज्य सत्ता द्वारा नकारना है। राज्य सत्ता कब्जायें लोगों के लिये ऐसा करना इसलिये संभव हुआ, क्योंकि संविधान के मूल अधिकार और निदेशक तत्व के उपबंधों में अंतर्विरोध जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा मौजूद है। संवैधानिक मूल अधिकार और निदेशक तत्वों में कौन न्यून है और कौन प्रधान है अथवा दोनों में टकराव की स्थिति में किसे मान्य किया जायेगा, यह परिभाषित नहीं है। संविधान निर्माताओं ने दोनों को समानरूप से महत्वपूर्ण माना और परिस्थितियों की नजाकत के मुताबिक इनमें सामंजस्य की सलाह दी किन्तु नयी आर्थिक नीति की घोषणा के साथ इस भावना का परित्याग कर दिया गया।

संविधान निर्माण के इतिहास में जाने पर पता चलता है कि सर्वप्रथम इस अंतर्विरोध की तरफ बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने ध्यान आष्ट किया। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि प्रारूप समिति के अध्यक्ष की हैसियत से उन्हें संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक अनुच्छेद के प्रत्येक वाक्य संयोजन से गुजरना पड़ा था। उन्होंने कहा : 26 जनवरी 1950 को हम अंतर्विरोधों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हमें समानता प्राप्त होगी पर सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमें समानता प्राप्त नहीं होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और एक वोट एक मूल्य के सिद्धान्त को मान्यता देंगे, अंतर्विरोध का जनक कहां है वह अंतर्विरोध जिससे गुजरने की विवशता बाबा साहब अंबेडकर सन् 1950 में संविधान लागू करते समय ही महसूस कर रहे थे और जिसे खत्म कर 'मूलाधिकार' को 'राज्य नीति निर्देशक सिद्धान्त' का अनुचर बनाने की सलाह प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा में चौथे संविधान संशोधन सन् 1955 में प्रस्तुत करते हुए दी? और यह भी कि उच्चतम न्यायालय ने भी इस अंत विरोध को खत्म करने की जरूरत महसूस की। जाहिर तौर पर उस अंतर्विरोध का जनक है संविधान का अनुच्छेद 37 जो एकतरफा राज्य के परिचालन के लिये मूलाधार नीति निर्धारक सिद्धान्त रेखांकित करता है और उसका परिपालन राज्य का कर्तव्य घोषित करता है तो दूसरी तरफ उसे (राज्य को) न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से मुक्त भी कर देता है। यह राज्य के नीति के निर्देशक सिद्धान्त 'शीर्षक संविधान के भाग-4 का प्रारंभिक अनुच्छेद है जिसका उपशीर्षक 'इस भाग में समाविष्ट सिद्धान्तों का प्रयोग' देकर निम्न प्रकार लिखा गया है।

इस भाग में किये गये प्रावधानों को किसी भी न्यायालय द्वारा लागू करने के लिए

बाध्य नहीं किया जायेगा लेकिन जो यहाँ सिद्धांत रेखांकित किये गये हैं वे तथापि देश के शासन परिचालन का मूल आधार होंगे और यह राज्य का कर्तव्य होगा कि वह इन सिद्धांतों का प्रयोग कानून बनाने में करें। यहाँ प्रश्न उठता है कि अगर नीति निर्देशक सिद्धांत देश के प्रशासन परिचालन का मूल आधार है तो इसे न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर क्यों रखा गया? अगर सरकार उन रेखांकित मूलाधार कर्तव्यों का अनुपालन नहीं करती है तो जनता के पास इसके संवैधानिक इलाज का क्या विकल्प है? साधन मात करने पिछले दो दशकों से सरकार द्वारा चलाया जा रहा आर्थिक उदारीकरण, सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण, अवाध विदेशी पूंजी निवेश और मुक्त बाजारदवाद का कार्यक्रम किसी भी प्रकार से संविधान में घोषित समतामूलक समाजवादी समाज निर्माण के उद्देश्यों को पूरा नहीं करता है, बल्कि उक्त नीतियों के फलाफल संविधान की उद्देशिका में निर्धारित नीति निर्देशक तत्वों का सम्पूर्ण रूप से दृढ़ निषेध करता है। वर्ष 1991 से चलायी जा रही बहुप्रचारित नवउदारवादी आर्थिक नीति का अवलंबन संविधान में निर्धारित नीति निर्देशक तत्वों का भीतरघात करता है और इसलिये यह संविधान की उद्देशिका में अंकित और समाजवाद के आदर्शों के साथ सरकारी विश्वासघात है। प्रश्न संविधान की उद्देशिका में समाजवाद को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है और ऐसे समाज निर्माण की परिकल्पना की गयी है जिसमें हर नागरिक के लिये राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित हो, सबों को प्रतिष्ठा के साथ जीने लायक जीवननिर्वाह पारिश्रमिक, सामाजिक सुरक्षा, स्त्रियों के लिए मातृलाभ, समान काम के लिये समान वेतन, सबों की शिक्षा चिकित्सा आदि की गारंटी हो और सबसे बढ़कर कोई आदमी किसी आदमी का या कोई वर्ग किसी वर्गद्वय का शोषण नहीं करें। संविधान का अनुच्छेद-39 कहता है कि राज्य अपनी नीति इस प्रकार संचालित करेगा कि सुनिश्चित रूप से सभी पुरुषों और स्त्रियों को जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का समान अधिकार हो, समुदाय की भौतिक संपदा का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार दृढ़ बटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम साधन हो, आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार बने कि धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिये अहितकारी संकेन्द्रण नहीं हो आदि, किन्तु वास्तविकता में पिछले दो दशकों से आजमायी जा रही नयी आर्थिक नीति की शासकीय अर्थव्यवस्था में इसके उलट समाज में बेरोजगारी बढ़ी है, चंद व्यक्तियों के हाथों में सम्पत्ति का संकेन्द्रण हुआ है आम आदमी की आय घटी है, किन्तु पूंजीपतियों का मुनाफा बेइंतिहा बढ़ा है, उनकी आय में आकाश पाताल का अंतर आया है। फलस्वरूप अमीरी और गरीबी की खाई खतरनाक सीमा तक चौड़ी हुई है और सबसे बढ़कर देश की संवैधानिक प्रावधानों का शासकीय भीतरघात के कारण ही ऐसा हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. भूमंडलीकरण और दरिद्रता, ले. जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 55, मुक्तनाद, सितम्बर-अक्टूबर 1999.
2. वही, पृ. 55.
3. वही, पृ. 56.
4. वही, पृ. 56.
5. वही, पृ. 56.
6. वही, पृ. 56.

7. वही, पृ. 57.
8. वही, पृ. 57.
9. वही, पृ. 57.
1. बढ़ते तोंद पिचकते पेट, ले. गिरीश मिश्र, समकाल, 31 दिसम्बर 2007, पृ 29.
11. वही, पृ. 29.
12. वही, पृ. 29.
13. वही, पृ. 29.
14. भूमंडलीकरण के दौर में भूख का कहर, ले. जी. मिश्रा, युद्धरत आम, जुलाई-सितम्बर 2005, पृ. 79.
15. वही, पृ. 79.
16. भारतीय संविधान भाग 3, अनुच्छेद 12 से 35.
17. भारतीय संविधान भाग 4 : अनुच्छेद 36 से 51.
18. हमारा संविधान, सुभाष कश्यप, पृ. 10.
19. वही, पृ. 128.
20. 1970 - एस सी आर 600.
21. 1973 : 4 एस.सी.सी.
22. वही, पृ. 130.

भारतीय परिवार में संरचनात्मक परिवर्तन-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

• महेश कुमार

सारांश- भारत में संयुक्त परिवारों की संरचना तथा प्रकार्य समन्वयकारी पद्धति आत्मसात् कर रही है, जो भारतीय समाज के संरचनात्मक परिवर्तन के सापेक्ष है, जीवन साथी का चयन में वर-वधू की स्वतंत्रता, खास तौर पर शहरी परिवारों में आजकल अधिक परिलक्षित हो रहा है, मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्रियों का घर से बाहर दफ्तरों, स्कूलों आदि में काम करने का मुद्दा आज भी परम्परागत तरीके से पति या परिवार के अन्य परिजनों की सहमति का पक्षधर है। इस तरह के समन्वय सामान्यतया निर्विवाद तथा तनावरहित होते हैं जो कि सामाजिक परिवर्तनों का अविच्छेदनीय पहलू है। इन तमाम संयुक्त परिवारों के बारे में समूचे भारत का परम्परागत नजरिया आज भी यथावत कायम है। परम्परागत मूल्य, आदर्श, प्रतिमान भले ही नवीनता के चपेट में आकर परिवर्तित हो रहे हैं पिछरे भी परम्परावादी सोच आज भी आधुनिक समाज में मौजूद है।

मुख्य शब्द- प्रकार्य, प्रतिमान, संयुक्त परिवार, संरचना

परिवार मानव समाज की विश्वव्यापी एवं मूलभूत संरचना है। परिवार की इकाई मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। परिवार उन कार्यों को निष्पादित करता है जो कि निरन्तरता, एकात्मकता तथा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिए अपरिहार्य है। समाज की तकनीकी और आर्थिक अधिसंरचना में हुए परिवर्तन के साथ ही परिवार के आकार, प्रकार, संरचना और उसकी कार्यप्रणाली में भी अनुकूलनात्मक परिवर्तन आई है। एक एकाकी परिवार अपने आप में संयुक्त परिवार की जटिल संरचना से संरचनात्मक विभेदीकरण का उदाहरण है।

समूचे भारत में परम्परागत कृषि व्यवस्था पर आधारित समाज संयुक्त परिवारों के रूप में भरे पड़े हैं। सामान्यतः यह परिवार पितृसत्तात्मक तथा स्थानीय स्तर पर मुखिया प्रधान थे। मुखिया के नेतृत्व में संचालित होने वाले ऐसे परिवारों में स्त्रियों की स्थिति दयम दर्जे की रही, सभी पारिवारिक सदस्यों के क्रियाकलापों का लेखा-जोखा बुजुर्ग (मुखिया) के हाथों में ही केन्द्रित था, सभी सदस्यों के अन्तर वैयक्तिक संबंध भी अधिनायकवादी प्रकृति के रहे। ऐसे समाजों में परिवार आर्थिक, सांस्कृतिक, धर्मिक एवं राजनैतिक गतिविधियों की इकाई भी थी जहाँ संबंध वैयक्तिक न होकर अंतःपारिवारिक होते थे। ऐसे परम्परावादी समाजों में पारिवारिक संगठनों की स्वतंत्रता, व्यक्तिवाद की अनुभूतियाँ अकल्पनीय रहीं। ऐसे समाजों की आर्थिक संरचना में गतिशीलता का अभाव रहा एवं तकनीकी विकास भी कम मात्रा में हुये।¹

इसके विपरीत संयुक्त परिवार जैसे ही एकल परिवार में बदलता है, परिवार के बच्चों की समाजीकरण प्रक्रिया नई दिशा प्राप्त करती है। बच्चे, अब अपेक्षाकृत तंग सामाजिक दुनिया के दायरे में विकसित होने को बाध्य है। बच्चे को दुलारने तथा उसकी

• यू.जी.सी., नेट, मुजफ्फरपुर, बिहार

देख-रेख के लिए पूर्व की भाँति अब रिश्तेदारों की उपलब्धता के अवसर भी अधिक नहीं होते।²

बच्चे के संगी-साथी और संगत भी परिवार के बाहर से ही ढूँढ़नी होती है। अगर बच्चे की माँ कामकाजी हुई तो उस बच्चे को अजनबियों से संबंध बनाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यही नहीं, कम उम्र में उसकी भावनाओं का संसार भी निजी आकर्षण के कई स्तरों में विभाजित हो जाता है। ऐसे पारिवारिक माहौल में बच्चा अति सुरक्षात्मकता का अनुभव नहीं करता जितना कि संयुक्त परिवारों में जहाँ पर बच्चे का व्यक्तित्व की आश्रयता के साये में पनपता है।

एकाकी परिवारों में बच्चे की भावनाओं का संसार आकर्षक की सापेक्ष स्थिति और हस्तांतरण के बीच पेन्डूलम बनकर झूलता है तथा इससे उपजा तनाव एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करता है जो कि अधिक दृढ़ निश्चयी, आत्मनिर्भर और विपत्ति की स्थितियों में भी अडिग तथा आमतौर पर ज्यादा कल्पनाशील तथा प्रगतिशील विचारधरा का होता है। इस तरह का व्यक्तित्व आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक परिवर्तनों की शुरुआत के साथ ही आगे बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होता है।

आई.पी. देसाई के शब्दों में भारतीय एकाकी परिवार सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य गैर सामाजिक माहौल में लिप्त थे, जो कि अन्य समाजों के समकक्ष नहीं थे। पश्चिम में जहाँ पर स्थानीय एकाकी परिवार समूह बसाहट का बहुसंख्य हिस्सा है वैसे भारत में भी अतीत में एकाकी परिवार रहे हैं, लेकिन एकाकी के मापदंड इस तरह के नहीं थे, जैसे वर्तमान में परिलक्षित हो रहे हैं। एकाकी परिवार की भावना को न तो संस्थानिक रूप प्रदान किया गया और न ही इसकी सामाजिक मान्यता, समाज के आर्थिक तथा तकनीकी आधार पर दिया गया सिर्फ यह संरचनात्मक परिवर्तन के रूप में परिलक्षित होती रही।³

पालीन एम. कोलेण्ड्रा ने अपनी अवधारणा में यह सुझाव दिया है कि भारत में जहाँ एकाकी परिवारों की बहुतायत है, यह परिवार पारिवारिक बुजुर्ग पीढ़ी की मृत्यु से नहीं बने हैं, बल्कि मृत्यु के पूर्व ही इनका प्रादुर्भाव टूटने की प्रक्रिया के फलस्वरूप हुआ है। इसके अतिरिक्त जहाँ पर संयुक्त परिवार बहुसंख्यक होते हैं, पारिवारिक बुजुर्ग की मृत्यु न तो तात्कालिक रूप से और न ही कालांतर में ही परिवार के टूटने के लिए जिम्मेवार होते हैं। भारत के अध्ययन करने पर परिवार के टूटने के तीन प्रमुख कारण समय के साथ देखने को मिला है। संयुक्त परिवार का पहला विखंडन पुत्रों के विवाहोपरांत कुछ ही महीनों अथवा वर्षों में शमिर पेठ तेलंगाना में दुबे का अध्ययन, नामहल्ली, मैसूर के लिए बिल्स का अध्ययन, प्राभलाई कल्लार के लिए ड्यूमांट का अध्ययन, विसीपारा के लिए बेरी का अध्ययन होता है। विखंडन की दूसरी स्थिति पिता के मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् विवाहित पुत्रों के संयुक्त परिवार से पृथक् होने में सामने आती है। विभाजन की तीसरी स्थिति तब होता है जब संयुक्त परिवार में विवाहित भाईयों की अगुवाई में कुछ वर्ष गुजर जाते हैं अथवा उस समय भी जब संयुक्त परिवार के मुखिया पहले चचेरे भाई होते हैं।⁴

मध्यम वर्गीय परिवारों के अध्ययन में रॉस का आकलन है कि शहरी परिप्रेक्ष में अनेक नवीनतम गतिविधियों से उपजे दबाव के फलस्वरूप कई परंपरागत पारिवारिक भूमिकाओं में परिवर्तन आ रहा है। बच्चे अब अक्सर कई मुद्दों पर अधिक स्वतंत्र होकर रहना चाहते हैं। प्राचीन परंपरागत परिवारों में स्त्री-पुरुष अथवा पति-पत्नी के मध्य किया गया रूढ़िवादी कार्य वर्तमान शहरी एकाकी परिवारों ने नकार दिया है। जो कार्य परंपरागत

रूप से पत्नी पर थोप दिये जाते थे, अब वैसे कार्यों में पति भी साझेदार होने लगे हैं। ऐसे परिवारों में पत्नी सर्वाधिक महत्वपूर्ण धुरी होती है, जिसके इर्द-गिर्द समूचे परिवार की गतिविधियाँ घूमती रहती हैं। पत्नी परिवार के सभी अहम् फैसलों के दौरान सलाहकार होने के साथ-साथ सक्रिय भागीदार भी होती हैं।⁵

संयुक्त परिवारों से एकाकी अथवा एकल परिवारों में टूटना, पारिवारिक सदस्यों के बीच अन्तरवैयक्तिक संबंधों तथा भावनात्मक रिश्ते व जज्बात की गहराई को भी प्रभावित करती है। अपने बच्चों व पति-पत्नी का पारिवारिक संबंध अहम् हो जाता है। अन्य रिश्तेदार एवं संबंध गौण होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार के परम्परागत भावनात्मक मजबूती कमजोर होती जा रही है। लेकिन और सारे परिवर्तन की अपेक्षाकृत इसमें धीमे प्रभाव दिखे हैं। भावनात्मक प्रवृत्ति एवं मनोवेगों में संरचनात्मक समाजशास्त्रीय परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण केरल की मातृवंश परम्परा वाले तारवाड़ परिवार है। इन परिवारों में निजी संपत्ति के इकट्ठा होने की वजह से व्यावसायिक संबंधों के व्यापकीकरण अथवा उच्च शिक्षा की आकांक्षा से युवा पीढ़ी का कोई व्यक्ति परम्परागत तारवाड़ संयुक्त परिवार से पृथक् परिवार अपने पत्नी व बच्चों के लिए स्थापित करना चाहता है।⁶

भारत में संयुक्त परिवारों की संरचना तथा प्रकार्य समन्वयकारी पद्धति आत्मसात् कर रही है, जो भारतीय समाज के संरचनात्मक परिवर्तन के सापेक्ष है, जीवन साथी का चयन में वर-वधु की स्वतंत्रता, खास तौर पर शहरी परिवारों में आजकल अधिक परिलक्षित हो रहा है, मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्रियों का घर से बाहर दफ्तरों, स्कूलों आदि में काम करने का मुद्दा आज भी परम्परागत तरीके से पति या परिवार के अन्य परिजनों की सहमति का पक्षधर है। इस तरह के समन्वय सामान्यतया निर्विवाद तथा तनावरहित होते हैं जो कि सामाजिक परिवर्तनों का अविच्छेदनीय पहलू है। इन तमाम संयुक्त परिवारों के बारे में समूचे भारत का परम्परागत नजरिया आज भी यथावत कायम है। परम्परागत मूल्य, आदर्श, प्रतिमान भले ही नवीनता के चपेट में आकर परिवर्तित हो रहे हैं फिर भी परम्परावादी सोच आज भी आधुनिक समाज में मौजूद है। अतीत के प्रति निष्ठा एवं लगाव ही व्यक्ति में पुरातन विचारधाराओं को जीवंत रखा है। इसलिए भारतीय समाज में परिवार नामक अत्यधिक प्राचीन संस्था आज भी अपनी विशेषताओं के साथ विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. चतुर्वेदी, सुषमा, 2004 “हिन्दू परिवारों के परिवर्तित प्रतिमान” विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ. सं. 2-3
2. सिंह, महेन्द्र नारायण, 1987 “नगरीय परिवेश और हिन्दू परिवार : बदलते प्रतिमान” विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली, पृ. 57
3. देसाई, आई.पी., 1964, “सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ फैमली इन महाराष्ट्र” बाम्बे : एशिया पब्लिशिंग हाउस, पृ. 38
4. कॉलेण्ड्रा, पालीन एम., 1968, “रिजन एशिया कास्ट एण्ड फैमली स्ट्रक्चर : ए कंफ्रेटिव स्टडी ऑफ द इण्डियन ज्वाइंट फैमली न्यूयार्क - वेनर ग्रीन फाउण्डेशन
5. कपाड़िया, के.एम., 1966 “मैरेज एण्ड फैमली इन इण्डिया”, बॉम्बे : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
6. एलेन, पी. रॉस, 1961, “द हिन्दू फैमली इन इट्स अरबन सेटिंग टोरन्टो यूनिवर्सिटी ऑफ टोरन्टो प्रेस



**Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India**

Registered Under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

